प्रेरणा

एक दिन की बात है। गगन अपना समस्त लोक देख रहा था। इतने में पवन बड़े वेग से चलने लगा। गगन ने मेघ का चश्मा निकाला और आँखों पर चढ़ा लिया।

उसके बाद कुछ ऐसा हुआ कि पवन और भी वेग से चलने लगा। बल्कि एक तरह से अन्धड़ ही आ गया। यहाँ तक कि गगन के लिए स्थिर रहना कठिन हो गया। तब वह एक पहाड़ के नीचे खड़ा हो गया। उसके बाद जब धीरे-धीरे अन्धड़ शान्त हो गया तो पवन गगन के निकट आ पहुँचा।

उस समय गगन अपनी आँखें मिचमिचा रहा था।

पवन ने पूछा—"दादा क्या हुआ ?"

गगन ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं आँख में तिनका पड़ गया था।"

"तिनका पड़ गया था !" पवन के कथन में आश्चर्य था।

"फिर निकला कि नहीं ?" उस के प्रश्न में चिन्ता की झलक थी।

गगन बोला—"तिनका तो निकल गया लेकिन जब तक वह आँख में पड़ा रहा उसका प्रभाव अब तक नहीं गया है।"

पवन ने उत्तर दिया—"बड़े बदमाश हो गये हैं ये तिनके ! देखो तो, आप जैसे तपस्वी को भी तंग करने लगे ! अच्छी बात है। मैं उन्हें आज ही ठीक किये देता हूँ। ज्यों ही वे आज घर आये मैं उन्हें कुएँ में ढकेलकर उलटा लटका दूँगा !"

गगन मन-ही-मन मुसकराने लगा। कहा कुछ नहीं उसने।

संध्या हुई रात आयी। तिनके भी घर पहुँचे। पवन ने एक से पूछा—"आज किस देश की ओर बढ़ गया था रे ?"

तिमका आश्चर्य में पड़कर बोला— 'बाबू, यह क्या ,
मैं तो सदा तुम्हारे ही संकेत पर उड़ता हूँ।

इतने में किसी का अट्टहास फूट पड़ा।

पवन ने इधर देखा उधर देखा। जब उसे कहीं कोई न
मुंह से निकल गया— 'यहाँ इस तरह छिपकर कौन हँस रहा
हो सामने आ जाय।"

गगन ने सामने आकर उत्तर दिया— 'मैं हूँ गगन। मैं ६
हूआ था कि इधर नये युग ने बड़ी प्रगति की है!

पवन को गगन के इस कथन में कुछ असंगति का भान।
उसने पूछा— 'पर इसमें हँसने की क्या बात है बाबा?

गगन ने अपनी सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कह दिया
उनके जो अब बड़े वीर बन गये हैं—अपने पिता पवन के
!) और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह अन्तर्धान हो गया।

यहाँ पवन के स्थान पर 'राजनीति' और गगन के स्थान प
यह इतना संशोधन आप स्वीकार करलें तो मुझे यह बतलाने में
कि इस उपन्यास-लेखन की प्रेरणा का यही एक मुख्य आधार है।

कानपुर
११ १२ १९५१

पूर्व कथा

कारण चाहे जो हो, पर बात कुछ ऐसी अप्रिय है कि कहने में स्वयं मुझे संकोच हो रहा है। लेकिन जब जीवन की सुगम-दुर्गम ऊंची-नीची पगडंडियों पर अब तक की सारी कथा कह चुकी ही है तब मैं यह बात छिपा ही कैसे सकता हूं कि सचमुच इधर कुछ दिनों से मैंने पूज्य पिताजी के संबन्ध में सोचना छोड़ दिया था।

हो सकता है कि इसका एक कारण यह भी हो कि जीवन में पिता मिलने का सुख होता कैसा है यह जानने का सुअवसर मुझे मिला ही नहीं।

लेकिन एक दिन सुदूर परदेश से लौटकर जो मैं अपनी जन्म-भूमि में आया तो वे प्रसन्न बहुत हुए थे। और सुनने में यह बात कुछ विचित्र-सी अवश्य लगेगी पर है बिल्कुल सत्य कि उस प्रसन्नता के आधिक्य से ही उनका आकस्मिक स्वर्गवास हो गया था।

उनके इस स्वर्गवास का सम्बन्ध मनुष्य के प्रयत्न के साथ अविच्छिन्न है या विधि के अमिट विधान के साथ यह मैं नहीं जानता। हां, मरने के अनन्तर अपने पीछे वे जैसा कुछ रहस्य वे छोड़ गये हैं उसका थोड़ा-सा इतिहास अनुमान, कल्पनाओं और प्रबल सम्भावनाओं के निष्कर्षों द्वारा मात्र यहां वर्णन किये देता हूं।

इस प्रवास में मैंने अपने आपको भी देखने का अवसर पाया है। इसलिए इस कथा का मूल्य मेरे लिए कितना अधिक है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। हां इस स्थल पर एक बात स्पष्ट कर देना अवश्य आवश्यक हो गया है। वह यह कि जैसे मूर्तिकार किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष अथवा फोटोग्राफ के

लेकिन आज न वे मंजीर !

दूर—बड़ी दूर से—कुत्तों के भूंकने की आवाज अभी-अभी आयी थी अब फिर सन्नाटा छा गया है। ऐसा सन्नाटा जिसमें मृत्यु अपनी तृष्णा पूर्ण करती है—जिसमें शांति अपनी स्वतः रूप भूषा त्यागकर कालिमा के वश में लीन हो जाती है।—जिसकी स्वर-लहरी धीरे-धीरे डूबता हुआ एक ऐसा क्रन्दन है जिसके हास की छवि में कुत्सितता का आभास विकास पाता है जिसकी साँस का सिन्दूर साफ-साफ धूल-सा न होकर रक्त की बह पड़ने वाली सरिता बन जाता है जिसमें अन्धकार घुल-मिलकर स्नान करता है। हृदय के पत्थर पथ के टुकड़े बनकर केवल इसलिए पड़े रहते हैं कि पदाघात सहते-सहते अहंकार की सत्ता नष्ट हो जाय। फिर जो एक नया क्षण भी साँस लेने को मिले तो उसमें और चाहे जो कुछ हो पर मनोविकार बिल्कुल न हो।

पास ही एक बैलगाड़ी खड़ी है और बैल चुपचाप बैठे जुगाली कर रहे हैं।

इस बैलगाड़ी में नीचे तो उपले और आम की सूखी लकड़ी के मोटे बोझ पड़े हैं ऊपर फूस और अरहर की झाड़ बिछी है। उसके ऊपर बाँसों और बाँस की ही खपच्चियों का बना हुआ एक विमान है। उसके ऊपर पिताजी का शव रक्खा हुआ है जिसकी शान्तिकर दाह-क्रिया के लिए हम सब यमुना के एक घाट पर जा रहे हैं।

इस गाड़ी पर उनका शरीर तो चिरनिद्रा में लीन हो चुपचाप सदा के लिए सो गया है पर उनकी पवित्रात्मा पता नहीं कहाँ कितनी दूर चली गयी है! यह मृत्यु उनकी थोड़ी देर की मेहमान है।

माना है जीवन की महाकाय प्रलम्ब अवस्थाओं को देखते हुए यह मृत्यु वय में कितनी लघु है! फिर भी जीवन अनिश्चित है और यह क्षण-भंगुर मरण निश्चित! ऐसे ही जीवन क्षण भंगुर है यद्यपि वह निश्चित है।

तो दोनों की यह अपूर्णता ही क्या इन बैलों को जुगाली करने के लिए प्रेरित कर रही है?

नहीं जीवन को न इस अनिश्चितता की परवाह है न क्षण-भंगुरता की। वह तो अपने व्यापार में लीन है। जीवन किसी एक का रहे अथवा न

आये तो आती रहे जाय तो चली जाय लेकिन जीवन की सार्वभौमिक व्यापकता का क्रम उसकी क्रियाशीलता का रूप सदा गतिशील और प्रवहमान रहेगा।

यही इन बैलों की जुगाली का मूल कथन है।

यहां गांव के जो अनेक साथी हैं मेरे साथ व यहीं पड़े सो रहे हैं। प्रत्येक से अलग-अलग आग्रह किया है मैंने कि व अब सो जाय। उनके जागरण की अब और अधिक आवश्यकता नहीं है। उनकी इतनी ही कृपा मेरे लिए बहुत है।

इन साथियों में एक वृद्ध जन हैं जिन्हें मैं गांव-पड़ोस के नाते मामा कहता हूं। मुझ अकिंचन पर यह उनकी अपार अनुकम्पा है कि उन्होंने गांव से ढाई मील दूर पिताजी की इस महायात्रा में साथ देना स्वीकार किया सो पैदल। और सवारी के लिए उनके यहां जो अश्व था वह उन्होंने मुझे दे दिया है। सोचता हूं उनका यह उपकार मैं अपने सिर से कैसे उतार पाऊंगा।

अन्य साथियों में सभी नवयुवक हैं और वय में मुझसे छोटे हैं। एक-आध तो थोड़े अबोध भी हैं। यहां तक कि जब रात में अधेरा पूरा घिर गया और फिर भी हम लोग दो मील चल हो आये तो अकेले में रामलाल इस गाड़ी के निकट आने में हिचकिचाता-सा प्रतीत हुआ। लेकिन इस बचपन में भी मेरे प्रति—और मेरे इन पिता के प्रति विशेष रूप से—उसमें कितनी श्रद्धा है! पर वह उस घने अन्धकार में पिताजी के शव के पास आने में डरा क्यों यह मैंने उससे नहीं पूछा—न उसे इस विषय में कुछ समझाया ही। क्योंकि मैं सोचता था उसके मन में कहीं-न-कहीं मृतात्मा के प्रेत हो जाने की आशंका है। सम्भव है वह सोचता हो कि यह प्रेतात्मा उसके लिए अनिष्ट का कारण हो सकता है। तभी तो इस पीपल के वृक्ष की घनी छाया के नीचे जब लेटने का अवसर आया तो उसने गाड़ी से सबसे अधिक दूरी पर टाट को खाली पड़ी एक दालान में लेटना स्वीकार किया।

कुछ भी हो। रामलाल चला आया मेरे साथ इतना ही कौन कम है। मैं उसका यह सहयोग कभी नहीं भूल सकूंगा।

यह रामलाल रेशमी धागों का कुर्ता पहनता है। तबियत का इतना शौकीन है कि जाड़े के प्रारम्भ में भी इस रेशमी कपड़े का मोह उससे नहीं छूटता। कभी जाकेट मेरे ही ऊपर धारण करनी पड़े।

भी ला सकते हैं। सो उन लोगों का यह कथन मेरे जीवन काल में कभी सही उतरेगा—या केवल सुनने भर की चीज ही बना रहेगा।

तब तम्बाकू की चुटकी होठों के बीच में रखते रखते गौरीशंकर ने हंसते हंसते कहा था— 'दो-चार सेर तो तुम कभी भी मंगवा लेना। यों जब कभी किसी चीज की जरूरत पड़े तो दो-चार दिन पहले से बता दिया करो। एन मौके पर अच्छी चीज जरा मुश्किल से मिलती है। फिर चाहे जैसा गुच्छा निकालो एक-न-एक अमूर साला मुंह पर ही सड़ा हुआ जरूर निकलता है। यही हाल आदमी की नीयत का है। कोई भरोसा नहीं कब दाव दे जाय।

और इस बातचीत के बाद साल भर जब बीत गया तब गौरीशंकर ने बतलाया कि तुम्हारे घर सारा घी भिजवा देने के बाद मैंने तीन दिन तक बिना घी के ही भोजन किया था।

सोचता हूं—यह गौरीशंकर भी जब आज मेरे साथ है तब चिन्ता का कोई कारण नहीं है।

एक त्रिवणी भी है जिसके हाथ में छः अंगुलियां हैं। बदन दियासलाई सा पतला लेकिन काम करने में फुर्तीला इतना कि मशीन को मात करदे। जाति का ब्राह्मण लेकिन काम सिलाई का करता है। दिन में चार बार चाय पीता है और खाना सिर्फ एक बार खाता है। पैरों में हमेशा चप्पल रहते हैं। बैठा रहेगा पर उधार काम नहीं करेगा।

इसके पिता ने दो ब्याह किये और द्वितीय विवाह इस हठ में पड़कर किया कि प्रथम पत्नी आज्ञापालन में दास-वृत्ति के विरुद्ध थी। तदनन्तर जब द्वितीय पत्नी की कोख को पवित्र करने के लिये आपने जन्म लिया तो बारह वर्ष की अवस्था तक पहुंचते-पहुंचते आप अपनी परित्यक्ता मां को ननसाल पर से आये। पिता ने जब इस पर आपत्ति की तो आपने उत्तर दिया था— पिता के पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए अगर आपने सन्तान को मना किया तो याद रखिये उस सन्तान का अपने इकलौते होने का विचार न कर, पिता के श्राद्ध भार से उनके जीवन-काल में ही मुक्त होते देर न समझी!

हवा अभी ठंडी चल ही रही थी कि बादल भी घिर आये। हवा ने और तेजी का रुख पकड़ लिया तो मन आम के बगान पर ईंटें रखदीं जिसमें उसकी

बेलगाड़ियाँ कोई अभिचार न कर बैठें। अब रास्ते के पत्ते, तिनके, कागज के टुकड़े, टूटी पड़ी हुई दियासलाई की डिब्बी, छोटी-मोटी टहनियाँ, कांटेदार झाड़ियों के टुकड़े हवा के साथ उड़ने लगे। बिजली चमकने लगी। बादलों ने भी गरजना शुरू कर दिया। मामाजी की नींद उचट गयी। वे एकाएक उठ बैठे और बोले— गजेन्द्र !

मैंने कहा— हाँ मामाजी !

वे बोले— जान पड़ता है पानी बरसेगा। और फिर एकदम घबराकर पेड़ की डाल में बंधी हुई लालटेन की ओर देखते बोल उठे— अरे अरे पकड़ना तो जरा लालटेन को, कहीं हवा के झोंके से गिरकर टूट-फूट न जाय !

और मैंने देखा—सचमुच लालटेन जोरों के साथ झोंका खा रही है।

इसी बीच बात-की-बात में एक ऐसा झकोर आया कि दालान के अन्दर ढेर-का-ढेर कूड़ा उड़ आया और बिसपकार रामलाल के बिछौने और बिस्तर पर जा गिरा। फिर बादल के गर्जन के साथ-साथ बिजली चमकी और पानी बरसने लगा।

मैं जबतक उठकर डाल में लटकती लालटेन की रस्सी खोलूँ, तबतक मेरा कम्बल जहाँ-तहाँ भीग गया और जिस पुलओवर को मैं पहने हुए था, वह भी भीगे बिना बच न सका। फिर एक भयानक हाहाकार-सा मच गया। सभी लोग उठ उठकर हड़बड़ाहट में अपने अपने बिस्तरों को समेटकर जैसे-तैसे दालान में आकर सिमट सिमटकर बैठ गये। बैलगाड़ी पर रक्खे पिताजी के शव पर पानी पड़ने की आशंका से मैंने अपना वह कम्बल उस पर डाल दिया। मन ही-मन एक विचार आता, एक जाता। कभी-कभी मुँह से निकल पड़ता— हे भगवान् ! अब नहीं सोना है।

मामाजी बोले— अच्छा तो कैसा दुर्दिन आ गया !

उधर रामलाल सर्दी के कारण काँपने लगा, यद्यपि वह अपने शरीर को काफी ढके हुए था।

बिना प्रकट करते हुए मैं भी सोचता— फूफाजी तो देवता-पुरुष थे। फिर भी उनके क्रिया-कर्म में देखो तो ईश्वर कितने विघ्न डाल रहा है ! लकड़ी

त्रिवेणी यह कहता हुआ कि "तो फिर मैं जाता हूँ" साहस करके तैयार हुआ ही था कि एक लालटेन के साथ कई आदमियों की आकृतियां कुछ फुसफुसाहट के साथ दिखाई पड़ी। और गौरीशंकर बोला— "ये लोग गांव पड़ता है कहीं जा रहे हैं। निकट आने पर इन्हीं से कहना ठीक होगा। छाते भी इनके साथ हैं।

मैं सोच रहा था कि यह कौन निश्चित है कि ये लोग इसी ओर आ रहे हैं कि इतने में गौरीशंकर के मुंह से निकल गया— लेकिन यहां देहात वाले मुल्क का गाड़ी तक को तो अपने दरवाजे से गुजरने देते नहीं दस-बारह आदमियों का हमारी इस असामयिक पार्टी को कौन शरण देगा!

गौरीशंकर का कथन बिलकुल सही था। इसलिए एक कांपा ढहर-सा मेरे अन्दर ही-अन्दर चलने लगा।

गौरीशंकर बोला— यही हमारा अपढ़ितित अर्धसभ्य निकम्मा देश और समाज है जिसके लिए 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' गाते समय हम गौरव से फूल उठते रहे हैं!

मामाजी समन्वयवादी हैं। गौरीशंकर की बात सुनकर बोले— इसमें सन्देह नहीं कि यह हमारी संस्कृति के पतन का ही एक चिह्न है लेकिन है यह बहुत बिगड़े हुए रूप में। हमारी पुरातन संस्कृति एकदम से मर नहीं गयी है। उसके कुछ चिह्न जो आज तक मौजूद हैं उन पर विचार किये बिना हमारे ग्राम जीवन पर ऐसा लांछन लगाना उचित नहीं है गौरी!

इतने में जो लोग लालटेन लिए दूर से कुछ फुसफुसाते हुए प्रतीत हो रहे थे वे सचमुच हम लोगों के सामने आ खड़े हुए। उनमें से एक बोला— आप सब लोग हमारे छानों के अन्दर आ जायें। और प्रकाश और भोपा तुम इनका सब सामान उठा लो।

इस अयाचित आगत अर्धसभ्य का अकस्मात् प्रत्यक्ष देख त्रिवेणी बोला— आप लोगों को हमारे इस संकट का पता कैसे चला?

मामाजी मारे प्रसन्नता के फूल गये। बोले— कहां हो गौरीशंकर, देख लो अब अच्छी तरह से हमारे गांवों की प्राचीन सभ्यता को। [फिर उन लोगों को

ओर देखकर मानों सहसा आंखियों मुद्राओं और ध्वनियों से अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहने लगे— धन्य हैं आप लोग जो आज हमारी लाज तो रह गयी! नहीं तो इन लोगों के सामने मैं कभी बात करने योग्य न रह जाता। लालटेन जरा इधर दिखाना भाई, हमारे बीच एक लड़का रामलाल है। सबसे पहले उसी का कुछ प्रबन्ध करना होगा। क्योंकि यह हमारे मुहल्ले भर का मान्य और गुनी घर का है। पर वह तो यहां कहीं दिखलाई ही नहीं पड़ता। कहां गया रे शैतान!

तब उन्हीं आदमियों के बीच से निकलकर रामलाल यह कहता आ खड़ा हुआ— 'मैं यह सामने ही तो हूं नाना।' और तब वे सब आगन्तुक भी एक साथ हंस पड़े।

फिर उनमें से एक ने बतलाया कि यही लड़का तो हमारे यहां आकर हमें यहां ले आया है।

मैं आश्चर्य से रामलाल को देखता रह गया। उसी को मैं सब से अधिक डरपोक समझता था। सहायक लोगों के साथ-साथ चलता हुआ मोती बोला— 'रामलाल ने सचमुच तारीफ का काम किया।'

जिज्जी कहने लगी— अभी एक बार मेरे मन में आया था कि रामलाल बोल क्यों नहीं रहा है। मैं जानता था कि जो बात हम लोग केवल सोचते रह जायगे रामलाल उसे करके दिखा गया।

एक दालान में हम सब पहुंचा दिये गये। नीचे पयाल बिछा था। ऊपर उसके पुरानी रुई से बनी हुई एक लम्बी दरी बिछा दी गयी उसके बाहर आंगन में अलाव सुलगा दिया गया। ओढ़ने के लिए कई मोटे लिहाफ और कम्बल आ गए।

इतने में ठिगनी मूंछ स्थूल शरीर बदन पर रुई की बंडी डाले हुए एक सज्जन आकर बोले— आप लोगों के खाने के लिए तत्काल प्रबन्ध हो सकता है। क्योंकि मेरा ख्याल है आप लोगों ने खाया तो ...... । 'नहीं-नहीं इतना ही बहुत है। यों भी ...... मामाजी बोले— भोजन करके एक झपकी हम ले भी चुके हैं। पर कौन जानता था ऐसा संकट आ पड़ेगा!"

कहते-कहते वे अभी दीवाल से टिककर बैठे ही थे कि सहसा चमक उठे— अरे —

बच्चों की याद आयी। गौरी न हो उस गाड़ी को भी यहीं कहीं पास ही लगा दो। कौन जानता है कब क्या हो जाय! इसके सिवा बैलों को भी छाया में ही बाँधना होगा। बेचारे बहुत ठिठुर गये होंगे!

गौरी के साथ मैं भी चला गया। आगन्तुक ने लालटेन प्रकाश के हाथ में दे दी। आँधी-पानी का वह वेग यद्यपि कम हो गया था, फिर भी बूँदें अभी पड़ रही थीं। मेरे मन में आया—ऐसा ही अक्सर होता आया है। जब संसार हमें सहारा दे देता है, तब प्रकृति की कुटिलता और निर्ममता भी शान्त पड़ जाती है। जब-जब कोई आपत्ति आती है और हमारे लिए उसका योग आवश्यक और अनिवार्य हो जाता है, तब सम्भव और सुलभ सहयोग और सहानुभूति के सारे द्वार भी बन्द हो जाते हैं। मनुष्य और उसकी सभ्यता के सारे उद्योग, प्रयत्न और प्रयोग जान पड़ता है, उन्हीं समय के लिए है, जब प्रकृति हमारे ऊपर दारुण कोप किया करती है।

क्षण भर बाद जो हम लोग उस गाड़ी के पास पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि गाड़ी ज्यों-की-त्यों खड़ी है। विमान भी रखा है उसके ऊपर, लेकिन कम्बल और उसके नीचे पड़ा पिताजी का शव गायब है। जिस वस्त्र और रस्सियों से उनके निष्प्राण शरीर को उस विमान में कसकर बाँधा गया था, वह भीगा और धूल में सना हुआ गाड़ी के पहिये के पास पड़ा है। रस्सियाँ कुछ उलझी पड़ी हैं, कुछ टूटी हुई। बैल एक बैठा जुगाली कर रहा है, दूसरा खड़ा हुआ निस्तब्धता में मौन है!

एक बार जैसे मेरे सिर पर बिजली गिर गयी हो!

गौरीशंकर के मुँह से निकल गया—अरे! पिताजी का शव तो जान पड़ता है कोई उठा ले गया! लेकिन यह सब हुआ क्या? कितने आश्चर्य की बात है कि इस आँधी-पानी में!

तब मन में आया, जैसे गौरीशंकर का वाक्य अधूरा रह गया है, वैसे ही कहीं पिताजी का जीवनान्त भी तो अधूरा नहीं रह गया। किन्तु गौरी के इस वाक्य की समाप्ति से पहले प्रकाश ने लालटेन दाएँ थमा दी और कहा—

घबराने से काम न चलेगा। सावधानी से हमको इधर-उधर देखना चाहिए। जंगली जानवर तो यहाँ कोई नहीं, लेकिन कौन जानता है?

एक

उस घड़ी को मैं अधिक सौभाग्यशाली नहीं मानता जिससे मेरा जीवन रंगीन बना है। जीवन में उसने कोई बहुत व्यापक परिवर्तन कर दिया हो ऐसा भी मैं नहीं समझता। आज मैं जो कुछ हूँ उसके निर्माण में ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से उसका कोई हाथ रहा है ऐसी बात भी नहीं है। लेकिन एक बात मैं अस्वीकार नहीं करूँगा। वह यह कि मुझे प्यार बहुत मिला है।

यहाँ मैं कोई बात बढ़ाकर नहीं लिखूँगा। एक तो ऐसा करने का मोह अब रह नहीं गया है। दूसरे देखता हूँ इसमें कोई सार भी नहीं है। मनुष्य ने एक-दूसरे को समझने में जो भूल की है उसका इतिहास स्वयं इतना रंगीन और मादक है कि उस पर और रंग चढ़ाना व्यर्थ है।

गाँव त्यागकर अब हम नगर में आ बसे हैं।

छोटी बहिन माधवी के विवाह के दिन हैं। घर मेहमानों सम्बन्धियों तथा हितैषियों से भरा पड़ा है। बाज़ार से साग भाजी लदवाकर ज्यों ही मैं अन्दर आया त्यों ही माँ ने किवाड़ की ओट के सहारे खड़ी एक युवती का परिचय देते हुए कहा— अपने मामा को तो तूने देखा है गजेन? तेरे जनेऊ में वह आया था।

मेरा जनेऊ हुए इतना अधिक समय बीत गया है कि मैं उस बाल्यकाल की बहुतेरी बातें बिल्कुल भूल गया हूँ। उस समय मैं एक तरह से बच्चा था। स्मृति-पट पर पता नहीं कितने व्यक्तित्व आये और चले गये। बंशीधरजी की स्मृति भी मालूम नहीं किधर जा छिपी। यहाँ तक कि उनकी मुखाकृति का भी स्मरण नहीं रह गया। इसलिये माँ के उपर्युक्त प्रश्न पर चुप रहकर जब मैं कुछ सोचने लगा तो माँ ने स्वयं ही बतलाया कि बंशी तेरा मौसेरा भाई है। पहले विवाह से अनेक वर्षों तक जब उसके कोई सन्तान नहीं हुई तब उसकी उस बहू ने ही अनुरोध करके उसका दूसरा विवाह कराया है। यही है तेरी छोटी भाभी है। अभी पर साल ही तो गौना हुआ है।

मो म न रहा गया। भाभी— पगली ! उमर में अभी बिलकुल नन्ही-सी बनिया है। लेकिन काम-धन्धे में कितनी चतुर है। घर-भर अपने से पराम चलक।—चल रे गाजेन्, म तुझ इसस भी चतुर बहू ला दूँगी। और चलती हुई फिर जैसे अपने कथन के मर्म म स्वयं ही समाधान कर कहती गयी— मरा मतलब यह कि ऐसा ही इसस जरा भी कम नहीं।

इस तरह मा मुझ ग्मार्धिर म गयी और म बात पर बधी हुई गाय बनकर यम चारा चबाने लगा। उस समय मेरी दृष्टि तो भाभी पर थी पर मगर मन कहीं और था। मा कह रही थी— यह कोई अच्छी बात नहीं है राजन् कि घर में जो कोई मेहमान आय तो तू उसके साथ लड़ाई कर ले। यह तो तू अभी जान नहीं पाया। जान पाता तो आज उस अब तक भूखा न रखता ! देखो तो बेचारी का मुँह जैसे पीला पड़ गया है ! मेहमान लोग काम-काज मे सहायता देने के लिए आते हैं, काम देने के लिए नहीं !

इसी क्षण मैंने जो सिर उठाकर भाभी की ओर देखा तो जान-बूझकर उन्होंने अपनी दृष्टि नीची कर ली। कदाचित् इसीलिए कि मैं किसी प्रकार उनके मनोभावों का परिचय न पा सकूँ। फिर भी मुझे यह समझते देर न लगी कि शायद उनसे कुछ कह रही हैं। कुछ ऐसी शिकायत करने को आतुर हैं कि बात तो करना चाहती हैं, लेकिन स्पष्ट कहना कुछ नहीं चाहतीं।

और तब मैंने पहले सिर उठाकर चुपके से फिर कुछ निरपेक्ष होकर स्पष्ट रूप से मानते हुए पूछ लिया— क्यों तो भाभी, क्या सचमुच तुम्हारा मुँह पीला पड़ गया है ! फिर दायें-बायें ऊपर-नीचे झाँक-झाँककर यह भी कह दिया— हाय सचमुच अम्मा पीला पड़ने के बाद फिर उस पर मलाई भी छा गयी है !

मेरा इतना ही कहना पर्याप्त हो गया। भाभी खिलखिलाकर हँस पड़ीं। और मा यह कहती हुई अन्दर चली गयीं— तुम दोनों-के-दोनों बस ऐसे हो। ऐसी ही बात थी तो मुझे क्या परेशान किया !

यह सप्त-मंडल है। इसकी पावन भूमि के कण-कण पर आज मैं जो नाना प्रकार के स्वर सुन रहा हूँ, उनमें कितना उन्माद, कैसी उमंग, कितना आह्लाद

अभी मैं चुपचाप खड़ा हुआ मैं यही सब सोच रहा था कि अकस्मात् मेरा ध्यान सभामण्डप के बीच एक दृश्य-विशेष पर आकृष्ट हो गया।

परम्परा और रीति के अनुरूप कन्या के उपलक्ष्य में चौधरी को कुछ रुपये दिये जा रहे थे। इस अवसर पर पहले तो वह चुप रहे, पर जब सब रुपये इकट्ठे हो गये, जो कुल मिलाकर एक-सौ उन्नीस होते थे, तब उन्होंने सौ रुपये का एक नोट उसमें और मिलाकर सब-का-सब रुपया माँ को दे दिया। बोले— मेरी इच्छा है कि दरबार पर नाई, धोबी, बारी, कहार, माली, मेहतर आदि दास वर्ग के जितने भी बच्चे पल रहे हैं, अवसर पड़ने पर ये रुपये उनकी रक्षा में खर्च किये जायें।

सारा घर एक अभिनव कोलाहल से भर गया। चारों दिशाओं से धन्य-धन्य के स्वर आने लगे। माँ ने इसी क्षण चौधरी की आरती उतारी, आशीर्वाद दिया और बलैया ली। उनकी रुलाई फूट पड़ी। सिर पर हाथ फेरती हुई बोली— लाल मेरे, सदा दीन-दुखियों का ऐसा ही ध्यान रखना। पूजा और प्रतिष्ठा पाने पर उनको कभी न भूलना, जिनकी आशायें आज हमारे न्याय को बाट देख रही हैं।

सब कानों में कोई कहने लगा— एक यह नवकुमार है हमारी नयी पौध का नव अंकुर? और एक ये महामहिम राजपुरुष!

कल बारात को जरा जल्दी निपटा दिया था। ग्यारह बजे हम लोग फुरसत पा गये थे। हमारे द्वार के भी सब लोग भोजन करके इधर-उधर स्थान तलाशकर ठिकाने लग गये थे। छत पर चाँदनी छिटकी हुई थी और पवन मन्द-मन्द डोल रहा था। थकान इतनी अधिक थी कि मैं एक कुरसी पर ही बैठा हुआ सोने लगा। झपकी लगी ही थी कि अकस्मात् मेरे हाथ में कोई ऐसी शीतल वस्तु आ लगी कि मैं चौंक पड़ा। वह वस्तु और कुछ नहीं, बरफ की डली थी और अब फर्श पर जा गिरी थी। उधर कुर्सी के पीछे गरम हास का कम्पन मन्द पड़ता हुआ एक मृदुल स्वर भी मैं सुन रहा था। फिर यकायक आगे आ सुमी बोली— रचना क्या है? शीतलपाटी पर बैठा हो पासिमा में गाय

जभी छत पर जो पलंग बिछा हुआ था, जब उस पर आकर मैं लेट गया तब दालान की बत्ती जल रही थी। कब वह बुझाई गई, मुझे इसका बिल्कुल पता न चला। लेकिन इतना ध्यान बना रहा कि सुराही में कदाचित् पानी कम रह गया है। तभी लेटते ही मैंने कह दिया— 'सुराही में पानी भरवा देना। कभी-कभी रात में इतनी जोर की प्यास लगती है कि अचानक नींद ही उचट जाती है।'

फिर कब नींद आ गई, मुझे कुछ नहीं मालूम। लेकिन थोड़ी देर बाद मेरी पलकों पर पानी की कुछ अतिशीतल बूँदें जो आ लगीं, तो मैं सहसा चौंक पड़ा और झट से उठकर बैठ गया। बैठते ही मैंने पूछा— 'क्या है यह सब?' मेरे स्वर में प्रकट रूप में कुछ अरुचि भी मानता हूँ। किन्तु भीतर-ही-भीतर मैं जैसे मधुरता का अनुभव कर रहा था।

मधुर मुसकान स्वाती-सी भाभी ने जवाब दिया— 'बेकार बिगड़ते हो। बरफ़ का पानी भर रही थी, उसी की कोई बूँद उछलकर आ पहुँची होगी तुम्हारे पास। अजब दुनिया है। होम करते हाथ जलते हैं। रात में तुम्हें कभी-कभी प्यास अधिक सताती है। इसीलिए मैंने सोचा, सम्भव है तुम्हें प्यास लग आई हो!'

'हूँ तो यह बात है!' मैंने कह दिया।

'बात-वात तो कुछ नहीं है।' वे मानो अपने को सम्हालती हुई बोलीं— 'पानी पीना हो तो मैं लाऊँ!'

'प्यास-व्यास तो कुछ है नहीं,' मैंने भी कह दिया— 'लेकिन अब तुमने जगाने की हो ही कृपा की है तो लाओ पी ही लूँ!'

तब गिलास में पानी देती हुई वे बोलीं— 'अगर मैं ऐसा जानती कि तुम्हें बिल्कुल प्यास नहीं है तो सच कहती हूँ, मैं कभी न जगाती।'

तब उत्साहपूर्वक मैंने भी गिलास हाथ में लेते हुए कह दिया— 'हो सकता है, न जगातीं। पर मुझे जगाना ऐसा सहज सा नहीं है। आज की बात दूसरी है। आज तो सच पूछो मैं सोता हुआ भी कुछ-कुछ जग ही रहा था।'

पर यह तो आदि ही है अभी। अन्त कितनी दूर है कौन जानता है? और
अन्त क्या होगा इसे कौन कह सकता है?

दो का घण्टा बज रहा है। घण्टे का गम्भीर स्वर जैसे-जैसे मन्द पड़ता
जाता है वैसे-वैसे कोई यह बात मेरे मानस-पट पर लिख रहा है अमिट
अक्षरों से—

हिरना समझ-बूझ बन चरना!

दो

कभी-कभी हमारे जीवन में विचित्र क्षण आ जाते हैं। हम यह निश्चय
ही नहीं कर पाते कि हम करना क्या चाहिए।

यदि हम सोचते हैं कि उस अवसर पर हम अपने आपको स्पष्ट करना
चाहिए तो होता यह है कि हम अपने चारों ओर एक ऐसा वातावरण बना लेते
हैं जो हमको उत्तरोत्तर अस्पष्ट ही करता जाता है।

और इसके विपरीत यदि हम अपने आपको गुप्त रखना चाहते हैं तो
अनायास कोई ऐसा प्रसंग आ जाता है कि हमारे अन्तस का सारा भेद खुलता
चला जाता है।

उस दिन मैं सोचने लगा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि अपने आप को
बचाए रखने का उपक्रम करता हुआ भी मैं गहराई की ओर ही बढ़ता चला
जा रहा हूँ? तब मैं अपने आपसे पूछने लगा—क्या मैं वास्तव में मौन हूँ?
लेकिन यदि मैं नहीं हूँ और मैंने इसको भी मौन नहीं रहने दिया है तो इस मुखर
स्पष्टता का परिणाम क्या होगा? जो मेरा पथ नहीं है उसके प्रति इस स्पष्ट
मनोवृत्ति का अर्थ क्या है? चाहे जैसे हो इसी अर्थ को आज सोच लेना है और
बिना किसी झिझक और संकोच के उसके समक्ष उपस्थित कर देना है।

रात हुई। हम लोग फिर उसी छत पर आमने-सामने साथ-ही-साथ बैठे।
बातों का कुछ ऐसा सिलसिला चला कि मेरे हृदय में से जैसे एक बड़ा बोझ
उठा। वैसे ही चाहते-न-चाहते हुए मेरे मुँह से एक बात निकल गयी— 'तुम
सचमुच बहुत अच्छी हो भाभी।'

मेरी बात सुनकर एकबार उन्होंने मुझे ध्यान से देखा। उनकी बायीं ओर की भृकुटि जरा हिली और फिर इस विषय को जैसे टालते हुए उन्होंने सामने की ओर संकेतकर कह दिया— अच्छा बोलो आज चांदनी कैसी छिटकी हुई है ! और साथ ही उनके मुख पर एक अभिनव शोभा खेलने लगी। सच पूछिए तो वैसी विमल शोभा मैंने अब तक किसी नारी में न पायी थी। मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे समुद्र की हिलोर के साथ मैं तट से बहता-बहता अनन्त अगाध जलराशि में जा पहुंचा हूं। ज्वार आने पर तट पर आ ही जाऊंगा इसका कुछ ठीक नहीं है।

संयोग से उसी क्षण कोयल बोल उठी—कु हू ऊ।

मैंने पूछ दिया— अच्छा भाभी यह कोयल हमेशा एक-ही-सा बोल क्यों बोलती है ? क्या इसके पास कहने के लिए केवल एक ही बात है ?

उन्होंने वक्ष से तर किये हुए शीतल बादाम की फांकों की दूसरी डिश मेरे समक्ष रखते हुये उत्तर दिया— 'वह चिड़िया है। उसकी बात न विस्तार उड़ने और उड़ान का प्रसंग होना ही चाहिये। उसके जीवन में समस्याएं भी अधिक नहीं हैं। इसलिये अन्य बातों को छोड़कर अगर वह मतलब की ही बात बारम्बार कहती रहे तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

मैं सोचने लगा—कहती तो ठीक है। पर फिर उन्होंने कह दिया— और मनुष्य ही के पास कहने के लिए कौन-सी ऐसी बहुत-सी बातें हैं ? जीवन भर की सारी बातें मन और पेट की आवश्यकताओं समस्याओं की सीमा में आ जाती हैं। कहने के लिए तब हमारे पास केवल एक बात बच रहती है।

लेकिन अब तक मैं इसी बात को मन लगा रहा था कि— 'अच्छा बोलो चांदनी कैसी छिटकी हुई है !' फिर इस बात को लेकर मैं और भी उलझन में पड़ गया। प्रतीत होने लगा—इनकी कोई बात गूढ़ अर्थ से खाली नहीं होती। तब एक विस्मय और आह्लाद मेरे अन्तर उठ-उठकर अनन्त माधुर्य घोलने लगा।

मेरे मन के तार-तार में झंकारें इस नारी के विचार और दृष्टि के साथ साथ समाधान भी नहीं होगा जब तक मैं यह स्थिर नहीं कर पाया था। सम्भव

था कि मैं उनकी ज्योत्स्ना-पूर्ण मुद्रा की ओर एकटक देखता ही रहता। किन्तु कोयल ने बोलकर मूल प्रश्न की ओर पुनः मेरा ध्यान आकृष्ट कर लिया।

तब मैंने पूछ लिया— 'कौन-सी बात?' आंख-से आंख डाले हुए उन्होंने उत्तर दिया— जैसे कोई अपने आप पर विचार किये बिना दूसरे से पूछ बैठे कि तुम्हें प्यास तो नहीं लगी है!

उत्तर सुनकर मैं हतप्रभ-सा हो उठा। एक पराभव का भाव अनुभव करता हुआ मैं जैसे यह स्पष्ट देखने लगा कि मेरे मन के भीतर भी एक कालिमा का धुआं उत्पन्न हो गया है, वे उसे जानती हैं। तब अपने ही लिए एक ग्लानि-सी मेरे अन्तःकरण में रह-रहकर गहरी होने लगी। एक प्रश्न बार-बार मेरे भीतर उठ-उठकर हलचल मचाने लगा कि एक क्षण, एक वाक्य और एक ही चितवन से जो नारी अपनी संचित राशि का समस्त अमृत एक साथ उंडेल देती है, वही दूसरे क्षण इतना कठोर, रहस्यमयी, मायाविनी और निर्मम कैसे हो जाती है? प्रेम और तिरस्कार के प्रयोग वे एक साथ क्या करती हैं? क्या वे इस प्रकार अपने आपसे ही लड़ती हैं? क्या इनकी सारी अभिव्यक्ति केवल अपने लिए है। या जो कुछ यह दान करती हैं अन्त में उसे स्वयं ही प्राप्त भी कर लेती हैं?

प्रायः जब भाभी को कोई काम न होता, अथवा जब वे भोजन करके आतीं तब एक पनडब्बा लेकर बैठ जातीं। ऐसा भी अवसर आया है जब मैं काम से थक गया हूं और बाहर आकर मैंने पान मांग लिया है। पर उसके बाद जब कभी मैं भीतर पहुंचा हूं तब इधर उधर डोलते हुए मेरे निकट आकर वे धीरे से कहती रही हैं— पनडब्बे में पान लगा रखे हैं।

मैं सोचने लगता कि कहने के बदले वे मुझे पान दे ही क्यों नहीं जातीं! तब मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि वात्सल्य के मार्ग में वे संयमवादिनी हैं। जब देखती हैं कि किसी परिस्थिति में सम्पूर्ण प्रतिदान, विनिमय अथवा आदान का अवसर नहीं है, तो जितना अंश एक बार सम्भव होता है उसी अंश तक उसका उपभोग करने में वे संकोच नहीं करतीं। पर आज इस समय तो ऐसी कोई बात न थी।

सरौता उनके हाथ में था और वे डली काट रही थीं। इतने में पासवाले के ग्रामोफोन-संगीत की एक कड़ी फूट पड़ी— तुम प्यार की बतियाँ क्या जानो !

सुनकर मैंने उनकी ओर देखकर हँस दिया। लेकिन उन्होंने मेरे हँसने को कोई महत्त्व नहीं दिया। वरन् संकेत से कुछ ऐसा भाव व्यक्त किया जैसे यह कथन कोई उनसे न करके भाभी से कर रहा है। पर अभी मुझे उनका 'उस बात' से सम्बन्धित उत्तर भूला नहीं था। कदाचित् इसीलिए मेरे मन में आया — 'मुझे जानने की जरूरत भी नहीं।' तब प्रतिक्रिया मेरा एक ऐसा रूप बनाकर प्रकट हुई कि मैं स्वयं अपने प्रति एक हीन भाव से भर गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि इस नारी के सामने मैं उत्तरोत्तर एक खिलौना-सा बनता जा रहा हूँ। मेरा अस्तित्व दिन-प्रति-दिन क्षीण—हीन-से-हीन—होता जा रहा है। मैं इनके आगे सब तरह से एक अपदार्थ बनता जा रहा हूँ।

अब एक चिरस्थायी उदासी मेरे भीतर व्याप्त हो गयी थी और क्षण क्षण पर मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मेरा मुँह काला करने के लिए ही नियति अपने दोनों हाथों में वैसलीन का पुट लेकर काजल पोत रही है।

इतने में मैं क्या देखता हूँ कि भाभी पान स्वयं लाकर उठ खड़ी हुई हैं।

उस समय मैं छत की मुँडेर के पास खड़ा हुआ एकाकार हुए गहरे लाल क्षितिज की ओर देख रहा था। तभी वे भी मुझसे कुछ फासले पर आकर खड़ी हो गयीं। मेरे मन में आया—आज यह मुझे पान देने में जान-बूझकर टालमटोल कर रही हैं। पर उसी क्षण वे — पानदान में पान लगा रक्खा है — यह कह चल खड़ी हुईं।

पहले तो सदा की भाँति मैं यही सोचता रह गया कि इतना निकट आने के बाद भी ये मुझे पान दे क्यों नहीं जातीं। परन्तु फिर मेरे मुँह से निकल गया— रक्खा रहने दो। मुझे उसकी जरूरत नहीं है।

कहने को यह तो दिया, पर फिर मैं स्वयं अपने आप से पूछने लगा— "यदि यह उपालम्भ का स्वर है तो—और यदि इसमें मान और अहंकार है तो भी—मुझे उनके साथ ऐसा व्यवहार करने का क्या अधिकार है, यदि मैं स्वत: उनसे कुछ चाहता नहीं।

वे मूक स्तब्ध जड़वत् स्थिर खड़ी हुई मेरी ओर एकटक देखती रह गयी और मैं चुपचाप अपने पलंग की ओर चल दिया।

एक बार मेरे मन में आया वे मेरे पीछे चली आयेंगी उन्माद-मत्त झंझावात-सी मिलन-व्याकुल यामिनी-सी दिवाकर के पीछे हाँफती-दुलती शैल शृंग पर अंचल पसारती-फहराती सुरभित धूप-सी महासागर के उज्ज्वल उच्छल ज्वार-सी।

एक बार सोचा वे मुझे जाने से रोकेंगी जैसे आषाढ़ मास की प्रतिपदा निदाघ के समक्ष आकर उसका पथ रोक दे कुछ भी न कहे तो भी जान पड़े हाथ फैलाकर कह रही है— देखती हूँ कैसे आगे बढ़ते हो!

जैसे गुलाब की खिलती हुई कली पास उड़ते गुन-गुन गाते हुए भ्रमर का निकलना रोक दे। कहने को चाहे एक शब्द भी न कहे—अधर भर खोल दे।

किन्तु ऐसी कोई बात नहीं हुई। तब मैं स्थिर होकर सोचने लगा— 'क्या मैं स्वयं विकारग्रस्त हूँ? उनमें ऐसी कोई बात नहीं है।

फिर कब मैं सो गया मुझे नहीं मालूम।

उस दिन पानी बरस गया था। आकाश में अब भी श्याम घटाएँ छायी हुई थीं। मेरा पलंग कमरे के अन्दर बिछा हुआ था। बिजली की बत्ती बुझाकर मैं लेटा था। लेकिन पंखा चल रहा था। प्रारम्भ में दस-पाँच मिनट तक पलंग पर पड़ा हुआ मैं कुछ सोचता-साचता निद्रालीन हो गया था इतना भर याद है। फिर ऐसा जान पड़ा धीरे-धीरे रुक-रुककर पग-ध्वनि मन्द मन्थरगम करता हुआ कोई मेरे शयन-कक्ष में आ रहा है। वह आ रहा है वह—वह। लो फिर रुक गया ठिठुककर खड़ा हो गया। फिर वह पग-ध्वनि एक शून्य में एक सघन-सूचि-अन्धकार में एक निबिड़-श्याम घनावृत यामिनी में आप-ही आप समा गयी हो। मैं यह भी नहीं जान सकता कि वह पगध्वनि केवल मेरे मन में थी या उसका कोई वास्तविक दृश्यमान स्पष्ट अस्तित्व भी था। किन्तु उड़ते श्यामघनों-सी यह कुन्तल राशि यह रेशम के उलझे हुए गुच्छों-सी मुलायम और चिकनी अलकें मेरे कपोल चूम रहीं और मुक्त-उष्ण वक्ष पर

कमी आ पड़ी है ! आखिर यह है क्या ? मैं वास्तविक प्रमद् की बात सोच रहा हूं या यह सब कोरी कल्पना है !

लो फिर आया किसी की उठती-गिरती सांसों का स्पष्ट स्वर ! कुछ ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरे स्नायु-केन्द्र का रक्त जमने लगा है । मैं बोल नहीं सकता—हिल नहीं सकता ।—यहां तक कि जोर से सांस भी नहीं ले सकता ! फिर ऐसा प्रतीत हुआ किसी की कोमल अंगुलियां मेरे लम्बे-लम्बे घने केशों के बीच पड़कर—कुछ रुक-रुककर—मानों कुछ सोच-सोचकर मेरा सिर सहला रही हैं !

एक बार मन में आया कि क्यों न आंखें खोलकर देख लूं यह है कौन ? क्यों न स्पष्ट जान लूं कि यह वास्तव में किसी का गोप्य आत्मदान है या मेरे ही मन का भ्रम ! पर फिर स्वतः मेरे ही मन में एक मोह उत्पन्न हो गया—यदि यह स्वप्न भी हो तो इस स्वप्न की ही स्थिति में क्यों न रहने दूं ! यथार्थ में ही क्षीण मानस की चरम सीमा उपलब्ध होगी है ! वास्तविक जीवन में तो असम्भव कभी सम्भव बना नहीं बन सकता या नहीं । तब वास्तविक तक बस आय सम्भव-असम्भव को भी स्वप्न के ही रूप में क्यों रुक जाने दूं ! जो बात जीवन में सम्भव नहीं है क्या यह आवश्यक है कि मनुष्य उसे कल्पना और स्वप्न में भी ऐसा पसन्द न करे ? नहीं नहीं मानवात्मा को इतना कठोर दंड देना मैं कभी पसन्द न करूंगा ।

या फिर किसी की लट मुख पर—कपोल पर—आ गई । और फिर मैं अपने आप से प्रश्न करने लगा—नहीं नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता । यह स्वप्न है माया है छलना है । भाभी के सम्बन्ध में ऐसी कल्पना ! छि ऐसा कभी नहीं हो सकता । यह सत्य भी हो तो असत्य हो जाय । यह यथार्थ भी हो तो मिथ्या बन जाय । यह असत्य है मिथ्या है भ्रम है प्रमाद है स्वप्न है ।

मन में आया चिल्ला उठूं । पर ऐसा जान पड़ा मानों किसी ने मेरा मुंह दबा लिया हो । पर मुंह दबाने में जिस कठोरता का अनुभव होता है उसके स्थान पर अनुभव हुआ दमन-दमन की कोमलता का । और साथ ही सौरभ का भान हुआ सा अमम । वाह ! तब तो यह दमन भी मधुर है आघात भी

मृदुल। लेकिन मेरा मुंह क्यों नहीं खुल रहा है ! मैं भी खुले अथवा कुछ देर बाद ही खुल तो क्या हानि है ? जो प्राप्य है उसका तिरस्कार मैं क्यों करूं ! यह फुल्ल-सुमन-सौरभ-सा मेरे चारों ओर जो बिखर रहा है फैल रहा है, किन्तु हो-होकर उड़ रहा है उसकी उपेक्षा ? ना भई यह मुझसे न होगा। मैं योगी नहीं हूं।

एक बार पुनः मन में झटका-सा लगा। अब भी देख ले—देख ले मूर्ख—आंख खोलकर प्रत्यक्ष देख ले—कि यह स्वप्न है या यथार्थ। परन्तु फिर एक अगाध असीम अनंत लज्जा का भाव मेरे अन्तस्तल में फैल गया। मैं सोचने लगा—मामी केवल मामी हैं। और कुछ वे कैसे हो सकती हैं ? सम्भव है कभी किसी विषम अभाव की ज्वाला से झुलस उठती हों। पर वह ज्वाला जो वासना की अतृप्ति तृष्णा के उद्रेक और अकाङ्क्षणीय असन्तोष से उत्पन्न होती है उसकी सीमा क्या है ? प्रत्येक युग प्रत्येक समाज प्रत्येक संस्कृति उसे येन-केन प्रकारेण ससीम और संतुलित रखेगी। कोई भी सामाजिक संगठन असीम वासना की इस उद्दाम स्थिति में पड़कर ध्वस्त हो जायगा।

किन्तु यह हुआ क्या ! मेरी शीतल पलकों भृकुटियों और नासिका की नोक पर यह निःश्वास कैसा ! नहीं-नहीं यह मेरा भ्रम है। किन्तु भ्रम भी क्या इतना विलक्षण रंगीला सुरभित कोमल और मादक होता है ? क्या भ्रम भी मनुष्य के लिए इतनी प्यारी वस्तु है ?

फिर कब मैं सो गया था कब तन्द्रा में था कब स्वप्न-जागरण की स्थिति में आया मैं सोचने लगा—क्या इन साधारण बातों की चेतना भी मैं खोता जा रहा हूं ?

फिर सोचा—कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं सचमुच प्रमाद-ग्रस्त हो गया हूं ? क्या मेरा मस्तिष्क ठीक तरह से काम नहीं कर रहा ?

नहीं नहीं अब ऐसी कोई बात नहीं है। सब निष्प्रभ हो गया है। प्रातःकाल हो रहा है। सूर्य की किरणें फूट निकली हैं। एकान्त का सूनापन अपने आप ही तिरोहित हो गया है। चिड़ियों ने चहकना प्रारम्भ कर दिया है। सारसों की जोड़ी मंगल गान कर रही है। कोयल मदमाय आम पर चोंच मार-मार

कर कुछ बोल गा रही है—अमृत बोल रही है और जैसे मेरे मन के तार-तार को टटोल रही है। ~ रात में बहुत अर्थों में मनुष्य व्यक्ति रहता है। तब मैं भी व्यक्ति मात्र था। मेरी ये कल्पनाएँ सम्भावनाएँ और अनुभूतियाँ व्यक्तिगत थीं। अब मैं व्यक्ति नहीं हूँ। समाज के समक्ष मैं उत्तरदायी हूँ। व्यक्ति होकर भी मैं समाज हूँ।

लेकिन पलंग से उठकर मैं यह देख क्या रहा हूँ! सिरहाने गुलाब के फूलों का ढेर पड़ा है। तकिये पर पान के कुछ दाग हैं। और मा और—मुझे स्वयं पता नहीं था कि पान भी मेरे मुँह में भरा हुआ है!

× × ×

आज प्रातःकाल माधवी को विदा दी। पिताजी की याद करके माधवी बहुत रोयी थी। मेरी आत्मा ने भी मेरे अन्तस् को प्रकट कर दिया था। बारम्बार मेरे मन में यही बात आ खड़ी होती थी—काश वे बने होते!

एक बात और है। कभी-कभी कुछ ऐसी कल्पनाएँ भी मेरे मन में उठती रहती हैं जो संसार की दृष्टि में असम्भव हैं। कभी-कभी मेरे मन में आता है—सम्भव है मेरे पिता अब भी इस संसार में कहीं-न-कहीं जीवित बने हों।

लेकिन अदृष्ट को कौन देख पाया है? कौन जाने यह भी तो हो सकता है कि अन्य प्रकृति ने ही उनका उपभोग किया हो!

लेकिन कल्पनाओं की असामाजिक कल्पनाओं को भी मैं मानसिक रोग ही क्यों न मानूँ? उनके शव की इस दुर्गति को मेरा मन किसी प्रकार स्वीकार नहीं करता। कानों में कोई कहने लगता है—उस सच्चे साधु और देव-पुरुष का देहान्त इतना अवांछनीय हो! ईश्वर की ईश्वरता भी एक बार इसे स्वीकार न करेगी।

लेकिन फिर प्रश्न उठ खड़ा होता कि इस असम्भव का सम्भव क्या है? यही न कि वे इस संसार में जीवित हैं? अच्छा तो वे अगर जीवित हैं तो फिर हैं कहाँ? अगर छिपे हैं तो प्रकट क्यों नहीं होते?

अर्थात् न यही निश्चित है कि वे हैं—न यही निश्चित है कि वे नहीं हैं। तो फिर निश्चित क्या है? और यदि वे जीवित नहीं हैं तो उनके शरीर का फिर हुआ क्या?

तो सम्भव-असम्भव और निश्चित-अनिश्चित की इसी मध्यस्थिति के लिए क्या माधवी रोयी थी ?

माधवी के विवाह के समस्त कृत्य धीरे-धीरे सम्पन्न हो गये । बीच-बीच में भाभी के ममत्व, उनका स्वाभाविक सलोनापन, उनकी हास्यमयी रसभरी बातें, युक्तियाँ और चुहलभरे वाक्य और सब से अधिक उनकी आत्मीयता ने इस अवसर को और भी अधिक सरस बना दिया । सच पूछिये तो उन्होंने पिताजी की याद को बहुत उभरने नहीं दिया—एक तरह से उसे दबाये ही रक्खा ।

लेकिन माधवी रोती हुई गयी, कल्पना-रंजित अनिश्चित भविष्य के हाथ में पड़ जानेवाली नाना सम्भावनाओं की प्रकृत आशंका, अपनी सरल चपल क्रीड़ाओं की एक पवित्र अटूट और विस्तृत स्मृति छोड़कर कुछ काल के लिए मानो रंगमंच के एक पार्श्व में जा छिपी ।

/ ×

इसी प्रसंग में एक निबन्ध-सी छोटी बात मेरे मन पर उतर आयी है ।

मेरे हाथ में यह जो कीमती घड़ी बँधी रहती है, एक दिन तीन बजे यह एकाएक बन्द हो गयी । मुझे सन्देह हुआ, क्या मैंने चाभी नहीं भरी ? तब ख्याल आया कि चाभी तो मैं नित्य प्रातःकाल उठते साथ ही भर देने का आदी हूँ । इसमें भूल कभी होती नहीं । फिर भी मान लिया कि हो सकता है, भूल हो ही गयी हो । अतः जब फिर चाभी दी तो उसने केवल दो चक्कर स्वीकार किये । तब स्पष्ट सिद्ध हो गया कि भूल हुई नहीं थी । लेकिन परिणाम इसका यह हुआ कि घड़ी चलने लगी । और फिर वह बराबर चलती रही ।

मेरी समझ में नहीं आया कि ऐसा क्या हुआ ।

उसी दिन सायंकाल मुझे वास्टनगंज जाने का अवसर मिला । वहाँ वाच-कम्पनी के अपने चिर-परिचित मिस्त्री मिस्टर मुसम्मान से मेरी बातचीत हुई । उसने मान्कोस्कोप को दायीं आँख की पलकों में दबाकर उस घड़ी की परीक्षा की । फिर घड़ी ज्यों-की-त्यों वापिस कर दी । उसका कहना था कि

विश्वास तो नहीं हुआ कि ऐसा सम्भव हो सकता है ; क्योंकि कभी ऐसा सुनने में नहीं आया । किन्तु फिर सोचा कि इस आशय की किंवदन्तियाँ भी हमारे देश में कमी नहीं हैं । बहुधा यह सुनने में आया है कि दो-दो बार चार बार शव का मृत शरीर पुन सप्राण हो उठा है । इतना ही नहीं वह फिर पूर्णायु के पश्चात् ही स्वाभाविक शरीरान्त को प्राप्त हुआ है ।

तब एक आशा की क्षीण ज्योति पुन मेरे मन में जग उठी । विश्वास-सा हो उठा कि मेरे पिताजी भी इस संसार में सदेह सप्राण जीवित हो सकते हैं । यह एक ऐसा अटूट विश्वास मेरे मन में स्थिर होकर बैठ गया कि निरन्तर मैं उस घड़ी की कल्पना करने लगा जब मुझे पिताजी कहीं अनायास मिल जायेंगे ।

× × ×

सदा की भाँति पुन कई दिन से मुझे नींद नहीं आ रही थी । इसलिए शरीर में थकान बढ़ती हो चली जा रही थी । चिन्ताएँ मेरे मानस पर छायी थीं । कल्पनाओं के स्फुलिंग मेरे ऊपर उड़ते थे । विचारों में मनोमंथन की गति को इतना तीव्र बना दिया था कि खाना-पीना भी महत्त्वहीन हो गया था । विश्राम के लिए शरीर की नस-नस इतनी व्याकुल हो उठी थी कि एक दिन जरा-सा अवकाश मिलते ही मुझे नींद आ गयी ।

उस दिन मैंने भाभी की कोई खोज-खबर नहीं ली थी । या मकान के भीतर कमरे में कोई बार गुजर गया था । पर मैं भाभी मेरे सामने पड़ी न मैंने ही किसी से पूछा कि वे कहाँ छिपी बैठी या सदा रही हैं । सच पूछिए तो मुझे इतना अवकाश ही नहीं था कि मैं उनकी याद भी करता ।

बारह बज गये थे और माँ भोजन के लिए मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं । किन्तु मैं तो सो रहा था भोजन करने कौन जाता ! फिर उस समय मेरा जाना जब पेट की अपेक्षा मस्तिष्क और शरीर के अन्य अंगों को विश्राम की ही अधिक भूख थी । और मेरे सोते समय किसी का जगाना मुझे पसन्द नहीं है, माँ यह बात अच्छी तरह जानती थीं । इसका परिणाम यह हुआ कि वे रसोई में चुपचाप

बैठी रही केवल उस क्षण की प्रतीक्षा में कि कब देर की ओस गुमे और भूख का अनुभव करके वह स्वयं यहाँ दौड़ा चला आये ।

एक बात और थी । उस दिन केवल माँ ही नहीं भाभी ने भी मेरी प्रतीक्षा में भोजन नहीं किया था । पर मुझे इस बात का बिल्कुल ध्यान न रहा । ध्यान होता तो भी भाभी की बात टाल जाता पर माँ को तो किसी प्रकार कष्ट न देता ।

अच्छा यह जो मैंने अभी कह डाला कि भाभी की बात टाल जाता इसका भी एक कारण है । और वह यह कि कभी-कभी मेरे मन में आता है—किसी की मादकता में प्यार की जो कल्पनाएँ उठती हैं मानता हूँ उनमें अद्भुत सौन्दर्य होता है । लेकिन मोहकता के विपरीत विराग में पीस के उलझन से कल्पनाओं का जो रूप निखरता है उसकी छटा भी कम मोहक नहीं होती । भले ही उसका मूलाधार केवल एक कहन या कुतूहल-शान्ति का कोई अनुराग प्रयोग हो ।

हाँ तो उस दिन बड़ी प्रतीक्षा के बाद मेरी आँखें जो खुलीं तो क्या देखता हूँ साड़ी की फरफराहट के बीच पलंग के पास खड़ी हुई भाभी कह रही है—

'कभी जाना या भी फिर सोना ।'

और मैंने देखा प्रकाश शिथिल और मन्द है । दीवाल पर एक छाया चित्र बन रहा है । तत्काल मुझे ध्यान आ गया कि उस रात को जो एक स्वप्नमय भ्रान्ति मेरे मन के ऊपर छा गयी थी अगर वह यथार्थ हो तो—और यदि चित्त भ्रम ही हो, तो भी—उसका छाया-चित्र था कुछ इसी प्रकार का ।

इतने में भाभी ने स्विच आन कर दिया । प्रकाश से कक्ष भर गया । और सहसा यकायक मेरे मन में आया कि उस छाया-चित्र की जो सत्ता थी उसकी मूल प्रतिमा (भाभी) ने बात जो मुझसे की वह इस पूर्ण प्रकाश से पूर्व क्यों की ? न यहाँ मुझे मुस्कान नहीं देख ही क्यों पड़ी ? मेरी कल्पना में संभ्रम जो प्रकाश है क्या उसकी अपेक्षा मेरी उन्मनता में मलक्ष्य अन्धकार से उन्हें विशेष प्रीति है ? फिर स्विच खोलकर आने के प्रस्ताव का उस अंधेरे के साथ सम्बन्ध क्या ?

मैं तो एक सीधी बात जानता हूँ ।

पहले स्थिर ध्यान करो—जब प्रकाश हो जाय तब कुछ पान करो।

किन्तु फिर अपने को भी मैंने क्षमा नहीं किया सबसे भले हैं मूढ़ जिन्हें न व्यापहि जगत् गति। इस प्रकार उसके प्रत्येक आचरण में मैं अपनी प्रीति ही क्या अनुभव कर रहा हूँ?

इतने में भाभी स्वयं पलंग के सिरहानेवाली लकड़ी की मढ़र पर झुक पड़ी। बोली— आज तुम कहीं ठीक नहीं पड़े। मिसन की भी तुमने जरूरत नहीं समझी। इस समय अपनी ओर से जो मैंने एक बात कही था तो चुपचाप सुन लिया। आखिर यह सब क्या है? मुझसे कोई भूल हो रही हो तो साफ़ साफ़ कह दो। सच-सच बतलाओ क्या मैंने तुमको कोई तकलीफ़ दी है?

तब मालूम नहीं क्या मेरी कल्पना में एक वाक्य बनकर होठों पर जैसे एक मोती के रूप में खिल गया हो— बिगड़ी हुई घड़िया का हिसाब किताब ही कुछ विचित्र होता है। सोती रहती आज पर बन्द हो जाती और उलटी रफ़्तार से खटाखट चलने लगती है!

और तभी पलंग से उठते हुए मैंने कह दिया— तुम इसी तरह बोलती रहो तो नाराज होने की कौन कहे मैं बिना भोजन किये हजार वर्ष तक जी सकता हूँ!

मुसकराकर भाभी तरल हास की लहरों में लसकती-लसकती फिर यकायक गम्भीर हो गयी।

मिशन-स्क्वायर में मिस्टर जी० एस्० मोदी नाम के एक फोटोग्राफर हैं। घूमता-फिरता हुआ कल यकायक मैं उनके यहाँ जा पहुँचा। यह पहुँचना बहुत कुछ वैसा ही था जैसे किसी सभा में यहाँ बैठे हैं। यकायक पूछ दिया गया— 'पानी पीजियेगा?' तब ज्ञात हुआ कि सचमुच प्यास तो लगी है। यद्यपि प्यास लगने के लिए यह आवश्यक नहीं कि कोई स्मरण ही दिलाये तभी उसका जागरण हो।

मतलब यह कि पहले से ऐसी कोई इच्छा या प्रवृत्ति न थी कि आज अमुक फोटो आर्टिस्ट के यहाँ जाना ही है। पर घर से निकलना ही रहा तो

फिर वहां होते आना भी जैसे आवश्यक जान पड़ा। इसका एक कारण कदाचित् यह भी रहा हो कि आजकल भाभी आयी हुई हैं और यह सोच मना मेरे लिए स्वाभाविक हो है कि उनके साथ एक फोटो क्यों न खिंचा लिया जाय! कुरसी डालकर आप उन्हें बिठाया जाय और पीछे खड़े होकर कुरसी की पीठ पर हाथ रखकर, मैं अपना फोटो खिंचवाऊं।

लेकिन फिर मैं इस बात को सोचकर ही रह गया। क्योंकि एक तो जल्दी जल्दी में कोई ऐसी रचना कर डालने में मुझे अच्छा नहीं लगता दूसरे मन फोटो खिंचवा लेने की बात भाभी से कह देने का साहस भी अभी तक मुझमें उत्पन्न हो नहीं पाया था।

और इतने पर भी मोदी साहब से वार्तालाप बड़े अच्छे ढंग से प्रारम्भ हुआ। उन्होंने पूछा—'क्या फोटो खिंचाना चाहते हैं आप ? और सिगरेट केस मेरे सामने कर दिया। कुछ अजीब-सी बात है कि ऐसे समय मैं कुछ चुहल के झकोरे में आ गया। मन में आया कहूं — 'जो उस शैतान की नजरों में उभरकर रह जाय जो मुझ देखना में मनुष्य बतानेवाली है।' पर ऐसा न कह कर मैंने कह दिया—"जो मुद्रा की अपेक्षा भावों को ही मेरे चेहरे पर उतारकर रख दे।

शर्त बड़ी बेढब है! मोदी साहब ने अंग्रेजी में उत्तर दिया और साथ ही थोड़ी-सी मुसकराहट भी उसमें घोल दी।

"क्योंकि प्रफेशनल बिरस पर मैं ज्यादा विश्वास करता हूं। मेरा जो एक निश्चित मत था वही मैंने कह दिया।

जान पड़ा उनको मेरी बात ने प्रभावित किया है। यद्यपि अभी बयान में उन्होंने ऐसा कुछ प्रकट नहीं किया।

इतने में सुन्दर-सी-सुन्दर वयस्क लड़कियां वहां आ पहुंची। और उन्होंने मोदी साहब को घेर लिया।

हकलाती हुई एक लड़की बोली— म-म-म-अ-मेरी फोटो त-न-न-न तैयार हो गयी ?

मिस्टर मोदी हंसी दबाते हुए बोले—"अभी तो नहीं तैयार हुआ। शायद कल हो जाय।

क्या आंखों में क्या मन नहीं झलकता ? आंखों की धार पर जीवन साथी के साथ काट-छांट नहीं होती ? आंखों के कगारों पर खड़े हो-होकर जीवन सरिता में कूद पड़ना और फिर घण्टों तैरने में जैसा आनन्द आता है उसकी समता विश्व की किस क्रीड़ा से हो सकती है ? आंखों के संकेत पर आज्ञापालन करने में आकस्मिक देवत्व-वृत्ति का भान नहीं होता । मैं तो आंखों द्वारा सारा कुमार-सम्भव पढ़ा सकता हूं । पढ़ने वाली आंखें होनी चाहिएं ।

मोदी साहब मुसकराने लगे लेकिन फिर कुछ सोचकर तुरन्त गम्भीर हो गए ।

मैं सन्देह में पड़ गया । मैंने पूछा— 'क्या ? क्या बात है ? आप का ख्याल कुछ दूसरा है ?

तब उन्होंने कह दिया— 'ख्याल का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि वह मेरी बहिन है । यूनिवर्सिटी में पढ़ती है । Painting Class उसने join कर रक्खी है ।

सुनकर मुझे बड़ा धक्का लगा । कुछ ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे मैंने मुंह पर कालिख पोत ली है । एक तरह की ग्लानि से मेरा अन्तःकरण ओतप्रोत हो उठा । मैं कुछ कह नहीं सका । बड़ी देर तक मेरे मुंह से एक शब्द नहीं निकला । बड़ी मुश्किल से नौकर से मैंने एक गिलास पानी मांगा ।

लेकिन मोदी साहब ने आर्डर दिया— साहब को लेमन पिलाओ ।

मैं सोचने लगा अदृष्ट की यह लीला तो देखो कि दूसरों की घटनाओं की आलोचना करता-करता मैं स्वयं एक घटना का शिकार बन गया ।

चलते समय भी जब मैं चुप ही बना रहा तब मोदी साहब स्वयं कहने लगे— यह मत सोच बैठिएगा कि आपसे कोई गलती की है । मैंने जानबूझ कर आपसे वैसा मजाक किया था and I am proud of it. कल वह फिर आएगी और उसी वक्त मैं आपका एक Snap shot ले लूंगा । पर आप कल आएं जरूर । ठीक पांच बजे शाम को ।

और अब शाम ही नहीं रात हो गयी है । मैं वहां गया नहीं ।

आदमी तो कई हैं ! पर उन्हें यमपाश के हवाले कर आया हूँ। साथियों में तो बात रामपाल कहता जाता है— सब माल सट्ठ-गंवार हैं। मेरा कैसे हो जाता ?

मैंने कह दिया— 'तुम्हारे साथी जो हैं।' यों चाहे न कहता पर उसकी वेश-भूषा और रंग-ढंग देखकर मुझे कहना ही पड़ा। इसके सिवा भाभी की उक्ति अभी भूली भी नहीं थी।

'तुम्हारे जैसे कायर नहीं हैं लेकिन। जान पर खेलकर उन्होंने हमारी रक्षा की है। तुम होते तो तीन हफ्ते तक घर के बाहर कोई तुम्हारी सूरत भी न देख पाता। अन्दर रहते तो चौके पर खाना खाने की भी हिम्मत न पड़ती।' एक बड़ी मोढ़ी पर यकायक धड़ाम-धड़ाम से गिर गया और हाँफता हुआ-सा कहने लगा— 'बीस सिपाहियों, तीन थानेदारों और एक सर्किल इन्स्पेक्टर के बीच में पड़कर जवाब देते वक्त मुँह से बोल निकालना मुश्किल हो जाता। और चेहरा देखकर तो लोग कह उठते—ऐसा मालूम होता है जैसे चार दिन के बुखार के बाद आज ही चारपाई छोड़ी है।'

बहुतेरी बातें प्रायः ऐसी सामने आ जाती हैं जो पहले मुझे तिल भर की कीमत रखती हैं उत्तर देने मात्र से उनका मूल्य बढ़ जाता है। इसलिए मैं अभी तक कुछ कहा नहीं था कि रामपाल आप बोल उठा। बोला— 'इनमें एक आदमी तो नामी डाकू है। कहा जाता है कि अब तक उसने अधिक नहीं तो बीस खून किए होंगे। हम सब सारी बातों तो उसके इशारे पर चलते थे। कहते हैं बदन से खून की पिचकारी निकालने में उसे खास मजा आता है!'

'इस खूंख्वार आदमी को मैं पशु समझता हूँ आदमी नहीं।' मेरे मुँह से निकल ही गया।

यह बातें भी के सम्बन्धित पशुगामी हो सकते हैं। पर जिन्होंने इन पशुओं की मनोभावनाओं का आत्मसम्पर्क तक महसूस किया है उनके दिल से पूछिए वे क्या कहते हैं ? रामपाल बिना किसी हिचक के कह रहा था— 'आज के युग में देवता कहलाकर कायर और निकम्मा बनने की अपेक्षा वे जानवर कहलाकर वीर बनना अधिक पसन्द करते हैं।'

'संयोग की बात तो देखो मैं यहाँ माल उड़ा रहा हूँ। और त्रिवेणी के घर आज चूल्हा भी नहीं जला होगा।

मैंने क्षमा किया रामलाल सचमुच बहुत दुःखी है। तब मैंने जान-बूझ कर उपस्थित प्रसंग की बात मोड़ दी। रामलाल की थाली में परवल ज्योंही कम हुआ मैंने उसकी पूर्ति के लिये चम्मच का हाथ बढ़ाया त्योंही उसने कह दिया—'नहीं नहीं अब मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

और उसने दोनों हाथों से अपनी थाली ढक ली। मैंने भी हाथ हटा लिया। तब उसने पानी का गिलास समाप्त करते हुए कह दिया—"बस मेरा तो भोजन हो चुका।

फिर इस कथन के साथ ही रामलाल उठकर खड़ा हो गया और बोला—'मेरा आज का यह व्यवहार चाहे असभ्यतापूर्ण ही क्यों न हो पर मुझे क्षमा तो करना ही होगा। तुम नहीं जानते राजेन भोजन के जितने भी कौर मैंने खाये हैं सब में क्षमा के आँसू सम्मिलित हैं।'

कण्ठ-स्वर से स्पष्ट प्रतीत हुआ रामलाल के कथन में बोली का ही नहीं अन्तःकरण का उद्बोध भी मिश्रित है। तभी एक बार फिर मन में आया—बातें और आँसू! प्रत्येक आँसू का आकार बातों होता है।

सबेरा होने पर जब मैं उठा भाभी ने बतलाया रामलाल इतने सबेरे चला गया कि चाय के लिए ठहरना भी उसने स्वीकार नहीं किया।

× × ×

आज सारी रात रामलाल की भावुकता में ही बीती। बड़ी देर तक वह ऐसा-वैसा बकता ही रहा। थोड़ी देर तक तो मैंने हाँ-हूँ जारी रक्खी। पर जब मैं भी जान-बूझकर मौन हो गया तब वह भी विवश होकर शांत हो गया।

सबेरे चाय के समय भाभी ने जब कहा आज वे भी सो नहीं सकीं तो मैंने समझ लिया कि रामलाल ही इसका मूल कारण है। पर उन्होंने जो कारण बतलाया उसे सुनकर तो मैं दंग रह गया।

उन्होंने धीरे-धीरे मीठी हँसी के साथ कहा—आज आ जैसे घर जाने ही क्या मालूम हुआ तुम्हें?

फिर मन में आया—मन में जो कुछ आता, बसता और बनता बिगड़ता रहता है वह सब वाणी पर आ ही कहाँ पाता है ? सच पूछो तो मनोभावों की छाप हमसे आधी भी प्रकट नहीं हो पाती। सदा ही हम मन में कुछ छिपा रखते हैं। हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो उन्हीं बातों से रहता है जो कार्यरूप में प्रकट हुआ करती हैं।

× ×

आज जब रामलाल शाम को आया तो मैंने पूछा— 'तुम्हारे गाँव से थाना कितनी दूर है ?' यद्यपि तब तक वह कुरसी पर बैठ नहीं पाया था। कदाचित इसीलिए वह कुछ चकित भी हुआ।

उसने जवाब दिया— 'केवल एक मील' और उत्तर के साथ उसने तश्तरी से पान उठा लिया।

'अच्छा जब फौजदारी हुई तब कितनी देर बाद वहाँ पुलिस पहुँची ?' मैंने पूछ लिया।

'फौजदारी सबेरे पाँच-छः बजे हुई और पुलिस पहुँची ग्यारह बजे। और रोजनामचे के अनुसार चार बजे। अन्तिम वाक्य उसने कुछ धीमे स्वर में कहा। इस बात को लक्ष्य करके मैंने पूछा— 'फौजदारी होने की सूचना पुलिस को किस समय मिली ?'

'करीब साढ़े छै बजे।'

तब यकायक मेरे मुँह से निकल गया— 'मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि इस केस में पुलिस शामिल है। मेरे विचार से पुलिस को [illegible] सात बजे तक अवश्य पहुँच जाना चाहिए था।'

रामलाल ने उत्तर दिया— 'पुलिस को जो रिपोर्ट मिली वह दस वर्ष के एक बच्चे ने दी थी। ऐसी रिपोर्टों पर अगर पुलिस तुरन्त कार्रवाई करने लगे तो वह काम ही न कर सके। और रोजनामचा तो वहाँ तब भरा जाता है जब केस की रूप-रेखा तै हो जाती है। और इन घटनाओं की रूप-रेखा तै करने में पुलिसवाले बहुधा सारा दिन लगा देते हैं। क्योंकि उस पर उनकी योग्यता ही नहीं आमदनी भी निर्भर रहती है। यह पद्धति अंग्रेजी-शासन-काल से बराबर चली आती है और अब तक बराबर चली जा रही है।

इतने में दरवाजे पर फिर चिक हिलने लगी। और रामलाल बोला— देखिए कोई आपका ।

और मैं जो उधर गया तो भाभी ने मुसकराते हुए पूछा—"आप मामा की बहन से अमर ।

वाक्य पूरा करने की जरूरत नहीं पड़ी। मैंने कह दिया— हां—हां यही मुर्गी की मां है। आओ आओ।

और तब साड़ी के दाएं अंचल को दो अंगुलियों से आगे खींचती हुई भाभी ने आकर रामलाल को नमस्कार किया। रामलाल पहले तो सिट-पिटा-सा गया। उठकर प्रति-नमस्कार एवं विनम्र भाव से बल्कि थोड़ी घबराहट के साथ करने लगा जैसे दो पुरुषों के बीच किसी नारी का आगमन कोई घटना हो। परन्तु फिर मुझ से सटकर उसने कह दिया— अगर मैं गलती नहीं करता तो कल जिन्होंने उतनी रात में हमें अतिशय स्वादिष्ट भोजन कराने का कष्ट स्वीकार किया था वे ।

इतना कह कर रामलाल रुका ही था कि मैंने कह दिया— हां यही मेरी भाभी आप ही हैं !

तब रामलाल दृष्टि नीची रखकर मन में रमता हुआ बोल उठा— आप साक्षात् अन्नपूर्णा हैं। आपका दर्शन करके मैं तो जैसे कृतार्थ हो गया!

वर्मा अब विपक्ष में गुमका गया नहीं जाना पड़ेगा। अनायास मेरे मुंह से निकल गया— क्योंकि उसका पुष्प मुझको यहीं मिल गया। लेकिन इस तर्क का पक्षा मैं हूं। स्वादी आमदनी का कोई जरिया नाम बिना मैं पोल कदापि न खोल सका बन्धु यह मैं पहले से कह देता हूं। इसमें शास्त्री का समाहित न समझा।

भाभी हंसने हंसने जब कमरे से बाहर हो गयीं तो उठकर अन्दर चिक की ओट में जा पहुंचीं और रामलाल हतप्रभ-सा होकर फिर कुरसी से उठ खड़ा हुआ। बोला— 'बस मीमिथ मैं आपके यहां आता नहीं हूं। मैं पूछता हूं— यह भी कोई विनोद है जिसमें हंसनेवाला सिर्फ वह आदमी हो और जिसपर हंसा जाय वह रो पड़े! विनोद तो मैं उसको मानता हूं जिस पर सबको हंसी आए। इसका मतलब तो यह हुआ कि आप हंसाने के बजाय रुलाना चाहते हैं और इस तरह विनोद के बहाने कलेजा नापते हैं।

तब समझ में आया कि गीत सुनने की मेरी तन्मयता में ही बढ़िया पान की तश्तरी के साथ वह पत्र भी उड़ गयी होगी।

लेकिन अब इसका उत्तर कैसे दिया जाय ? अब तक वह मानी तो मैला क्या होगी ?

इसी उधेड़बुन में था कि नीचे से किसी ने पुकारा— पाण्डेयजी !

स्वर परिचित था। पुकार गौरीशंकर की थी।

नीचे जाकर मैंने कमरा खोल दिया। गौरीशंकर ने भीतर प्रवेश करते ही कहा— लेकिन यहाँ तो —। पर तब तक मैंने पंखा भी खोल दिया। गौरी चुप रह गया। मैं पूछना ही चाहता था कि इस वक्त कैसे आना हुआ कि गौरी स्वयं बोला— 'रामलाल से सब हाल मिल गया होगा' यद्यपि असली हाल वह अभी बताने लगा।

मैंने कह दिया— लेकिन असली हाल को नकली बयान किया भी तो नहीं सकता। इस विषय पर कल काफी जोरदार बहस हो गयी थी। यद्यपि उस बहस का अन्त अच्छा नहीं हुआ।

'क्यों क्या हुआ ?' गौरी ने पूछा।

"हुआ यह कि आज वह आया नहीं। शायद बुरा मान गया।" मैंने सहजभाव से बतला दिया।

तब गौरी ने आप-ही-आप सब उगल दिया— ऐसे आदमी से दुश्मनी रखना उतना बुरा नहीं जितना मित्रता रखना। यह फौजदारी इन्हीं हजरत की शाजिश से हुई है और तारीफ की बात इसमें यह है कि कहने को आप खुद उससे कोसों दूर बने रहे। गाँव भर में ऐसा आतंक फैला है कि स्त्रियों का घर से निकलना तक मुहाल हो उठा है। जो लोग भाग गये हैं उनके घर का सामान पुलिस ने जिस व्यक्ति को रक्षा के लिए सौंपा है वह स्वयं पुलिस का दलाल है और माल उड़ाने में एक नम्बर का बदमाश। उसके साथ इन महाशय की भी साझेदारी है।

सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने कहा— आप की और बातें भले ही सही हों पर मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होगा।"

प्रतीत हुआ प्रश्न के धरातल में कहीं-न-कहीं अधीर उत्सुकता है। मैं इस समय उनसे ऐसे प्रश्न की आशा नहीं करता था। मैं तो यही सोच रहा था कि वे अपनी ओर से उस चिट में लिखी बात के सम्बन्ध में कुछ पूछती भी हैं या नहीं।

इसीलिए मैंने कह दिया— 'नींद तो गहरी अवश्य आती पर इस सोच-विचार में जल्दी नहीं आयी कि किस तरह की बात करने में किसी को अधिक अच्छा लगता है। यद्यपि अच्छा या बुरा लगना बहुत कुछ सम्बन्धित व्यक्ति की प्रकृति पर निर्भर रहता है। इसके सिवा संस्कार और प्रवृत्तियों से भी उसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। एक ही बात का प्रभाव दो व्यक्तियों पर दो प्रकार से भी पड़ सकता है। किसी को कोई एक बात अगर पसन्द आती है तो दूसरे को भी वह पसन्द आयगी ही यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इसीलिए तो प्रायः हम दूसरों को समझने में भूल कर बैठते हैं। कुछ भूलें ऐसी होती हैं जो कर्म का रूप धारण कर वास्तविक जगत् में अपना स्पष्ट अस्तित्व छोड़ जाती हैं। ऐसी भूलें व्यक्ति से कम समाज से अधिक सम्बन्ध रखती हैं। किन्तु कुछ भूलों का सम्बन्ध केवल सम्बन्धित व्यक्ति के मनोविकारों और उसके प्रतिक्रिया-जन्य प्रमादों से होता है। कर्म का रूप धारण न करने पर भी ऐसी भूलें सम्बन्धित व्यक्ति के मन को प्रायः पंकिल बना देती हैं।

बात जहाँ से प्रारम्भ की थी समाप्त करते-करते वहाँ से विचलित हो गया था। एक क्षण गम्भीरता की अपेक्षा मनोविनोद का ही भाव मानस पर अधिक मुखर हो उठा था।

भाभी चुप थीं। लेकिन ऐसा जान पड़ा कि चुप रहकर भी वे कुछ कह रही हैं। उनके अधर हिल रहे हैं, दाड़िम दशन झलक रहे हैं, पलकों के पक्ष्म झुके हैं, भृकुटियाँ कुछ इंगित कर रही हैं और कमरे की छत पर आकर घूम रही हैं।

तब मैंने बिना कुछ विचार किये इतना और कह दिया— 'फिर अगर मुझे पहले से यह मालूम होता कि किसी को मुझसे बात करने में अच्छा लगता है तो मैं नित्य उससे काम की या बात करने में भला चूक सकता था!'

तब मेरे प्रश्न मन का बिल्कुल मूल भाव न ग्रहण कर वे बोलीं— 'वह बातूनी हो गए हो। तुमसे तो बात करना आफत है।" और बस इतना कहकर वे एक झटके के साथ उठकर चल दीं।

मैंने लक्ष किया चलते समय उनकी गति में कहीं अवरोध नहीं है। मानो उनका इस तरह एकदम से चल देना क्षणिक भावुकता का कोई अनिश्चित आवेग नहीं वरन मेरी बातों का मर्म हृदयंगम करती-करती वे स्वभावतः इसी परिणाम पर आ पहुँची हैं।

मैंने सोचा चलूं मां के पास। देखूं वे क्या कर रही हैं। पर जल्दी से सीढ़ी की ओर ज्यों ही बढ़ा त्यों ही क्या देखता हूं भाभी दीवाल से लगी खड़ी हुई हैं। तब अकस्मात् एक आशंका और सन्देह से प्राण-प्रेरित हो मेरे मुंह से निकल गया—"अरे! तुम यहां खड़ी हो। आओ, बैठो न यहीं चलकर।" कहकर मैंने भाभी का हाथ पकड़कर उन्हें आगे ठेल दिया। फिर इस क्रीड़ा-कौतुक में लिपट मदन कुतूहल के मिस मन में कुछ भी छिपाये बिना रामलाल के आगमन और गौरीशंकर से उसके संघर्ष के साथ-साथ अपना हस्तक्षेप भी विस्तारपूर्वक बतला दिया। भाभी सब धैर्यपूर्वक चुपचाप सुनती रहीं। फिर मुसकराती हुई अन्त में बोलीं—"मुझे सब कुछ मालूम है। तुम से अपमानित होकर वह फिर मेरे पास आया था। बल्कि कहना यह चाहिए कि बीच की दीवाल के अन्दर से मेरे पासवाले कमरे में सोता भी था।

सुनकर मेरे हाथ का चाय का प्याला जैसे कांप उठा। लेकिन न तो मैंने उस गिर जाने दिया न चुपचाप सावधानी से ज्यों-का-त्यों रख दिया बल्कि जान-बूझकर होंठ से लगाया और एक घूंट पीकर थोड़ा रुककर, वहीं रख दिया। कुछ अप्रतिभ-सी होकर भाभी मुझे ताकती रहीं। मैं उठकर खड़ा हो गया तो वह कहने लगीं—"जीजी की बुआ का लड़का और इस नाते मेरा भाई है वह।

यहां यह बतला देना जरूरी है कि भाभी अपनी जेठी सौत को जीजी कहती हैं।

उत्तर में मैं कुछ कहना तो नहीं चाहता था। लेकिन मेरे मुंह से निकल गया— 'वह कोई भी हो। देशभक्ति की पावन भावना का मैं उपासक अवश्य

जाता है या दण्ड-स्वरूप इतनी भारी रकम देने पर मजबूर होता है कि व्यापारी की पद-मर्यादा से उतरकर बेचारा पस्तहिम्मत मात्र रह जाता है। लेकिन बड़े-बड़े व्यापारी ब्लैक-मारकेटिंग में लाखों की रकमें मार देते हैं और आप लोगों के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगता।

वे बोले— हो सकता है कि आप ठीक कह रहे हों। पर मुझे इन बातों का बिल्कुल ज्ञान नहीं है।

तब मुझे मजबूर होकर कहना पड़ा— क्षमा कीजियेगा या तो आप जान-बूझकर अजान बन रहे हैं और मेरी आँखों में धूल झोंकना चाहते हैं। या फिर आप इतने सीधे भोले-भाले और बुद्धू हैं कि आप को यह पद मिलना ही न चाहिए। यद्यपि मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि आप तब तक इस पद में बराबर चिपके रहेंगे जब तक वैधानिक रूप से निकल जाने के लिए बाध्य न हो जायेंगे।

इस पर उन्होंने कहा था— अगर आप इन्हीं बातों के लिए पधारे हों तो क्षमा कीजिए। मुझे इस समय एक बहुत जरूरी काम से बाहर जाना है।

अब दफ्तर में बैठना मेरे लिए कठिन हो गया। बाहर चलने को तैयार हुआ ही था कि इसी समय चन्दिया ने आकर फाल्से का शर्बत भरा गिलास मेरे सामने कर दिया।

धूप तो उतर गयी थी लेकिन हवा अब भी गर्म थी। इसलिए गिलास उसके हाथ से लेकर दो घूँट कण्ठगत कर मन के अनुसार रखकर पूछा—"लखनऊ वाली क्या कर रही हैं?" कहना नहीं होगा कि इधर घर में कुछ दिनों से मामी लखनऊ वाली के नाम से प्रसिद्ध हो गयी हैं।

चन्दिया ने मुस्कराकर उत्तर दिया— सबेरे से ही तबियत सुस्त है। बहुत कहने-सुनने पर अभी तो उठी हैं। भोजन भी नहीं किया है।

मैं चुप रहा। चन्दिया फिर बोल उठी— लेकिन सच्ची बतलाऊँ बाबूजी? स्वभाव की बड़ी सादी है। घमण्ड तो बस रत्ती भर भी नहीं है। वक्त आने पर कोई भी काम हो हमेशा आगे हो जाती है। यह शर्बत खुद उन्होंने तैयार किया है।

जाता है या दण्ड-स्वरूप इतनी भारी रकम देने पर मजबूर होता है कि व्यापारी की पद-मर्यादा से उतरकर बेचारा पल्लेदार मात्र रह जाता है। लेकिन बड़े-बड़े व्यापारी ब्लैक-मारकेटिंग में लाखों की रकमें मार देते हैं और आप लाखों के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती।

वे बोले— 'हो सकता है कि आप ठीक कह रहे हों। पर मुझे इन बातों का बिल्कुल ज्ञान नहीं है।

तब मुझे मजबूर होकर कहना पड़ा— क्षमा कीजियेगा या तो आप जान-बूझकर अजान बन रहे हैं और मेरी आंखों में धूल झोंकना चाहते हैं। या फिर आप इतने सीधे भोले-भाले और बुद्धू हैं कि आप को यह पद मिलना ही न चाहिए। यद्यपि मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि आप तब तक इस पद से बराबर चिपके रहेंगे जब तक वैधानिक रूप से निकल जाने के लिए बाध्य न हो जायेंगे।

इस पर उन्होंने कहा था— अगर आप इन्हीं बातों के लिए पधारे हों तो क्षमा कीजिए। मुझे इस समय एक बहुत जरूरी काम से बाहर जाना है।

अब कमरे में बैठना मेरे लिए कठिन हो गया। बाहर चलने को तैयार हुआ ही था कि इसी समय चंदिया ने आकर फालसे का शरबत भरा गिलास मेरे सामने कर दिया।

धूप तो उतर गयी थी लेकिन हवा अब भी गरम थी। इसलिए गिलास उसके हाथ से लेकर दो घूंट कण्ठगत कर लेने के अनन्तर रककर पूछा—"लखनऊ वाली क्या कर रही हैं? कहना नहीं होगा कि इधर घर में कुछ दिनों से भाभी लखनऊ वाली के नाम से प्रसिद्ध हो गयी हैं।

चंदिया ने संकोच त्यागकर उत्तर दिया— सबेरे से ही तबियत सुस्त है। बहुत कहने-सुनने पर अभी तो उठी हैं। भोजन भी नहीं किया है।

मैं चुप रहा। चंदिया फिर बोल उठी— लेकिन सच्ची बतलाऊं बाबूजी? स्वभाव की बड़ी सीधी हैं। घमण्ड तो जैसे रत्ती भर भी नहीं है। वक्त आने पर कोई भी काम हो हमेशा आगे हो जाती हैं। यह शरबत खुद उन्होंने तैयार किया है।

चंद्रिका सम्भव है और भी बकती रहती लेकिन मैंने उसे प्रोत्साहन नहीं दिया। बल्कि यह कहकर थोड़ा डाँट दिया कि — 'अच्छा अच्छा बहुत हो गया। एक बात के जवाब में चार बातें सुना देना तुम्हें बहुत आता है।

कहने को कह तो गया पर फिर उसके बाद मैं स्वयं संकोच में पड़ गया। क्योंकि गिलास देते क्षण चंद्रिका की मुद्रा कुछ उस ढंग की हो गई, जैसे खुशी के मौके पर मन के लिए अगाड़ी सब किसी मुहल्लगी मालिन की हो जाता है।

शिकायत ने भी मिठास-ही-मिठास देहभर में सन्निविष्ट कर दी है। कहता जाता हूँ कि इतना बहुत काफी है लेकिन तबियत भर नहीं रही है। यह और भी अधिक लगा तो बुरा लगने के बदले उसे और भी मीठा प्रतीत होता रहता।

घर से निकल कर बाहर आ गया। फिर सड़क पर फिर सवारी की टोह में चौराहे पर। लेकिन लगातार सोचता गया कि रामलाल भाभी बात की प्रतिक्रिया अब पड़ता है बहुत भयानक हो उठी है। तब मन को कुछ सन्तोष हुआ। लेकिन साथ ही एक बार यह भी सोचने लगा कि फ्लास्क का शरबत भी यदि मैंने न पिया होता तो और भी उत्तम होता। मन ही यह बात भी न करती तक अभी भाभी—मन ही उल्हाना सुन दो चार जली-कटी बातें भी सुना दी होती।

सोनलाल का मकान आते देर न लगी। घर के अन्दर गया तो देखा वह पीतल की एक छोटी पतली कुप्पी मुँह से लगाए सोना फूलने में जुटा है। भाभी के हार की टूटी लर जोड़ी जा रही है।

तब मन में आया यह लर तो अब जुड़ ही जायगी। लेकिन मेरे जीवन पर दीप्यमान उनके सुखद सम्बन्धों की जो एक लर जुड़ रही थी उसका क्या होगा? क्या वह बीच में ही टूट जाएगी? क्या उसके कुसुम बिखरे ही पड़े रहेंगे?

सोनलाल मुझे सहसा आया जान एकदम से हक्का-बक्का सा रह गया। बोला—"अरे! आप हैं। धन्यभाग्य मेरे जो—। अरे भाभी! अरे भाभी!

उत्तर में भीतर से एक कोमल स्वर फूट पड़ा— 'आयी दद्दा।'

जान पड़ा यह स्वर किसी वयस्क नारी का है। तभी हाथ में लकड़ी की लपच्ची रखता हुआ मानसाराम बोला— अरी राजेन्द्र बाबू आये हैं। बैठने के लिए जल्दी से एक दरी तो दे जा।

तब मैंने कह दिया— बैठने नहीं आया हूँ। मैं तो मामा का हाल लेने आया हूँ। पर तुम तो अभी बना ही रहे हो। जान पड़ता है तैयार होने में देर लगेगा।

मानसाराम नाक पर से चश्मा उतार कर बोला— देर तो ऐसी कोई खास नहीं लगेगी। फिर आप मेरी इस झोपड़ी में आते ही कहाँ हैं। कितनी बड़ी कृपा हुई जो आपके इन चरणों की पवित्र धूल से मेरा आँगन चमकी यहाँ तक कि घर का कोना-कोना तक जगमगा उठा। ऐसे प्रतापी पुरुषों के दर्शन तीर्थों में भी मुश्किल से होते हैं। कितने बड़े भाग हैं मेरे जो आपने स्वयं पधारने की कृपा की।

मानसाराम की बातों से मेरा रोम-रोम प्रसन्नता से सिहर उठा। तब मैंने हँसते-हँसते कह दिया— अच्छा-अच्छा बहुत हो गया। इससे अधिक प्रशंसा का अधिकारी न मैं अपने को समझता हूँ—न इतना बढ़ाकर कहने का कोई लाभ ही मैं तुम्हें पहुँचा सकता हूँ।

ऐसा न कहिए सरकार। मानसाराम जैसे अत्यन्त हीन भाव अनुभव करता हुआ बोला— मुँह देखकर प्रशंसा करने की कमाई का भरोसा मैंने कभी नहीं किया। फिर आप जैसे दया और ममता के अवतार के लिए भी अगर मैं चार शब्द गढ़-गढ़कर न कहूँ तो मेरा मन मुझे कैसे क्षमा करेगा!

मस्तक पर लाल रोरी लगी है। कान की पुतली में चन्दन चर्चित है। बदन पर जो मैली बनियाइन पड़ी है, पसीने की दुर्गन्ध से बिल्कुल तर हो रही है। हाथ में एक घड़ी बाँध रक्खी है जिसकी पालिश उड़ गयी है। चश्मे का फ्रेम गहरे कत्थई रंग का है जिसकी एक कमानी बदली हुई है।

भाभी एक दरी ले आयी थी। उस पर बैठने जा रहा था कि लाल साहब की माँ आ गयी। बोलीं— अरे! आज तो राजन आ गया मेरे घर!

मैंने कहा— प्रणाम करता हूँ चाची!

ठिठकने में विस्मय का नवल उल्लास जो एक रहस्य छोड़ गया है और पग संचालन में ठसक की जो एक विलासिनी मर्यादा स्थापित हो रही है क्या यह सब मेरे लिए एक निमंत्रण नहीं है ?

तत्काल किसी ने आत्मा पर एक ऐसा जोर का धक्का दे दिया कि मैं कल्पना जगत् से गिरकर पुनः धरती पर आ गया। मेरी कुत्सा स्वयं मुझी को धिक्कारने लगी। विश्व का सारा रूप यौवन की सारी गरिमा सदा जो तुझी को निमंत्रण दिया करती है यह तेरी यौन-अतृप्ति का सन्तुलन-हीन प्रमाद है। और इस प्रकार का प्रमाद जिस व्यक्ति के साथ संयुक्त है वह मनुष्य नहीं कपोत है—पुरुष नहीं पशु है।

जलपान की तश्तरी सामने रक्खी थी। चाची बोलीं—'खाओ-खाओ। थोड़ा-सा तो है ही।

'लेकिन सच कहता हूँ चाची मिठाई खाने की मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं है। बल्कि अधिक अच्छा होगा मुझे एक गिलास ठंडा पानी ही पिला दो।

मोतीलाल बोला— मैंने मिठाई खाने से कभी इनकार नहीं किया।

'अच्छा-अच्छा। अरी लाली! बेटा तश्तरी उठा ले जा और भैया के लिए ठंडा पानी ले आ। बर्फ जरूर डालना अच्छा।

चाची के इतना कहते ही लाली तत्काल आकर मेरे आगे से तश्तरी उठा ले गयी। कुछ सोचता-सा उस समय मोतीलाल आप ही बोल उठा— 'नहीं-नहीं अब मुझे भी नहीं चाहिए।

चाची बोलीं—'देखा राजन्, यह मोती तुम्हारा कैसा बना हुआ है! दे दे लाली! साम को भी एक टुकड़ा।

'टुकड़ों पर सन्तोष करने वाला प्राणी मैं अभी तक बन नहीं सका।' मोतीलाल बोल उठा। फिर भी लाली उस मिठाई देने लगी तो मोती 'नहीं नहीं मुझे नहीं चाहिए। मैं तो यों ही कह रहा था।' कहता हुआ मुस्करा गया।

लाली चली गयी पर फिर ध्यान हो गया कि वह घर के अन्दर न जाकर द्वार पर ही खड़ी है।

तब भाभी ने कह दिया—"कृष्ण-जन्म के उत्सव के लिए यह चीनी इकट्ठा कर रही हूँ।

'इसका मतलब तो यह हुआ कि इन्होंने चीनी का व्यवहार ही त्याग रक्खा है।' मैंने कहा।

'बिल्कुल' भाभी बोलीं—'मेरा तो ख़याल है इसने इस साल सिर्फ़ एक-आध बार ही दही के साथ चीनी ली होगी।

तब शालो बोल उठी—'नहीं भी। सिर्फ़ कृष्ण-जन्म के दिन ली थी। करीब दस महीने हो गए।

सुनकर रोम-रोम मेरा जैसे जल उठा। जनता से कितने त्याग और धैर्य की आशा हमारे राजनीतिक प्रभु करते हैं! साथ ही शालो के इस अप्रत्याशित आतिथ्य की पराकाष्ठा की कल्पना करते-करते मैं जैसे स्वप्न देखने लगा।

जैसे काँच के सफ़ेद गिलास में शरबत का असली रंग साफ़ झलक उठता है वैसे ही नारी के नयनों की भाषा अपने अन्तस्तल का मर्म झलका ही देती है। बस देखने वाले चाहियें, जो उस झलक को देख पायें।

शालो के हाथ से शरबत का गिलास लेते क्षण मेरी दृष्टि जो उसके कमलनयन पर जा पड़ी तो मुझे कुछ ऐसा आभास हुआ कि अगर अति सावधानी से मेरा हाथ गिलास पर न जा पड़ता बल्कि एक-आध अंगुली भी उसकी मृणालिनी-सी अंगुलियों से छू जाती तो सम्भव था कि गिलास उसके हाथ से ही छूट जाता। फिर अंगुलियों का वह स्पर्श भी बेकार हो जाता यदि पहले क्षण एकबार उसके अधर का एक कोना काँप न उठता, बोल न उठता।

गिलास लेकर उसे एक साथ ही पी गया। फिर शालो का लक्ष्य करके मैंने कह दिया—'लेकिन शालो, मेरी ज्ञान का सम्बन्ध उमर के साथ उतना नहीं जितना अध्ययन और अनुभव के साथ है। इसलिए ज्ञान प्राप्ति के लिए यह वृद्धता आवश्यक नहीं है। और कर्मक्रिया शिथिल होने के बाद ही ज्ञान के द्वार खुलते हों यह भी जरूरी नहीं है। लेकिन जीवन के लोभ मोह और नाना स्वार्थों से मन को अलग रखकर भगवत्-आराधना में लीन रहने की बात हो तो मैं मानता हूँ कि वृद्धता उसमें निकटता अवश्य लाती है।

ब्याह हो जाने पर भी जिन सन्तानों का जीवन-निर्माण रुक जाता है उनकी जिम्मेदारी अन्ततोगत्वा आती किस पर है ? फिर विधवा हो जाने के बाद जिन लड़कियों का ब्याह कर दिया जाता है क्या वे समाज की सदा उपेक्षा और अवहेलना ही पाती हैं ? उनकी निजी विद्या-बुद्धि शालीनता सेवा और सच्चरित्रता का मूल्यांकन क्या समाज को विवश होकर करना नहीं पड़ता ?

चाची को मेरी बात कुछ नयी-सी मालूम पड़ी। जान पड़ा विधवा हो जाने के बाद उसके विवाह की बात सोचना उन्हें पसन्द नहीं आया। वे बोलीं —'यह तो तुम ठीक कहते हो कि एक स्त्री क्या हर एक आदमी अपने उत्तम कामों से ही समाज में इज्जत पाता है। भले ही उसकी किसी एक बात से कम लोगों का मत मिलता हो। लेकिन फिर बार-बार मैं यही सोचती रह जाती हूं कि अगर भगवान ने लाली के नसीब में सुख ही लिखा होता तो उसके माथ का सिन्दूर ही क्यों मिट जाता। अगर उसका करम फूटना को न होता तो उसकी हाथ की चूड़ियां ही क्यों फूटतीं ! इसके सिवा ऐसा वक्त आने पर झटपट अपनी बहू-बेटी का ब्याह कर देना उतना आसान भी नहीं जितना उस पर बहस करना।

कुछ ऐसा जान पड़ा जैसे चाची से इस प्रकार के उत्तर की आशा मैं करता नहीं था। इसलिए तत्काल कुछ कह सकना मेरे लिए कठिन हो गया। लेकिन क्षण भर में ही— 'यह तुम ठीक कहती हो चाची। मुझे कहना पड़ा— —"लेकिन साथ-ही-साथ तुम यह क्यों नहीं सोचतीं कि आज जो लोग अपने इष्ट-मित्रों और आत्मीय स्वजनों के विरोध की कल्पना मात्र से आगे नहीं बढ़ना चाहते वे कायर कितने हैं ! और जो लोग केवल संस्कारवश विरोध करते हैं और डींग हांकते हैं कोरे आदर्शवाद—ब्रह्मचर्य इन्द्रिय-निग्रह और कठोर साधना—की वे समाज और देश को गुमराह करनेवाले प्रतिक्रियावादी और धूर्त कितने हैं ! लेकिन इसका मैं साफ-साफ देख रहा हूं कि अब देश का भविष्य जिस वर्ग के हाथ में आने वाला है वह ऐसे समाज की मान्यताओं को कदापि महत्त्व न देगा। वह तो उसी समाज को प्रोत्साहन देगा जो जनता की सारी समस्याओं का हल मनुष्य को नवजीवन और नवजागरण का मार्ग प्रदर्शित करनेवाली बौद्धिक चेतना के आधार पर करना स्वीकार करेगा।—

और तब आत्मदान की बात सोचना भी बुद्धिमानी नहीं बुजदिली समझी जायगी। अगर ध्यान से देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि ऐसा समाज आज भी हमारे बीच में है। अब हमारा काम इतना ही भर है कि हम उस समाज को संगठित कर लें।

"तुम कहते तो ठीक हो।" माधो कुछ आश्वस्त-सी होकर बोली—"लेकिन तुम्हारी बात की सचाई तुम्हारे कहने और करने का भेद जब तक जाहिर न हो तब तक कैसे कहूँ कि तुम्हारा यह नया समाज कहीं है भी। कोरी बातों से तो काम चलता नहीं राजेन! जिस दिन मेरी आशा का संसार बन जायगा जिस दिन मैं उसे सुखी-सन्तुष्ट देखूँगी उसी दिन समझूँगी कि मेरा राजेन सच्चा है—मेरा राजेन वीर है। वह जो राय देता है उस पर खुद भी अमल करना जानता है।"

देर काफी हो गयी थी। इसलिए उठते हुए मैंने कहा—"अच्छी बात है। मैं सोचकर देखूँगा कि इस विषय में क्या कर सकता हूँ।" फिर जेब में हाथ डालकर मोतीलाल के हिसाब का पुरजा निकालते हुए मैंने कहा—"इस पुरजे को फिर जरा एक बार अच्छी तरह देख लो।"

सुनकर मौन ठहरकर सोम बोला—"जरा बीबी देना लाली!" और मेरी ओर ध्यानपूर्वक एकटक देखता हुआ कहने लगा—"जरा ठहरिए! आपसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं।" फिर माँ की ओर देखकर बोला—"अब तुम अन्दर जाओ अम्मा।"

× × ×

घर पहुँचते ही मालूम हो गया रामलाल देर से बैठा है। सुनकर मेरे अहंकार को एक तृप्ति-सी प्रतीत हुई। स्पष्ट जान पड़ने लगा उसने अपनी गलती स्वीकार करली है। पर तुरन्त पीरोधंकर की याद आ गयी। कितना अच्छा होता अगर वह भी आ जाता।

कमरे में पहुँचकर कपड़े उतार ही रहा था कि माँ आकर कहने लगीं—"रामलाल अपने घर का ही लड़का है। उससे तुमको कोई ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए जो उसे बुरी लगे। मैंने सुना कि उस दिन तुमने उस बैठक से चले जाने के लिए कह दिया! घर के लड़कों से कोई ऐसा कहता है!

माँ से बहस मैं कभी करता नहीं। इसलिए इतना ही कह दिया— 'तुम तो जानती हो माँ, बिना किसी खास वजह के मैं किसी का कभी अपमान नहीं करता। और अगर करता भी हूँ तो उसी व्यक्ति का जिसका मैंने सदा मान किया है। रामलाल की बातचीत में जो अहंकार, दम्भ और घमण्ड भरा रहता है उसकी दवा यही है जो मैंने उस दिन की थी। पहली खुराक जरा ज्यादा कड़वी लगती है। आशा है अब आगे सारी खुराकें वह बिना शिकायत के पी जायगा। तुम चिन्ता न करो।' मैं उसे समझा गया।

तब हँसती हुई माँ ने पुनः कह दिया— 'बस यही कहने के लिए मैं आयी थी। और हाँ, दुलहिन का हार बन गया?'

मैंने हार माँ के हाथ में दे दिया। क्षण भर वे उसे देखती रहीं। फिर बोलीं—"ठीक तो है। सोने का काम मैं तुझे हमेशा अच्छा समझती हूँ।—और कुछ कहना तो नहीं था? उसकी माँ मिली थी? कुछ कहती तो नहीं थी? बिचारी भाभी की जिन्दगी न जाने कैसे कटेगी!

मेरे मन में नाना प्रकार के विचार यों ही सदा बादलों की तरह घुमड़ते रहते हैं। मैं अभी रामलाल के सम्बन्ध में सोच रहा था। अब पुनः शर्मा की माँ की बात सोचने लगा— क्यों उन्होंने मुझे इतना प्यार किया? क्या उन्होंने मुझे सोने से अधिक मानने की बात कही?

पर उस समय यह सब सोचने का अधिक अवसर नहीं था। कह दिया— 'चाची ने सचमुच मेरी बड़ी खातिर की। बचपन की याद करके बहुत-सी नयी बातें बतलायीं जिनको सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। और हाँ, रामलाल कह रहा था— अम्मा से कहना अगर मकान लेना हो तो लाला साँवरे से मिलकर बातचीत कर लें। उन्हें रुपये की ज्यादा जरूरत है। कहीं ऐसा न हो कि मौके का मकान हाथ से निकल जाय।'

'गया' कहती हुई माँ चौंक-सी पड़ीं। फिर और निकट आकर स्वर को धीमा करके बोलीं— 'तब आज ही लाला साँवरे से मिल लो।' फिर कुछ रुकीं और सोचती हुई कहने लगीं— 'आज कौन दिन है? शुक्रवार? रात में फिर ऐसा बतलाऊँगी।' और फिर हार देखती-देखती चली गयी।

दूसरे दिन प्रात नींद उचटी ही थी कि रामलाल कमरे के द्वार पर आकर ठहर गया और बोला— 'दस-पांच मिनट के लिए आ जाऊं तो बाधा है आपको—'।

चाहता तो नहीं था, लेकिन मुसकराहट आ ही गयी। बाधक का यह अंश भी अपने आप मुंह से निकल ही गया— कोई आपत्ति न होगी। क्यों? आओ-आओ—। कल तक तुम मेरे मित्र थे। इसलिए तुम्हारा स्वागत-सत्कार शिष्टाचार की सीमा तक ही चलता था। आज की बात दूसरी है। अब तो मैं तुम्हारे कान पकड़कर दस-बीस बार तुम्हें उठा-बैठा भी सकता हूं।

इसी समय बंदिया आकर चाय रख गयी।

रामलाल कुरसी पर बैठ गया था। सहज स्वभाव से बोला— कान पकड़ने की तो नहीं, कनेठन की भी नौबत आयगी तो मैं चूं न करूंगा। लेकिन बात जब सामने हो तब बहस न करनी चाहिए। इस सवाल से इस समय इस विषय को स्थगित कर देना ही मैं अधिक उत्तम समझता हूं। आप की क्या राय है? और चाय की कप्पी उठाकर एक कप में चाय डालने लगा।

तब स्पष्ट जान पड़ा कि रामलाल उस दिन वाले विषय के सम्बन्ध में बात करने में झिझक रहा है और यही उसकी दुर्बलता है। किन्तु उसी व्यक्ति से उसके पुनः मिलने का अर्थ क्या होता है जिससे वह एक बार बुरी तरह अपमानित हो चुका है? इस नीति के अन्दर क्या किसी समन्वय की भावना है अथवा इसमें कोई माया है?

मन में यह प्रश्न उठा ही था कि रामलाल मेरे उत्तर की और अधिक प्रतीक्षा किये बिना ही चाय में चीनी मिलाता-मिलाता बोल उठा— राय चाहे जो हो, मैं यह मानने के लिए सदैव तैयार रहता हूं कि विचारों से सम्बन्ध रखने वाले भले-बुरे हमारे व्यक्तित्व के बीच में आकर हमें उठा या गिरा सकते हैं। जीवन का मार्ग मैं नहीं मानता कोई ऐसी सीधी सड़क है जिसमें न तो उतार-चढ़ाव हैं, न बरसात के साफ और चिकनेपन में कोई समान अन्तर। उसमें गड्ढे भी मिलते हैं, चढ़ाव के स्थान पर कहीं-न-कहीं कच्ची काम नहीं पड़ता भी। और यह भी तो हो सकता है कि पगडंडी मिल जाय, जहां नहीं था वहां भी विघ्न हो और वहीं रपटन हो गया हो।

तो यह रामलाल का शांत, स्वस्थ और विचारशील रूप है। यकायक मेरे मन में यह विचार आया ही था कि चाय का वह प्याला मेरे सामने आ गया। साथ ही मैं सोचने लगा—'हूँ, तो रामलाल वास्तव में एक व्यावहारिक व्यक्ति हैं।' और मेरे मुँह से निकल गया—'तो तुमको एकदम सनकी समझ लेना तुम्हारे प्रति अन्याय करना है। क्या? कहते जाओ, हाँ। और उस दिन अगर इतनी ही शान्ति के साथ तुमने अपने ऊपर आये हुए आरोप का उत्तर दे दिया होता तो तुम्हारी जाति नष्ट हो जाती या तुम्हारा व्यक्तित्व ही मर जाता! क्या? क्योंकि वाणी पर संयम रखना शायद उन लोगों का धर्म है जो नपुंसक, कायर और भीरु होते हैं। क्या? क्योंकि युक्ति-संगत, मार्जित और प्रामाणिक उत्तर देना कदाचित् उन लोगों का कर्तव्य होता है जो अपराधी होते हुए भी अपने आप को निरपराध सिद्ध करना चाहते हैं! क्या? क्योंकि गाली के रूप में उत्तर देने से बढ़कर बुद्धि और तर्क के बल का कोई भी उपयोग कभी उत्तम हो नहीं सकता। क्या?'—मैं कहता ही चला गया।

सम्भव था कि मैं और भी आगे बढ़ जाता, लेकिन इतने में रामलाल अपने लिए चाय बनाता हुआ बोल उठा—'मैंने पहले ही निवेदन किया था, पहले हम चाय के घूँट गले के नीचे उतार लें—एक मिठाई के साथ—और उसके पश्चात् मेरा अभिप्राय था, अगर आवश्यक हो तो, विवाद के कड़वे घूँट भी थोड़े-बहुत घूँटक लिए जायँ! पर आप तो चाय ...।'

यह भी उत्तर देने की तैयारी कर लेने का ही एक ढंग जान पड़ा। लेकिन मैंने आपत्ति नहीं की। कह दिया—'चाय ही नहीं, कहो तो पूरे भोजन का प्रबन्ध कर दिया जाय। क्योंकि उत्तर देने में जो परिश्रम पड़ेगा, उसको सहन कर सकने की शक्ति तो इस विवाद के ब्याज में मिलनी ही चाहिए! क्यों?'

उत्तर में रामलाल चाय का प्याला मुँह से लगाते-लगाते नीचे गिराते और हँसते हुए बोल उठा—'पूरे भोजन का प्रबन्ध करने में आतिथ्य का गौरव बढ़ता ही है, मेरा पेट उतना भी नहीं है, मैंने कभी सोचा नहीं था। और जवाब देना जिनके लिए कभी मजबूरी नहीं हुई, हो भी नहीं सकती, वे यदि कभी जवाब देने में ही गौरव का अनुभव न करना चाहें तो उनकी छाती

या मतभेद से मर्माहत होकर जीवन के साधारण व्यापारों में अन्तर डालना उचित नहीं है।

मेरे इतना कहने पर रामलाल ने प्याला होठों से लगा लिया।

उस दिन जब इसी रामलाल को मैंने इस कमरे से बाहर निकाल दिया था तब गौरीशंकर को गाली देते समय इसने कहा था— देशद्रोही पामर नीच। क्यों कहा था इसने ऐसा यह मैंने कभी सोचा न था। लेकिन हृदय के किसी कोने में वे शब्द पड़े अवश्य रह गये थे।

आज रामलाल का मन शान्त था। मैंने भी उसे एक तरह से क्षमा ही कर दिया था। अतएव मैंने पूछ लिया— अच्छा उस दिन तुमने गौरीशंकर को जो देशद्रोही कहकर गाली दी थी उसका आधार क्या था? सच-ही-सच बताना। क्योंकि और चाहे जो कुछ तुम्हें मिले लेकिन मुझसे तो तुम कभी मार खाओगे—न कभी अपमानित होकर लौटोगे। मेरी धारणा है इतना आश्वासन तुम्हारे लिए यथेष्ट होगा।

मुझे इस प्रकार के आश्वासन की जरा भी जरूरत नहीं है। रामलाल गरजता हुआ बोल उठा— क्योंकि इसका आधार न्याय नहीं कृपा है। और किसी की भी कृपा से जीवन का एक क्षण भी बिताना मैं अपने लिए अपमानजनक समझता हूँ। रही बात गौरीशंकर की, सो अच्छा हो आप मेरे सामने उसकी चर्चा न करें।

'यही तुम्हारे मन में चोर है।' मुझे कहना पड़ा— 'यथार्थ स्थिति को छिपाकर जो केवल काल्पनिक आधारों पर आलोचना एवं सन्देह से ग्रस्त होकर रोष और उपेक्षा का अवलम्ब ग्रहण करता है वह स्वयं अपने साथ प्रवंचना करता है। हमारी समझ में नहीं आता कि अगर आप अपनी वास्तविक स्थिति को प्रकट नहीं कर सकते तो इस तिरस्कार की आवश्यकता आपको क्या है? हम यह भी नहीं समझ सकते कि ऐसे प्रश्न करने पर जो उत्तेजना आप प्रदर्शित करते हैं वह आपकी स्थिति को सुरक्षित रख सकती है?'

न रहे सुरक्षित! मुझे इसकी परवा नहीं है। रामलाल ने उपेक्षा भाव से कहा ही था कि लेकिन मुझे परवा करनी पड़ती है। एकाएक किवाड़ खोलकर गौरीशंकर बोल उठा। पता नहीं वह कब दरवाजे पर आ गया था।

लिए अतिवांछित महत्त्वाकांक्षा की बात तो यह उस शासन का ही कथन हो सकता है जिसे हमारे ही सामाजिक मन में इतना समय बनाया है इतना अधिकार दिया है। लेकिन प्रश्न यहां यह उठता है कि यह ठहरेगा और कितने दिन तक? कहता हुआ उठकर गौरीशंकर चलने लगा। बोला—'मैं अब चलूंगा राजेश भाई। एक जरूरी काम से निकला था। आप लोगों की बातें सुनकर बीच में शाहुक आ खड़ा हुआ।'

मैंने कहा—'बैठो-बैठो। मैं भी चलता हूं।'

गौरीशंकर बोला—'नहीं अब मुझे जाने दीजिए।'

रामलाल एक शब्द नहीं बोला और गौरीशंकर चला गया।

मुझे ख्याल आ गया अभी आज ही तो भाभी के हाथ की चाय पीते पीते मैं स्वयं सबेरे यहां से चला गया था। उस समय स्वयं मैंने इस बात का ध्यान नहीं रखा था जिसे अभी-अभी मैं इस रामलाल को समझा रहा था। फिर उठकर शरीर पर पुनः कुरता धारण कर मैं चलने लगा। रामलाल से मैंने कह दिया—'इस समय एक आवश्यक काम से मुझे फिर बाहर जाना पड़ रहा है रामलाल। रात को ही सब तो मिल सका।'

पांच

सड़क पर आते-जाते बराबर यही सोचता आ रहा था—क्या मनुष्यमात्र की यही गति है या मैं ही एक अपवाद हूं?

जिस बात का उपदेश मैं दूसरों को देता हूं उसका पालन मैं स्वयं क्यों नहीं करता! जिस आदमी को मैं अभी अपने कमरे में छोड़कर चला आया हूं उसकी जगह जो कोई भी दूसरा आदमी होता क्या उसके साथ भी मैं ऐसा व्यवहार करता?

तो जिन के साथ हमारे सम्बन्ध जिस परिमाण में निकटतम होते हैं उसी सीमा तक क्या हम उनकी उपेक्षा और अवज्ञा भी कर सकते हैं? क्या हमारे सम्बन्धों की निकटता ही वह वस्तु है जो हमें उनके प्रति अवांछित व्यवहार करने तक की स्वतन्त्रता दे देती है!

रिक्शे पर बैठा हुआ मैं सोच रहा था कि एकाएक लाला सांवर का मकान सामने आ गया। उतर ही रहा था कि रिक्शेवाले ने जो मस्तक का पसीना पोंछकर टपकाया तो एक धार-सी बंध गयी।

फिर ध्यान आ गया उस दिन कोई कह रहा था—ये रिक्शेवाले जिस दिन से रिक्शा खींचते हैं उसके बाद दस-पांच वर्ष के अन्दर अपनी इह लीला समाप्त कर चल देते हैं।

तो ये पैसे जो मैं इसकी मांग के अनुसार इसको दे रहा हूं ये क्या हैं? क्या इनमें विष नहीं है? कमीजों में इनको कसकर काम आयें बच जाते हैं पर इन पैसों के खाने का विष तो तभी उतरता है जब इसकी भार्या इसे अपने घर से जीवन और प्राणों से यौवन और उसकी सब रानी उमंगों के आंसू भरे चीत्कार से सदा के लिए विदा करती है। लेकिन सवाल है कि आदमी फिर करे क्या? घर में चार खानेवाले हों और उनका भार एक आदमी पर हो उस आदमी को सरकार और समाज ने इसी योग्य बना रखा हो कि वह कहीं कोई इज्जत की नौकरी न पा सके और व्यवसाय के लिए उसके पास पूंजी न हो तो फिर वह जाय कहां? रिक्शा चलाने में पांच मिनट का दाम चार आने होता है। और किसी काम में इतनी सीमाओं में घिरा आदमी इतने पैसे पायेगा कहां?

तो आज की इस सभ्यता ने मनुष्य को कुत्ता बना डाला है। पैसे की मांग पैसे की पुकार और पैसे की भूख! पैसा! हाय पैसा! यह कैसी चिल्लाहट है? उफ। बिल्कुल वैसी ही आवाजें हैं जैसी जीवन पर होती हैं!

एकाएक हृदय पर एक आघात सा अनुभव कर रहा हूं क्योंकि लाला सांवर का मकान जिसमें जा रहा हूं और अवसर की ताक में मैं उसे खरीदने को आतुर हूं। कहने के लिए बहुत-सी बातें हैं। कहने के लिए हम यह मानते हैं कि कोई तो उसे खरीदता ही। और जब तक कोई खरीदता लाला सांवरे के समक्ष नहीं आती तब तक वे उस मकान का बचाव ही क्यों? फिर जल्दी बिक जाने पर उनको जो सन्तोष और शान्ति मिलती उसका अधिकारी

मैंने पास जाकर कुर्सी के सिर पर हाथ रखकर अपना परिचय दिया तो लाला जी प्रसन्न होकर बोले— 'ओ! तो तुम पाण्डेयजी के नाती हो! बैठो-बैठो। तुम तो घर ही के लड़के हो। पाण्डेयजी आदमी नहीं रत्न थे, पुरुष नहीं पारस थे। और तुम्हारे पिताजी तो मुझको बहुत अच्छी तरह जानते थे। बड़े सीधे थे बेचारे—बिल्कुल देवता-स्वरूप। हमारे यहां आये हैं दो-चार बार। और हमारी तुच्छ भेंट भी कभी उन्होंने नामंजूर नहीं की।'

मैं कुर्सी पर बैठ तो गया, पर पड़ गया बड़े सोच-विचार में। जिस पर धन और व्यक्ति के दया-दाक्षिण्य उदारता और कृपा के पात्र मेरे बाप-दादे पुश्त दर पुश्त रह चुके हैं उसके साथ मेरा उस विषय में बात करना— नहीं-नहीं, ऐसी धृष्टता मुझसे न होगी!

पर दाबने वाला नौकर उठकर चला गया था। लालाजी बोले— 'बचपन में तुमको देखा था। उसके बाद तो तुम जो पढ़ने के लिए बाहर चले गये तो फिर देख ही न पड़े। और कहो भी ग   ना तुमने कर ही लिया होगा। और ब्याह भी तुम्हारा   ?'

मैंने केवल संकेत से कह दिया— 'नहीं।'

'नहीं हुआ! पर तो अब हो जायगा। एक-से-एक बढ़कर पढ़ी-लिखी रंगीन लड़कियां अपनी कमर पर तुम्हारे हाथ का सहारा पाकर अपना भाग्य सराहेंगी।' फिर दूसरी ओर देखते हुए बोले— 'अरे उजागर, कहां गया रे?' फिर धीमे स्वर में 'ये नामाकूल नौकर वक्त पर काम करना कभी सीख ही नहीं सकते! मुझे तो अब ऐसा मालूम होता है कि इस जमाने में नौकर कोई नहीं रह जायगा। आपका क्या खयाल है?'

'आया सरकार।' इतने में नौकर बोल उठा।

'सरकार के बच्चे, देखता नहीं कौन आया है! कितनी देर हो गयी पान तक नहीं दे गया!'

इतने में उजागर पान की तश्तरी सामने लाकर हाजिर हो गया। तश्तरी की तरफ दृष्टि डालते हुए लालाजी फिर से बोले—"सिगरेट नहीं लाया उल्लू का पट्ठा।" फिर धीमे स्वर में कहने लगे— नवाब नौकर मैं रखता हूं चाहे जहां रहें रहते हमेशा नवाब ही हैं। पूछिए मैं अगर हुक्का पीता हूं

यहाँ माँग-माँगकर खायी है। बाद में जब उन्हें बतलाया गया तो उन्होंने कसम खिलादी कि किसी से कहना नहीं। मगर खाना उन्होंने बन्द नहीं किया। अब तो वे हैं नहीं इसीलिए हर्ज न समझकर मैंने बतला दिया जिससे आपको एतराज होता भी हो तो न हो।

मैं उठकर खड़ा हो गया और मैंने कह दिया— क्षमा कीजिए। मैं यह सब सुनने के लिए यहाँ नहीं आया। और आप जैसे इतने बुजुर्ग से मैं ऐसी आशा भी नहीं करता। मुझे ताज्जुब है कि इस तरह मेरे पीछे पड़ने की हिम्मत आपको कैसे पड़ी! मैं सिर्फ पान खाये लेता हूँ। मुझे एक मामले में आपसे कुछ बहुत जरूरी बातें करनी थीं। मगर देखता हूँ आप यह तक भूल रहे हैं कि आपको मेरे साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। अवस्था में आप मेरे बाबा के समान हैं। फिर भी—

बीच में बात काटकर लाला साहब कहने लगे— 'फिर भी तबियत मेरी आपसे कहीं ज्यादा जवान है। और अगर आप मुझे माफ करें तो मैं साफ-ही-साफ यह कह देना चाहूँगा कि तबियत ही वह चीज है जिससे आदमी आदमी है, ईमान ईमान है। मैंने आपसे जो कुछ भी कहा, सिर्फ इस ख्याल से कि आप एक शरीफ घराने के लड़के हैं और शराफत का ही यह तकाजा है कि मैं आपकी कुछ खातिर करना चाहता हूँ।

बाज आया मैं ऐसी खातिरदारी से जिसको स्वीकार करने में मेरे विचारों का खून होता हो। मुझे अगर पहले से यह मालूम हो जाता कि मैं जिस व्यक्ति से भेंट करने जा रहा हूँ वह इतना सर्वभक्षी है तो उसकी दिलचस्प जिन्दगी का ऐसा कीमती वक्त बरबाद करने की मैं कभी हिम्मत न करता! अच्छा तो अब जाना चाहता हूँ। नमस्ते!

हाथ जोड़कर नमस्ते करके ज्योंही मैं चलने लगा त्योंही अकस्मात् पर्दे से निकलकर एक युवती ने तुरन्त अपना नमस्ते पिस्तौल की बात की तरह मेरे सीने पर दाग दिया।

यह युवती बड़ी सुन्दरी थी। सिर से पैर तक उसको एकदम अभिनव स्वरूप वेशभूषा में पाकर चकित-विस्मित होकर मैं उसे देखता रह गया। सहसा मेरी समझ में न आया कि मैं उससे क्या कहूँ।

इतने में स्वयं भाभी ने ही लाला सांवरे की ओर देखकर कह दिया— "बाबाजी भैया ने ही इनको उस काम से आपके पास भेजा था। लेकिन ये कब भी खड़े हुए और आपने यह तक न पूछा कि कहिए किस लिए तकलीफ की।"

तब भृकुटियों में बल डालकर अत्यन्त आश्चर्य के साथ लालाजी बोले—'अच्छा तो कुंवर साहब ने मेरा मकान खरीदने के सिलसिले में यह तकलीफ की है। मुनिया! बैठिए-बैठिए। तशरीफ रखिए!'

एक बार तो मन में आया कि अब भी मैं चला ही जाऊं। परन्तु फिर भाभी और इस लाला सांवरे के सम्पर्क का भेद जानने की इच्छा कुछ ऐसी प्रबल हो उठी कि मुझे विवश होकर पुनः वहां बैठ ही जाना पड़ा।

मैं कह नहीं सकता उस समय वैसी परिस्थिति में मेरा पुनः वहां बैठ जाना उचित था या नहीं। लेकिन मैं इतना स्वीकार करता हूं कि जो बात कहकर भाभी ने मुझे वहां बैठने को विवश कर दिया वही बात भाभी के स्थान पर यदि कोई अन्य व्यक्ति कहता तो मैं वहां कदापि न बैठता।

× × ×

इधर कई दिन से छोटी भाभी से भेंट हो नहीं रही है और बड़ी भाभी से जब कभी मिलना भी चाहता हूं तो पास-पड़ोस की किसी-न-किसी नारी के साथ बातों में लीन पाता हूं। जब मैं काम के बाद अन्दर रहता हूं तब बाहर कमरे में ऐसा प्रतीत होता है कि छोटी भाभी अभी-अभी रसोई से गयी हैं और चुपचाप कहीं बैठी हुई थकान मिटा रही हैं। चाय सवेरे से हमेशा चनिया ही दे जाती है। रात में भोजन से थोड़ी देर पहले दूध देने के लिए अब चनिया ही आने लगी है।

इस प्रकार जीवन में एक सहज रस-धारा की तरह जिन भाभी ने प्राण और स्पर्श दान की चेष्टा बिना किसी आग्रह के आरम्भ कर दी थी आज उन्हीं का अभाव पड़ता है मेरे लिए यह विषय कम नहीं है। रात के भी सब से बारह-एक बजे तक निरन्तर शयनागार की दीवाल छत की कड़ियों और खिड़की के शीशे देखता जाता हूं किन्तु वहीं किसी भी कोण से उनके

ही नही थी आता कैसे उनके पास ? आवश में आकर एकबार जो कुछ मैं करता था सत्य और सिद्धांत पर आधारित होने के कारण उसके परे कुछ सोच नही सकता था। फिर स्वयं मुझे भी इस बात का ज्ञान नही था कि मेरे कथन की बात उनके लिए इतनी कटु और कठोर बन जायगी कि वे किसी प्रकार स्वयं मेरे निकट आना भी स्वीकार नही करेंगी। नही तो उसी बात को एमे ढंग से कहता कि उन्हें जरा भी बुरा न लगता।

पग पद ध्वनि-सी हो रही है। जान पड़ा कोई इधर ही आ रहा है। मां नही हो सकती क्योंकि वे सात्ठा घाम में प्राय बन्द जाती हैं। —बड़ी मामी इधर आना जैसे जानती ही नही। छोटी मामी भी नही हो सकती। अरे यह तो भवियां है ! तब मैंने पूछ लिया—'क्या रो रामलाल आज-कल में आया या नही ?

भवियां बोली— नहा आया। वैसे चाहे आते भी पर गर्नीजी ने एसा डांट दिया है कि अब शायद ही आये।

किस बात पर डांटा था उन्होंने ? मैंने पूछा।

वह बोली— यह तो मैं नही जानती सरकार। काम करती हुई मेरे कानों में इतनी ही आवाज आई थी कि गर्नीजी कह रही हैं 'आप यह जो अक्सर रात को बारह-एक बजे दरवाजा खटखटाया करते हैं यह आप का ठीक नही इस पिस्तास का बाप है जिस कमरे पर लटकाये आप इधर उधर घूमा करते हैं।

कमरे के आगे खुला छत है। तब उसी पर आकर मैं चुपचाप इधर से उधर चक्कर लगाने लगा। किसके मन में चोर है मेरे या उनके ? दोनों के मन में है तो प्रथम कौन है ? आज फिर पहले इसी का तो मर्म लेना चाहता हूं। विचार करके एकबार यह स्थिर कर लेना चाहता हूं कि परिस्थिति की इस पतन सीमा का आधार क्या है ?

दूसरों के अपराधों पर विचार करना बड़ा सरल है किन्तु जब कोई एसी घटना हो जिसका सम्बन्ध अपने जीवन और उसकी कर्मधारा से हो, तब मनुष्य अपने को कैसे निष्पक्ष रखे ! क्या मेरा अन्तःकरण इतना उज्ज्वल है कि मैं मन्तव्य उसपर छोड़ कर चल सकूं ? मामी के मन की उमंग मानने वाली

या यह चन्द्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनी है क्या मेरे मन की दुनिया में भी उसका कोई अस्तित्व है ?

तब आप-ही-आप मन के अन्दर हो मानो किसी ने कह दिया—सब कुछ होने पर भी यह गगन शून्य है। लेकिन मेरा मन तो शून्य नहीं है। ये चन्द्र और तारे सुन्दर चाहे कितने प्रतीत हों पर अपने प्रकृत गुणों के अतिरिक्त ये हमारे लिए कुछ कर नहीं सकते। कवियों ने चन्द्र को खिलौना मानकर शिशु के समान पकड़ने की कल्पना की है। पर यदि यह वास्तव में हमारे लिए प्राप्य हो तो क्या हम उसका लाभ उठा सकेंगे ? आज भी ये जिस सीमा तक हमारे लिए आकर्षण की वस्तु बने हुए हैं केवल इसलिए कि सब तरह से हमसे दूर और दुर्लभ हैं। और सुलभ भी हों तो उनका उपयोग क्या ? प्रकाश, शीतलता और चमक— सब मिलाकर एक सुहावनापन और सौन्दर्य। सो भी तब जब ये हमसे दूर हैं। निकट आने पर यह सौन्दर्य भी नष्ट हो जायगा। क्योंकि सौन्दर्य उस दृष्टिकोण, साधन और प्रकार से उत्पन्न होता है जो उस वस्तु में नहीं हममें होता है।

तो ये चन्द्र और तारे! इनका सौन्दर्य भी कल्पित है जो इतने प्रत्यक्ष हैं!

हाय रे मनुष्य तू कितने भ्रम में रहता है!

४

यकायक ध्यान आ गया मालती इस समय क्या कर रही होगी ? मैं तो यहाँ पलंग पर करवट बदल रहा हूँ और वे ? लेकिन यह प्रश्न मेरे मन में उठता ही क्यों है ?

क्योंकि वे मुझे प्रिय लगती हैं। उनकी एक-एक बात, उनकी एक-एक मुद्रा, मुसकराना, हमेशा चलना, बोलना, छम-छम करके निकलना और एक प्रकार हो आने पर खिलखिलाकर हँस पड़ना—सब कुछ एकदम से अच्छा-ही-अच्छा मधुर-ही-मधुर क्या लगता है ?

क्योंकि वे हमसे दूर हैं—दुर्लभ हैं। और यदि वे सर्वथा सुलभ अपनी—सदा के लिए अपनी, किसी और की रत्ती भर भी नहीं—रहें तो ?

सुनकर मैं स्तब्ध हो गया। मैंने भाभी की ओर देखा तो क्या देखता हूँ कि वह भी पुस्तक पर ध्यान लगाये हुए है। इतने में बड़ी भाभी बोलीं— 'अब मेरा कहना सिर्फ यह है कि तुम्हारे इस आज मात्र के दान से क्या उस बच्चे पर पड़नेवाली मार बन्द हो जायगी ?

प्रश्न मुझे बड़ा विचित्र हुआ लगा। भाग्यवादियों का यह बड़ा पुराना नारा है कि हम कुछ नहीं करते। करनेवाला तो कोई और है।

जो हो बड़ी भाभी का इतना कहना था कि छोटी भाभी पुस्तक को एक ओर रखती हुई बोलीं— 'अब तक तो मैं चुप थी जीजी। लेकिन अब मुझे कहना ही पड़ा कि हाँ बन्द हो जायगी। बिल्कुल उसी तरह जैसे मेरी कोख से उत्पन्न हुआ पुत्र तुम्हें माँ बना देगा। और जब तुम्हें माँ कहकर पुकारेगा और रोयेगा तब यह कहने को जैसे तुम्हारा मुँह बन्द हो जायगा कि इसने मेरे उदर में जन्म नहीं पाया, इसने मेरी गोद नहीं भरी, यह मेरे वक्ष का रस नहीं पिया—यह मेरा पुत्र कैसे हो सकता है ? और सुनोगी ? तो सुनो और बतलाओ कि यह कौन-सा तर्क है जिससे कभी इस जीवन भर का नाता नहीं निबाह सकने, अवसर आने पर उससे घड़ी-दो-घड़ी या क्षण भर का नाता भी न निबाहें ! माना कि अपने इस क्षुद्र दान से मैं उस बच्चे पर पड़नेवाली मार—उसका रोना—सदा के लिए बन्द नहीं कर सकती। पर जिस क्षण मैंने उसे रोते पाया है, उस क्षण की अपनी ममता का दान भी क्या मैं नहीं कर सकती ? और हृदय-दान की क्रिया में आँसुओं के कण भर देना ही बहुत बड़ी मानवता है—आँखों में छलछलाये दो आँसू कोई मूल्य नहीं रखते, मैं इसे मानने से सर्वथा इनकार करती हूँ।'

इस पर बड़ी भाभी मौन रह गयीं। और माँ ने रामायण का बस्ता बन्द करते हुए उठकर तत्काल कह दिया— 'वाह बहू ! क्या बात कह दी तुमने ! भगवान करें युग-युग तक तुम्हारा सौभाग्य अचल-अटल बना रहे।'

सोचता हूँ आज मेरे हृदय के बन्द कपाट खुल गये हैं। आज मैं समझ पाया हूँ कि भाभी क्या है ! आज मैंने यह अनुभव किया है कि उनके सम्बन्ध में मैंने कैसी-कैसी कल्पनाएँ की थीं, वे कितनी भ्रमात्मक और निर्मम थीं ! अब उन्हें मेरे पास आने की जरूरत नहीं है। अब मैं स्वयं उनसे मिलने जाया करूँगा !

वातावरण बड़ा गम्भीर हो गया था। कोई किसी से कुछ कह ही नहीं रहा था। तब बड़ी भाभी बोलीं—'इस बात को इतनी दूर तक मैंने कभी सोचा न था। मैं तो अब तक यही समझती आयी हूँ कि सभी प्रकार का दुख सुख केवल भाग्य से मिलता है। आदमी के करने से कुछ नहीं होता और आदमी किसी को कुछ दे भी नहीं सकता।

'ऐसा समझने का तुम्हें पूरा अधिकार है जीजी' कण्ठ-स्वर की उसी मादकता के साथ छोटी भाभी कहने लगी—'पर मुझे भी यह समझने का उतना ही पूरा अधिकार है कि स्थायी सुख-सन्तोष की प्राप्ति का डंका पीट पीट कर जो लोग प्राप्य वर्तमान का पूरा उपयोग नहीं करते वरन् मिथ्या शंकाओं और सम्भावनाओं के जाल में पड़कर गलत कदम रख देने में ही बहुत बड़ी बुद्धिमानी समझ बैठते हैं कौन कह सकता है कि वे भविष्य में सदा कृतकार्य ही होते हैं?

'क्या मतलब?' यकायक त्यौरियाँ बदलती हुई बड़ी भाभी बोलीं—'तुम कह क्या रही हो यह मैं समझ नहीं पा रही हूँ।

'मतलब ऐसा कोई गूढ़ तो है नहीं जीजी जिसका भाष्य करने की जरूरत हो' यकायक पुनः स्वर-गम्भीर होकर छोटी भाभी बोली—"कोशी का यह असहाय बच्चा हमारे आज का—वर्तमान का—अवलम्ब न पाये और भविष्य की इस आशा पर उसे रोता छोड़ दिया जाय कि जो सब का देता है वही उसे भी देगा मैं देनेवाला कौन हूँ? तो मैं समझती हूँ कि संसार और समाज के प्रति अपने कर्तव्य से मुँह मोड़ लेने की इससे अधिक हीन और कायर भावना दूसरी हो नहीं सकती!

"रह गई बात यह कि आदमी क्या देगा किसी को देनेवाला तो एक भगवान हैं। तब मैं कहूँगी भगवान भी जो कुछ देता है उसका आधार होता आदमी ही है। भगवान की प्रेरणा जब आदमी के अन्तःकरण में उसमें समाती है तभी वह किसी को कुछ देने को तत्पर होता है। हमारे अन्दर धर्म की प्रेरणा में भगवान की ही ममता का स्वर तो होता है।

हरी-हरी रेशम की कलछी में लम्बी हमली-हमली बड़ी भाभी बोलीं—

"और यह भी तो हो सकता है कि भगवान की ही प्रेरणा से आदमी भूखा रह जाता हो ।

"बस न मानियेगा जीजी, मेरे भगवान ऐसे पत्थर के नहीं बने जो मनुष्य को पहले तो सहर्ष जन्म दें और फिर उसे दो टुकड़ा रोटी के लिए तरसा-तरसा कर मार डालें ! ऐसे भगवान की कल्पना आप ही कर सकती हैं ।

"खैर इस बातचीत में और जो कुछ हुआ सो हुआ । यह बहुत अच्छा हुआ जो आज तुम्हारे मुख से मुझे अपने लिए ऐसे और शायद ऐसे सुन्दर विशेषण भी सुनने को मिल गये ।" और उपाय न देख बड़ी भाभी बोल उठीं । और मैं इस भय तथा आशंका में पड़ गया कि ऐसे समय कहीं कोई विग्रह न खड़ा हो । पर तब तक छोटी भाभी अत्यन्त मर्माहत वाणी से बोल उठी —"जीजी मैंने तुम्हें अपशब्द नहीं कहे मैंने व्यक्तिगत रूप से तुम्हारा अपमान नहीं किया । मैं क्षमा चाहती हूँ मैं क्षमा !"

और वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि छोटी भाभी कुर्सी पर ही पहले सिरहाने की ओर झुकी और फिर मूर्छित हो गयी !

६

प्रातःकाल जब जल्दी उठ न सका तो माँ ने ही यह कहते हुए जगाया कि राजन उठो तो नहीं तेरी भाभी आज जा रही हैं ।

तब मैंने देखा एक नवीन सूर्योदय पूर्वी-पश्चिमी स्वच्छ किरण शीतल पवन शीतल भूमि स्नात प्रात और मुक्तवसना वीथिका । फिर कल्पना के पर पर आ पहुँचा भाभी और भतीजों का प्रीति-मण्डित विदा-दान । फिर मैंने देखा उसमें हृदय का समस्त रस मधुर भावों का निश्चित आत्मसंवरण वर्तमान और भविष्य की सम्भावनाओं का लोक कल्पना-मन्दिर । किन्तु फिर जो अपने आप को देखता हूँ तो ऐसा जान पड़ता है जैसे हृदय बैठा जा रहा है !

जब रह-रहकर यही विचार मेरे मन में एक प्रश्न बनकर आ खड़ा होता था कि भाभी अब कभी आयेंगी तब ? यह दिन कैसे कटेंगे यह पर मुझ कैसा

प्रतीत होगा। माना कि इधर कई दिनों से मतभेद की एक लकीर ने हम दोनों को अलग-अलग कर दिया है। फिर भी मैं चाहूँ तो बात-की-बात में इस लकीर को साफ कर सकता हूँ।

पर यहाँ अपने अतीत का वह चित्र उतारने के लिए एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक हो गया है। आज की परिस्थिति भिन्न है। आज तो मैं प्रायः यही समझ लेता हूँ कि जो कुछ भी समक्ष है और हो रहा है वही होनेवाला भी था। मैं इसको रोक नहीं सकता था—बदल नहीं सकता था। पर उस समय मेरे विचार भिन्न थे। उस समय जगत् की प्रत्येक स्थिति और घटना में मैं व्यक्ति किंवा व्यक्तित्व विशेष की रुचि, यत्न और पुरुषार्थ का एक निश्चित प्रयोग देखता था। कदाचित् इसलिए कि उस समय मनोवांछनीय और प्रतिकूल घटनाओं का सामना होते-होते उनसे लड़े बिना मुझे सन्तोष ही न होता था।

कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ है कि जितनी बड़ी अवांछनीय घटना हुई है उसकी प्रतिक्रिया में प्रतिशोध उसका उतना ही कठोर और भयानक हुआ है। हो सकता है कि मेरे लिए भगवान की यह एक विशेष देन रही हो कि अभिमानी का दम्भ चूर-चूर किए बिना मैं कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ! माना कि मामी का आना निश्चित है किन्तु जिस कार्यक्रम में मेरी स्वीकृति का भाग नहीं, मेरा उत्तरदायित्व शामिल नहीं, उसके हृदय स्पर्श आयोजन को मैं कैसे स्वीकार करता!

उस समय जब माँ ने सूचना दी कि तेरी मामी आज आ रही है तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे कह रही हों— अरे उठ तो रावन! बस उधर आग लग गयी!

माँ जब चली गयी तो मैं छत की मुँडेर पर आकर खड़ा हो गया। क्या करूँ क्या न करूँ कुछ समझ में नहीं आ रहा था। फिर अस्त-व्यस्त-सा टहलता टहलता एक ऐसी जगह जा पहुँचा जहाँ एक चिड़िया अपने बच्चे की चोंच में दाना डाल रही थी। पर दाना डालने की क्रिया के साथ मादा अपने शिशु की चोंच के द्वार खोले सत्कार देती थी। मन में आया कि यह भी तो हो सकता है कि शिशु ही माँ की चोंच से दाना निकालने में खींचातानी करता हो।

नौकरों से निरन्तर काम लेते-लेते मेरी आदत खराब हो चुकी थी। काम में जरा भी देर-दार हुई कि मत्था गरम हो उठता था। सुखराम को इसलिए भेजा था कि बढ़िया से दो तांगे ले आय। पर वह कम्बख्त तांगों के बजाय ले आया इक्के। और मेरे पास आकर बोला— 'सरकार तांगे तो अड्डे पर मिले नहीं।

सुनते ही मेरे मुंह से निकल गया— तो और आगे उस हिवेटरोड के चौराहे पर मरने क्या नहीं चला गया हरामखोर!

गाली खाकर सुखराम लौट गया। तब इक्केवाला बोल उठा— सरकार गुस्ताखी माफ हो तो कुछ अर्ज करूं।

मैंने कहा— 'मियां अर्ज करने के लिए इस दुनिया में ऊपर महज एक अल्ला मियां का दरबार है। आदमी होकर किसी को दूसरे आदमी से अर्ज करना पड़े यह उसकी आदमियत पर सबसे बड़ा धब्बा है। रह गयी मेरी बात तो मेरा बस चले तो मैं तुम्हारा यह इक्का बिठवाये बिना पानी भी न पियूं। चाहे मुझे अपने पास से रुपया निकालकर तुमको तांगा ही क्यों न खरीद देना पड़े। समझ में आया कि नहीं

पर मियां एक घुटे हुए निकले। इक्का बाहर ले आने के लिए घोड़े की लगाम खींचकर उसे आगे बढ़ाते हुए बोले— बड़ी हुजूर की बरकत है। मगर ये तो अपनी-अपनी समझ की बात है। वरना बहुतेरे रईसों को मैंने यह कहते हुए सुना है कि इक्का इक्का है—तांगा भला उसकी क्या समता!

सुखराम तांगा लाने के लिए बुलाया जा ही चुका था। उसकी गाली-गलौज सुनाने में जो मानसिक कष्ट मुझे हुआ उसका प्रभाव अब तक मन से नहीं गया था कि इस इक्केवाले मियां ने अपनी कूटनीति भरी मीठी बातों से उसे बात-की-बात में उड़ा दिया! तबियत हरी हो गयी। मन में आया —चलो आज का दिन जरा सहज में ही कटेगा! किसी मजिस्ट्रेट से कहा जाय—महाशय सोलह दूना आठ तो जरा सिद्ध कीजिए। तो वे मुंह ताकने लगें। लेकिन इस दुनिया का व्यवहार-शास्त्र हमको नित्य यही सिखलाया करता है। दूर क्यों जाइए उदाहरण सामने है।

पर कभी कुछ लिखा ही नहीं गया ! और इस कथन के साथ ही वे दूसरी ओर देखने लगीं।

इतने में स्टेशन आ गया। कई कुली एक साथ दौड़ पड़े। एक से मैंने पूछा— कानपुर जानेवाली गाड़ी आने की खबर हो गयी ?

अपने एक साथी की ओर मुँह करके कुली ने जरा खिसाई में उत्तर दिया — लो और सुनो। बड़े ग्यत हुए बाबू साहब की गाड़ी छूट गयी ! फिर थोड़ा मेरी ओर देखता हुआ बोला— अब तक तो वह धमरौली पहुँची होगी।

तब अत्यन्त आश्चर्य का भाव प्रदर्शित करते हुए मैंने प्रश्न किया— लेकिन अभी तो आठ ही बजा है और गाड़ी छूटती है आठ—बीस पर।

आठ नहीं साढ़े आठ बज गये बाबू साहब। देखिए, कहीं आपकी घड़ी बन्द तो नहीं हो गयी।

और सचमुच मैंने जो घड़ी की ओर ध्यान से देखा तो शर्म के मारे मस्तक न उठा सका। विवश होकर मुझे कहना ही पड़ा— सचमुच बड़ा धोखा हो गया ! भाभी भग्मा में बिल्कुल भूल गया।

मैं डर रहा था कि कहीं भाभी कोई उल्टी-सीधी न सुना दें। पर वे मुस्कराती हुई बोलीं— तुम्हारी अभी बलाई। ब्याह के अवसर पर कहीं ऐसा करना न भूल जाना !

इतने में बड़ी भाभी दूसरे तांगे पर से उतरकर मेरे पास आ गयीं। तब मैं भी झट से उतरकर उन्हीं के पास जा खड़ा हुआ। अपनी उन मातृ महिमामयी छोटी भाभी के पास खड़ा होने का साहस ही अब मुझ में नहीं रह गया था।

इसी क्षण बड़ी भाभी बोल उठीं—अब सोचना क्या है और चलो घर। यों भी आज मौसी हम लोगों को विदा नहीं करना चाहती थीं। लेकिन इनकी जिद के आगे मैं क्या करती ! तब विवश होकर हम लोग पुनः उन्हीं तांगों पर लौट आये।

लेकिन इस बार छोटी भाभी के साथ न बैठकर मुझे बैठना पड़ा इन्हीं बड़ी भाभी के साथ !

रास्ते भर बड़ी भाभी सामाजिक और कौटुम्बिक बातें करती रहीं। खाना की खिड़की से सुरमी के दो पान मुँह में डालती हुई वे बोलीं—"उस नीलम-भरी का तो तुम जानते होगे? अरे वही सिधारी की दूसरी लड़की जो हमेशा नीली साड़ी में रहा करती है।

"देखा तो है पर बातें नहीं हुई।

"तो तुम भी लड़की हुए होते तो ज्यादा अच्छा होता! पर लड़के अपना अभिमान स्वजातीय सहकिया से अपने या विरक्ति रखते हैं वे हम नारियों की भाँति ही बड़ा अच्छे होते हैं! अच्छा उस मोरपंखी का विवाह हुआ या नहीं?

मोरपंखी! मोरपंखी कौन?

नई बात? तुम उस मनोरमा को भी नहीं जानते जो नाचन-गान के लिए बुरी तरह मशहूर है?

"जानता तो हूँ। पर आजकल वह मुझसे कुछ नाराज रहा करती है।

"क्या? मौके-बे-मौके छेड़छाड़ तो तुम कर नहीं सकते। फिर ऐसी कैसी बात हुई था?

एक बार मुझ से एक उस सवाल का जवाब पूछा था भाभी की जिस नौकरानी पुष्पा को टाल गए थे। पर मुझे इस विषय में उस समय कुछ मालूम था नहीं। मजाक की बात कि मेरे मुँह से निकल गया—"बेहतर होगा कि आप नौकरानी पुष्पा से ही पूछ लें! बस उसी दिन से आप मुझ पर दुनाली बन्दूक की तरह सहरकामी रहने लगीं।

"तुमसे जवाब नहीं देते बना। यह क्यों नहीं कह दिया कि इस विषय में नौकरानी पुष्पा की डायरी का पेज देखना काफी होगा!

मुझे कहना पड़ा—"अरे न मालूम भाभी मुझे तुम्हारा यह उत्तर पसन्द नहीं आया।

शीशा पर सलवटें सम बिन्दुओं की कतार में पाउडरी हुई वे बोलीं—क्या?

है।

तब वे ठट्ठा मारकर हँस पड़ीं। बोलीं— 'समझा, तुम मुझे बना रहे हो!'

अब मकान पास आ गया था। तांगे से उतरती-उतरती भाभी बोल उठीं—"ऐसे हो ज्योतिषी को अभी बुला लिया जाय। क्यों?" फिर हँस पड़ीं। तब मैंने भी कह दिया— बल्कि ऐसा लोग पर सीधे उनके घर हो चल चलना और उत्तम होगा!

तब वे घर के अन्दर प्रवेश कर रही थीं और मैं बाहर से छोटी भाभी के ये शब्द सुन रहा था— मौसी, ओ मौसी! साड़ी मिल गयी और मैं कानपुर से बोल रही हूँ कि बाबू साहब ने आजकल ऐसी साड़ी भेज रक्खी हैं जिसे धोबी देने की जरूरत ही नहीं पड़ती!

फिर बड़ी भाभी भी माँ की माँग पर हुई बातचीत की तामसी चलाने लगीं। मैं सीधा अपने कमरे में चला गया। दस मिनट भी न बीते होंगे कि छोटी भाभी स्वयं मेरे पास आकर कहने लगीं— पूरे कपटी भले हो! पहले ही यह क्या न कह दिया कि आज तुम किसी तरह बात न पाओगी! निर्मोही कहीं के! अरे एकबार तो मन की बात मुँह खोल कर कह डाली होती!

बहुत दिनों बाद आज जैसे अपने आप मन खुलता जा रहा था। इसलिए मैंने बिना सोच-समझे कह दिया— या बात यह भी डालता पर अब मैं ऐसी घड़ी मिल गया हूँ जिसे कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती। तब मैं कुछ ऐसा विश्वास हो चला है कि मन की बात खोलकर कहे बिना भी किसी तरह यह जिन्दगी कट ही जायगी।

उत्तर सुनकर छोटी भाभी स्तब्ध हो उठीं। पहले तो आँखों में आँखें डालकर एकटक मेरी ओर देखती रह गयीं, फिर छत पर उस ओर बढ़ चलीं जहाँ घनी छाया थी। फिर कुछ सोचती-सोचती बिना कुछ कहे सीधे चल दीं। फिर आप-ही-आप रुकीं और लौट पड़ीं। फिर ठिठकीं और आगे बढ़कर बिल्कुल मेरे पास आकर कहने लगीं— मैंने पूछा था लाला वो एक चार दिन के लिए मेरे यहाँ नहीं भेज दोगी मौसी? उन्होंने इजाजत दे दी। अब चलोगे न मेरे यहाँ?

आश्चर्य और हर्ष से मैं जैसे पागल हो उठा। तत्काल मेरे मुंह से निकल गया — ऐसा कहा। इससे आगे मैं कुछ कह न सका।

तब वे आप ही पलंग पर बैठ गयीं। उस समय मैं बारम्बार यही अनुभव करने लगा कि मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जो भाभी के इस आत्मदान के समक्ष क्षण भर भी ठहर सके। मुझ में वह साहस कहां है कि मैं मन की हिलोर को वाणी पर ज्यों-का-त्यों उतार सकूं। मैं तो क्षण-क्षण पर मानवात्मा की नाना गतिविधियों, क्रियाओं, इच्छाओं, विकारों और प्रकृत-अप्रकृत रूपों के ऊहापोह और विवेचन में ही खोया-खोया रहता हूं। मैं यथार्थ का तत्काल प्रकाशन कर ही कैसे सकता हूं! मैं तो यथार्थ का अस्वीकार तक कर दिया करता हूं प्रतिक्रिया-परीक्षण के नाम पर। किन्तु यह सम्राज्ञी मन की गति का कोई भी स्तर मूक नहीं रहने देती, उसे तत्काल वाणी का रूप देकर अपने हृदय की निर्मल धारा का देखा हुआ भाव तक कैसी सफाई के साथ खोल देती है!

मैं तो इसे अपना अहंकार ही कहूंगा कि इतने पर भी मैंने भाभी से यह प्रकट नहीं किया कि तुम्हारी यह बात मेरे लिए किस सीमा तक सजीव, सुन्दर तथा अत्यन्त प्राणमयी सिद्ध हुई है। तब वे आप ही बोल उठीं— 'जीजी से क्या-क्या बातें हुईं? बहुत हंस रही थीं। मुझ को भी किसी दिन इतना हंसाया होता! क्या मैं तुम्हारी कुछ नहीं लगती? क्या मैं सिर्फ रोने के लिए हूं?'

कानों में जैसे पंचम कण्ठ से आवाज़ आ गई है और आत्मा ने अनुभव किया, मैत्री उत्पन्न हो रही है।

अब मुझे ख्याल आ गया—उस दिन जब जलपान में चूक रह गई थी तब मेरे न आने के कारण इन्होंने खाना नहीं खाया था। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि स्नेहवश मेरा अनुकरण किया हो और ये अब तक भूखी ही बनी हों। इतने दिनों में मैंने यह स्पष्ट देख लिया था कि काम में तत्पर ये अपनी भूख प्यास भूल जाती हैं। देख लिया था कि सब लोगों का भोजन-विश्राम, उनके विश्राम का पूरा प्रबन्ध करके सब के अन्त में ही आराम और विश्राम करना इनका स्वभाव बन गया है। अतएव एक प्रकार से ख्याल, सेवा और अनुराग की

'मैं सभ्य नहीं महा असभ्य हूं। आदमी नहीं पूरा राक्षस हूं।' आवेश से लाल लाला सांवरे बोले— 'दया और ममता नाम की कोई भावना मुझ में भी नहीं गयी लेकिन सिर्फ उन लोगों के लिए जो आपकी तरह झूठे मक्कार और बुजदिल हैं। आपकी नजरों में आज मैं अगर राक्षस और खूंखार जानवर हो गया जब मैंने आपको जेल की हवा खिलाने का निश्चय किया। लेकिन उस दिन मैं देवता था जब आप रोते हुए मेरे पास रुपया उधार लेने आये थे! मुझे आज भी आपके वे शब्द याद हैं। आपने एकबारगी आंसू टपकाते हुए फरमाया था— मेरी लाज बचाइये लालाजी। अगर इस वक्त आपने मुझे सौ रुपये न दिये तो कल मेरा सामान सड़क पर होगा और मैं राम का एक भिखारी बन जाऊंगा!' आप फरमाते हैं कि साल भर से आपकी स्त्री बीमार है। मगर मुझे ताज्जुब है कि उस बीमारी की हालत में आपने जो सदा जो इलाज किया उसमें हैरत इम्पूव होने के बजाय बच्चा कैसे पैदा हो गया! रुपया लेते वक्त आपने वादा किया था कि मैं उसे तीन महीने के अन्दर अदा कर दूंगा। मगर तीन साल के अन्दर कभी आपको इतना भी सुभीता न हुआ कि आप मुझे पच्चीस रुपये भी दे जाते! आप यह क्यों नहीं सोचते कि अगर सभी आदमी मुझ आप ही की तरह मिल जाय तो मेरा क्या कैफियत हो? और यह जो आप फरमा रहे हैं कि मेरे पास जरूरत से ज्यादा रुपया है इसलिए आपको यह हक हासिल है कि आप मेरा रुपया मार लें तो मैं कहूंगा कि आप उल्लू हैं। आपको इतनी भी शर्मोहया नहीं है कि रूस में भी आज तक उस साम्यवाद का स्वप्न नहीं बन पाया जिसमें किसी व्यक्ति को यह साबित करने का भी हक होता कि किसी शख्स के पास जरूरत से ज्यादा रुपया जमा हो गया है इस लिए राह चलते हुए क्यों न उसकी बदरवाजे उसे सड़क पर नंगा छोड़ दिया जाय!'

'बस-बस लालाजी। बहुत हो चुका!' गौरी बाबू बोले?

'बहुत बड़ा हो चुका अभी?' लाला साहब बिना रुके बोलते रहे— 'अभी तो मैंने उस आग को महज एक चिनगारी ही पैदा की है जिसमें आज हमारा सारा समाज सुलग रहा है! मेरी समझ में नहीं आता कि इन नौजवानों को सूझा क्या है! इनकी बात में सचाई नहीं इनके धर्म में

सच्चाई नहीं और माफ कीजियेगा इनके धर्म में भी सच्चाई नहीं। आप इनको हिन्दू कहते हैं। जानते हैं ऐसे हिन्दुत्व पर जो मिथ्या को महत्व देता है। आप खुद ही बतलाइए मुरलीमनोहर साहब मैं झूठ कहता हूँ? आपने जितने वादे किए उनमें कितने सच्चे निकले?

मुरलीमनोहर साहब चुप!

तब गौरीशंकर बाबू बोल उठे— माफ कीजिएगा लालाजी यहीं मैं आपसे मतभेद रखता हूँ। कभी-कभी हम ऐसी परिस्थितियों में फँस जाया करते हैं जब सब कुछ चेष्टा करने पर भी अपने वचन का निर्वाह नहीं कर पाते।

"जिस तरह हमारे नेता ढोल पीट-पीटकर हमें सुनाते रहते हैं कि अन्न वस्त्र का अभाव दूर करने की कोशिश तो हम बहुत करते हैं मगर कामयाबी हमें सिर्फ इसलिए नहीं मिलती कि जनता का पूरा सहयोग हमें नहीं मिलता।

"जिस तरह परीक्षा में फेल हो जाने वाला कोई नौजवान यह कहे कि जिस हिसाब से मैंने पास में मेहनत की अब उस हिसाब से परीक्षक ने मेरी कापियाँ ही नहीं जाँचीं तो मैं क्या करूँ।

और जिस तरह सिफलिस का कोई मरीज यह कहे कि ईश्वर की कसम खाकर कहता हूँ मैंने कोई बुरा काम नहीं किया। लेकिन मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि पिताजी को कभी यह मर्ज हुआ ही नहीं!

अब मुझे बोलना पड़ा। मैंने कहा— 'गौरी बाबू ने परिस्थिति विशेष की बात कही थी। और दुर्भाग्य से अपने अब तक के जीवन में मैंने भी यही अनुभव किया है कि हम बहुत चाहने पर भी कभी-कभी अपने वचन का पूरा निर्वाह नहीं कर पाते। और तभी मेरी अन्तरात्मा से बारम्बार यही स्वर फूट पड़ा है कि इस दाय के अन्दर व्यक्ति का हाथ उतना अधिक नहीं होता जितना वस्तु-स्थिति का!

"तो आप समझते हैं कि यही मानकर व्यक्ति की जिम्मेदारी समाप्त हो जाती है! कहते-कहते लाला साहब जैसे चीख उठे— 'बहुत खूब! अब इतना और बाकी रह गया है कि आप इसी मौके पर 'महात्मा जी की जय' का एक नारा भी लगाएँ।"

तब विवश होकर गौरीशंकरजी को कहना पड़ा— बस-बस और ज्यादा शर्मिन्दा न कीजिये लालाजी ।

मन-ही-मन मैं लाला सांवरे के चरित्र की आलोचना करता रहा । यह व्यक्ति सूद पर रुपया देता है । रुपये वसूल करने में किसी तरह की रियायत नहीं करता । इस हिसाब से यह एक सूदखोर महाजन है । —पूंजीवादी समाज का एक स्तम्भ । किन्तु फिर रुपये की इसको ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गयी कि एक मकान को ही बेचने के लिए इसे विवश होना पड़ा जबकि इसमें ऐसा कोई दुर्व्यसन भी नहीं है । हो-न-हो अवश्य ही इसके जीवन में कोई रहस्य है ।

लेकिन किसी सूदखोर महाजन को इतना इतना सूद छोड़ देते हुए मैंने कभी नहीं देखा । पर अवसर आने पर ऐसा व्यक्ति दान-पुण्य भी करता है—केवल इसलिए कि लोग उसकी प्रशंसा के गीत गायें और पूंजीवाद की वे जड़ें हिलने न पायें जो समाज के आर्थिक जीवन को खोखला बना रही हैं ।

लेकिन लाला सांवरे के सम्बन्ध में इस निश्चय पर पहुंचना मुझे स्वीकार नहीं हुआ कि केवल अपने कीर्ति-गान के लिए उन्होंने शरत बाबू के साथ इतनी रियायत की है ।

जब सभी काम एक-एक करके विदा हो गये तो लाला सांवरे बोले —"मेरा खयाल है घर से स्नान करके तो आप आये ही होंगे ।"

"जी नहीं । मैंने कह दिया—"और इस विषय में आपको कुछ और सोचने की जरूरत भी नहीं है क्योंकि खाना मैं घर के सिवा और कहीं नहीं खाता ।"

"मगर कम-से-कम खाने के वक्त मैं किसी अतिथि को बिना भोजन कराये विदा नहीं करता ।

"लेकिन मैं वैसा अतिथि भी तो नहीं हूं जिसका यहां बार-बार न हो । पिताजी के हाथ का खाना अखरता नहीं है । लेकिन भगवान की कृपा से और किसी बात की कमी नहीं है ।

अनायास मेरे मुंह से निकल गया— 'म तुमसे' मेरा मतलब है आपसे कुछ कह नहीं सकता लाली। लेकिन आप यह न समझें कि मेरे पास कहने के लिए कुछ है नहीं।

यह मालूम नहीं क्यों फिर कुछ गम्भीर हो गयी और बोली—"पर यह मैं नहीं मानती कि तुम' कह जाने के बाद 'आप' कहने में आप कुछ कह नहीं पाते। लाली ने कुछ इस ढंग से उत्तर दिया जैसे कबूतर के रूप में उसने अपने इस मनोभाव को इसी क्षण के लिए पकड़ रखा हो और मेरे उपयुक्त कथन पर बड़ी हौंस के साथ मेहरुन्निसा की तरह हाथ ऊंचा करके उड़ा दिया हो।— "मैं यह भी मानने को तैयार नहीं हूं कि जिनके पास देने के लिये लाखों की सम्पत्ति होती है वे अवसर आने पर किसी को एक पाई न देने पर आजीवन सम्पत्तिशाली बने ही रहते हैं। जब आपके पास कहने के लिए कुछ है तब भी आप अगर कुछ कहते नहीं तो उस समय क्या कहेंगे जब आपके पास कहने को कुछ रह ही न जायगा! क्या कीजियेगा सामर्थ्य के समय जो दाता दान नहीं कर सकता भीख मांगने का अवसर आने पर उसे यह कहने का कोई हक नहीं है कि मैं तीन दिन का भूखा हूं। और यह मैं नहीं मानती कि आदमी को आवश्यकता पड़ने पर किसी से कोई चीज मांगने का संयोग ही नहीं आता!

बात सुनकर मैं टकटकी लगाये लाली को ताकता रह गया। सोचा—इतनी कम अवस्था में यह सब इसे सिखलाया किसने? तब धीरे धीरे अनिवार्य मन्द स्वर में जैसे अगम जलाशय के तल प्रदेश तक जा पहुंचने के भय से डरते-डरते पैर बढ़ाते हुए, मैंने कह दिया— "यह तुम ठीक कहती हो लाली।"

इतने में टाइ पर बैठी गौरैया पर से उड़कर कमरे से बाहर हो गयी और उसी समय फूला की दूसरी डिश मेरे सामने रख गई।

जब मकान के नीचे एक भिक्षुक कह रहा था—रोटी का टुकड़ा न दे सको तो मीठा ही दे दो!

लाला मोहरे के आते ही सबसे पहले मैंने यही प्रश्न किया कि आप अपना मकान क्यों बेचना चाहते हैं?

लालाजी ने तत्काल उत्तर दे दिया— यह गोपनीय प्रसंग है। अच्छा होगा कि आप इसके अन्दर जाने की कोशिश न करें। मकान आपने देख ही लिया

मकान के अन्दर से किसी महिला का विकराल स्वर कुछ मन्द होकर सुनाई पड़ रहा था।— 'कमरे में किस रांड को बैठा रक्खा है लाला।'

कथन सुनकर ऐसा जान पड़ा मानो कानों में गरम-गरम पारा किसी ने डाल दिया हो। अब मैं यह सोच रहा था कि यह सब कर्म भी उस व्यक्ति के साथ जिसने अभी-अभी मेरे सामने ही उस मुरलीमनोहर की डिगरी से लगभग सौ रुपया छोड़ दिया जिसको वह एक मच्छर का बर्ताव समझता था! यद्यपि दान-धर्म और उदारता का व्यक्तिगत रूप अप्रत्यक्ष रूप से पूंजीवाद का समर्थन किया करता है।

लाली को मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मैं जब उनके पास से चलने लगा तो लाली बोल उठी— 'ऊं हूं! इनमें यह सब दाव-बाजी बिल्कुल न हो सकेगी अम्मा! तुम देख लेना मैं पहले से कहे देती हूं।'

इतने में इधर उधर बड़ी-बड़ी आंखों से देखती हुई घूंघट मारे एक अधेड़ मालिन डलिया भर फूल लिए हुए आ पहुंची। जरा ठिठकी फिर अन्दर चली गयी। इस डलिया से जो रह रह बार गुलाब की पंखुड़ियां झलक पड़ी तो मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे यह मालिन फूलों का हास बचन लायी है। और मुझे अब उस गरीब ही पता है लाली को यह जतलाने के लिए कि यह भी तुम्हारा ही हास है।

इस समय लाली की यह भावना मुझे कितनी प्यारी लगी उसके इन शब्दों से मेरे मन में कितनी विश्राम प्राप्त की कह नहीं सकता! कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे लाली इन शब्दों के द्वारा मेरा दाय प्रगट करने की अबाधा गुण प्रकट कर रही है। जैसे उसे इस बात का पक्का विश्वास है कि किसी भी अन्याय-कार्य में हाथ डालना मेरे लिए कदापि सम्भव नहीं है।— फिर यह भी मन में आया और लगा कि यह मैं ही सोच रहा हूं अन्यथा आप का इसमें कुछ अंश भी है।— पर कदम-कदम पर हर एक बात में यह संशय जो मैं उत्पन्न करने लगता हूं यह क्या है? क्या वास्तव में यह गर्भिणियां में बचपन का मार्ग है?— फिर आत्म विश्वास की न्यूनता और हीनता सिद्ध करते हैं?

"तो आप समझते हैं कि सत्य को आपने पहचान लिया है !" लाला माधवे ने कुछ ऐसे ढंग से कह दिया जैसे वे बहस करने के लिए पूरा तैयार हों। और मेरी स्थिति कुछ ऐसी विचित्र हो उठी जैसे मैं किसी अन्य लोक से इस मर्त्यलोक में अभी-अभी इसी क्षण उपस्थित हुआ हूँ ! फिर भी मैंने निस्संकोच कह डाला— ख्याल तो कुछ ऐसा ही है।

"यह आपका भ्रम है।" लाला माधवे मुसकराते हुए बोले— "अभी आप इस विषय में बिलकुल बच्चे हैं। कभी मेरा भी ऐसा ही ख्याल था, जो आज गलत है। लेकिन अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया कि सत्य एक शब्द-मात्र है। जीवन में कहीं भी उसका स्थिर अस्तित्व नहीं है। आज की दुनिया में सत्य का अर्थ है प्रमाद, असफलता और मूर्खता। आज सत्य बोलने वाला व्यक्ति समाज के लिए एक खतरा है, कुटुम्ब के लिए घृणा का पात्र है और देश की राजनीति के लिए विषधर। आज सत्य कला के लिए हिंसा है, कविता के लिए गर्हित है, व्यापार के लिए शून्य है और जीवन के लिए अभिशाप। आज हमारे देश में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो सत्य की रक्षा के नाम पर भीड़ के चाकू से अपना गला कटाने के लिए तैयार हो।"

सुनकर मैं सन्न रह गया। परन्तु मैंने अपना मनोभाव छिपाकर कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की। और लाला माधवे ने पान की तश्तरी मेरे सामने कर दी।

तब मैंने पूछ दिया— "क्या आपने कभी सोचा है कि ऐसा क्यों है ?"

"सोचा क्यों नहीं है ! सोचा न होता तो मैं ऐसा कहता ही क्यों ?" लाला माधवे कहने लगे— "जब दुनिया की कोई भी चीज अपनी कीमत पर कायम नहीं रहती, तो उसकी सत्ता, गुण, रूप और अवस्था पर हम क्या भरोसा कर सकते हैं ? जब आप कहते हैं कि यह चीज हमारी है, तब आप यही तो सोचते हैं कि इस पर मेरा पूरा अधिकार है। यह मेरी रहेगी। लेकिन अवसर आता है और आप उसे दूसरे को दे देते हैं। तब वही चीज दूसरे की हो जाती है। मैं पूछता हूँ क्या इसका यह अर्थ नहीं होता कि कोई चीज दरअसल किसी की नहीं है ?"

"लेकिन उस समय तक तो वह हमारी रहती ही है।" —मैंने कहा— "जब तक हम उसे दे नहीं देते।"

बैठी हुई एक बुढ़िया अपने अगले दोनों पैरों से सम्हाले हुए बिस्कुट के एक टुकड़े को इतमीनान के साथ कुतर रही है। फर्श पर नीली दरी बिछी है जिसके बीच का भाग चारों ओर से हल्का पड़ता और एक गोलाई बनाता हुआ स्पष्ट हो गया है। द्वार के ठीक सामनेवाली दीवाल पर कोई तीन फीट लम्बा और दो फीट चौड़ा दर्पण इस तरह लगाया गया है कि नवागन्तुक आते क्षण अपनी शारीरिक सम्पदा वेषभूषा और मुखाकृति की भाव भंगिमाओं का भान सहज ही प्राप्त कर सकता है।

इस कमरे में मुझे बिठाकर मिस्टर मोदी बायीं ओर पड़ी हुई चिक को उठाते हुए धीरे से बोले— 'हीरा इधर निकल आओ तो मैं तुमको एक ऐसे स्कालर से मिलाऊं जिनकी बातें और विचार सुनकर तुम खुशी से नाच उठोगी। और मिस्टर राजहंस यहीं आप भी आ जायं। मेरा ख्याल है इनसे मिलकर आपको भी कम खुशी न होगी।

क्षण भर में मिस मोदी और एक अन्य विशाल मूर्ति उस कमरे में आ गयीं। मिस्टर मोदी ने परिचय कराया— 'यह मेरी सिस्टर हीरा मानिक हैं और आप हमारे एक मित्र और जिनसे पहले कस्टमर और बाद में फ्रेंड मिस्टर' ।

मैंने कह दिया— राजेन्द्र। और तत्काल मेरी दृष्टि मिस मोदी पर जा पड़ी।

जारजेट की श्वेत साड़ी है और शिफन का ब्लाउज। काली जाली में बंधा हुआ केश-गुच्छा सिर पर सघन-घन घटा की भांति छाया है। एक-आध उच्छृंखल लट मस्तक पर कभी-कभी लहरा उठती है। फाउन्टेनपेन का क्लिप ग्रीवा के नीचे ब्लाउज में उस स्थल पर नत्थी किया हुआ है जहां से यौवन की आंधियों के आक्रमण होते हैं। पहलदार नगीने का क्लिप [illegible] नासिका को दबाता हुआ-सा फिट किया हुआ है। लाल पालिश से कनिष्ठिका का बढ़ा हुआ नख गहरा लाल रंगा हुआ है।

मन्द-मन्द-हास बिखरती हाथ जोड़कर नमस्कार करती हुई मिस मोदी बोलीं— 'हमारे यहां पहले परिचय में कहा जाता है आपसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई। लेकिन मैं सोचती हूं एक दूसरे को अच्छी तरह समझे बिना ऐसा कैसे कहा जा सकता है! फिर भी भइया ने आपका जैसा परिचय कराया

जिसमें नगर में प्रसन्न होने की बात न कहूँ तो मुझे खुद ही अच्छा न लगता !
और मिस्टर मोदी बोले— और आप हीरा के नये मास्टर साहब मिस्टर रामहंस
बी ए बी टि ।

मि रामहंस महाशय खादी का एक साफ सूट धारण किये हुए हैं और जूते
साथ सफेद साथ ब्राउन । मुँह में धीरे-धीरे मुसकाता और धुआं उगलता हुआ
एक पाइप लटक रहा है । वर्ण गोरा तो नहीं कहा जा सकता लेकिन गेहुआ भी
मगर है तो पंजाबी ।

मुझे देखते-देखते पहले तो आप सहम गये । फिर जान पड़ता है कुछ
सोचकर बोले— मैं आपको जानता हूँ लेकिन आप मुझको जिस ढंग से
जानते हैं उसका मुझे अफसोस है । हालांकि अफसोस करने की ऐसी कोई बात
नहीं है ।

मिस मोदी को इस पर कुछ आश्चर्य हुआ । तब तक फिर मिस्टर
रामहंस बोल उठे— बहुतेरी बातें मेरी जिन्दगी में ऐसी भी रहीं जिनकी याद
मुझे एक अरसे तक नहीं भूली । लेकिन अब मैंने पास्ट पर रोना सब मन छोड़
दिया है ।

अब तक मैं यही सोच रहा था कि इन मास्टर साहब को कहीं-न-कहीं
देखा है मैंने । लेकिन बारम्बार प्रयत्न करने पर भी स्मरण आ नहीं रहा था ।
पर मिस्टर रामहंस की इस बात से अब मैं समझ गया कि अरे ! ये तो मुरली
बाबू हैं ।

थोड़ी देर में चाय मेरे सामने आ गयी । हीरा एक चित्र बनाने में संलग्न
है । स्पष्ट जान पड़ता है कि वह चित्र-कल्पना में डूबी हुई है । पंखे की हवा में
उसकी साड़ी का पल्ला कुछ धृष्टता दिखला रहा है । एक-एक में गिरा । बाहु
की मांसलता सौन्दर्य का सलोनापन लोमहीन अनावृत स्कन्धमूल श्वास
प्रश्वास के मंद-मंद आरोह-अवरोह का प्रभाव यह वक्षोजाम्भुजाय का दुर्धर्ष
उभार । तूफान और किसे कहते हैं ?

आपकी चाय ठंढी पड़ जायगी मिस हीरा ! मैंने कह दिया । और
इस तरह मैं मेरा यह कथन हीरा के लिए प्रथम था ।

हीरा ने तत्काल मेरी ओर देखा फिर तूलिका का प्रयोग करते-करते एक होंठ दबाया तो एक कुनमुनी सर मन्दहास झलक उठा। फिर उसने तूलिका रख दी और बोली— मेरी चाय कभी ठंडी नहीं पड़ती। और कप उठाकर सिप करने लगी। फिर चित्र की ओर देखा और बोली— अभी तो सिर्फ छाया-ही-छाया जान पड़ती है। फिर राजहंस की ओर देखने लगी।

तभी हाथ से पाइप पकड़कर राजहंस बोले—"इमैजरी भी हुस्न के अन्दाज की उस फैंसी का ही नाम है जो जीवन की रंगीनियों से छिलके परत पर अयस हो आया करती है।

सोचता हूँ इन राजहंस की बड़ी महिमा है। कब और किस तरह ये मुरलीबाबू से राजहंस बन गये कैसे इन्होंने बी. ए. कर लिया और साथ ही पेंटिंग का डिप्लोमा भी प्राप्त कर लिया कुछ भी मेरी समझ में नहीं आ रहा है। तिस पर तुर्रा यह कि—अर्थोपिड पास्ट पर रोना आपने छोड़ दिया है!

उस क्षण राजहंस पाइप से धुआँ उगल रहे थे और हीरा चाय पी रही थी।

तब जिसको एक शब्द में 'माप-नापित' कहते हैं उसी भाषा में मैंने कह दिया— 'और जो हुआ सो हुआ पर उस दिन आपसे भेंट खूब हुई!

फैलाये हुए पैर को कुछ पीछे करके तत्काल धीरे अपने को सम्हालते हुए राजहंस साहब बोले— 'या चाहे न भी होती पर मगर हम में कोई सहज चेन लानेवाली है। जान पड़ता है इसीलिए किस्मत साली और पर आपसे भेंट होना लाजिमी हो गया।

वास्तव में ये राजहंस है बड़े आला के। दुनिया उन्हें कुछ समझ कुछ कर रहे हैं कि प्रयोग-पर-प्रयोग किये जा रहे हैं। और सच गुरु जान का जरा भी भय नहीं है उन्हें। तब मैंने कह दिया— मगर आपने मुझे कभी यह नहीं बतलाया कि आप पेंटिंग भी जानते हैं। जानते ही नहीं उसमें डिप्लोमा भी प्राप्त कर चुके हैं।

अभी इतना ही प्रकट करना मैंने आवश्यक समझा। क्योंकि कुछ ऐसी बात हुई कि मैं सोचने लगा—सब कुछ बनावट और कृत्रिम होने पर भी यदि मुरलीबाबू 'राजहंस' नाम से ट्यूटर का अभिनय करने में सफल हो जायें तो

उनके हितों और स्वार्थों में विघ्न क्यों डाला जाय ? इसके सिवा किसी भी प्रगतिशील व्यक्ति के मार्ग में रोड़ा अटकाना मेरे स्वभाव के विरुद्ध है।

बात यह है मेरी बात पर राजहंस कुछ अस्त-व्यस्त हुए हैं। उत्तर की अपेक्षा साहब की तम्बाकू सुलगा-सुलगाकर धुआं निकालने की ओर उनकी प्रवृत्ति विशेष है। और इसी बहाने उत्तर क्या दें यही सोच रहे हैं।

अब हीरा चाय पीकर पुनः चित्र बनाने में लग गयी थी। इतने में मिस्टर मोदी एक एलबम ले आये और डस्टर से उसकी जिल्द झाड़ते हुए बोले—"बड़ी मुश्किल से मिला। बात यह है कि इधर वर्षों से यहां ऐसा कोई शख्स आया ही नहीं जिसको दिखलाने के लिए इसको निकालने की तबियत होती।

हीरा यद्यपि एक पत्नी की हैसियत से तीस वर्ष की मन उभारने की चेष्टा में थी फिर भी मिस्टर मोदी के इस कथन पर वह झूम पड़ी और बोली—"पापा तो अक्सर कहा करते थे—जानवरों को मैं अपना प्यार दे सकता हूं। लेकिन उस जानवर को नहीं जो सूरत-शक्ल से आदमी कहलाता है।—हमारे यहां एक बार एक साहब किसी दूसरे काम से आये थे। शायद फर्नीचर का बिल था कोई झगड़ा। मैं तब भी एक लैंडस्केप बना रही थी। आप भर देखते-देखते बोले—"क्यों साहब इसको बनाने में आपको कैसा लगता है? क्योंकि इसका पैसा तो कोई मला क्या देता होगा! फिर इतनी मेहनत बेकार ही न जाती होगी!

मेरे मुंह से निकल गया—'खूब'!

इस पर राजहंस साहब उठे और पैंट की बेल्ट को कुछ ऊपर खिसकाते हुए बोले—आदमी की शक्ल में जानवर होते हैं मानता हूं मगर फिर उनको क्या कहियेगा जो आदमी को जानवर समझने और बनाने की कमाई खाते हैं? और इसके बाद वे पुनः अपनी कुरसी पर पूर्ववत् बैठ गये।

बात कुछ अप्रासंगिक-सी जान पड़ी। मिस्टर मोदी ने मेरी ओर संकेत करते हुए तुरन्त बोल उठे—देखा आपने मिस्टर राजहंस मौका पाते पर कम्युनिज्म का प्रचार करने से चूकते कभी नहीं।

मैं सोचने लगा—जहां तक प्रचार का सम्बन्ध है कोई आदमी उससे परे नहीं है। यह बात हुम̐ ...

हुआ।

और राजहंस की ओर देखती हुई होरा बोली— 'आपका मतलब शायद यह है कि हर एक पैसे वाला गरीब और मजदूर आदमी को जानवर समझता और बनाम की कमाई खाता है।

'इसमें भी कुछ शक है क्या?' राजहंस के शब्द थे।

सुनते ही हीरा का मुख लाल हो गया। हाथ पकड़ कर लगी। सावधानी से तूलिका को एक ओर रखती रखती वह तपाक से बोली— हरगिज-हरगिज नहीं। व्यक्तिगत व्यवहार में बहुतेरे एरिस्टोक्रैट्स साधारण मजदूर-मुनीम, कुली मजदूर और नौकर के लिए घटे हो अपूढ़ और धृष्ट होते हैं मानती हूं। आवश्यकता बाणक और चिड़चिड़—यहां तक कि कभी-कभी तो समाज के लिए विचारणीय और चिन्त्य भी बन जाते हैं यह भी मानती हूं। किसी भी क्षण वे अपने आत्मीय से आत्मीय व्यक्ति का अपमान कर बैठते और फिर होश आने पर पछताते हैं यह भी मानती हूं। पर वे आदमी को जानवर न कभी समझते और न उसे समझने की चेष्टा ही करते हैं। स्वभाव में व्यक्तिवादी होने के कारण उनके व्यवहारों में रूखापन या कठोरता पैदा हो जाती हो यह बात दूसरी है।

'इसमें बहस मानने की बात नहीं है मिस हीरा।' राजहंस फिर उठकर पैंट की बेल्ट को ऊपर की ओर खिसकाते हुए बोले— सिर्फ सरमायादार ही नहीं सियासी मामलों में हुकूमत के सारे कल-पुर्जे तक रात-दिन यही किया करते हैं। एक इन्सटेन्स आपके सामने रखता हूं। अभी-अभी कल की बात है एक साहब सेकेंड क्लास में सफर कर रहे थे। एक टी० टी० ई० ने टिकट देखकर कहा—यह कम्पार्टमेंट फर्स्ट क्लास का है और आपका टिकट है सेकेंड क्लास का। लिहाजा आपको ८५॥—) और देने होंगे। मुसाफिर ने हरचन्द कहा कि दूसरे दर्जे का ही यह डब्बा है पर टी० टी० ई० ने बाहर आकर उस चाक-स्टिक से डब्बे में फर्स्ट क्लास लिखा हुआ दिखला दिया।

मुसाफिर ने कहा— आपके लिख देने से कुछ नहीं होगा।

टी० टी० ई० ने जवाब दिया— मेरे लिख देने से क्या होता है यह आपको अभी थोड़ी देर में मालूम हो जायगा। और इतना कहकर उसने रेलवे पुलिस के दो सिपाहियों को डांट से बुला लिया और उस डब्बे से उतारकर हिरासत में ले जाने का हुक्म दे दिया।

'तब मुसाफिर को अन्य उपाय न देख रसीद न लेकर मजबूरन तीस रुपए पर समझौता करना पड़ा क्योंकि पूरा रुपया उसके पास था ही नहीं। बाद में जब गाड़ी चलने को हुई और मुसाफिर को याद आया कि यह समझौता तो यहीं तक के लिए हुआ है। मुझे तो दिल्ली जाना है। ऐसी हालत में आगे का भी कुछ इन्तिज़ाम कर लेना चाहिए। अतः जब उसने यही बात उस टी० टी० ई० से कही तो उसने कह दिया— तुम फिकर मत करो मैं अभी इसका भी इन्तिज़ाम किये देता हूँ। और इतना कहकर वहां से टहल गया। थोड़ी देर में जब गार्ड ने हरी झंडी दिखलायी और सिसिल दी तो वह मुसाफिर क्या देखता है कि पुलिस का जो सिपाही उसे पकड़ने आया था वही खिड़की के पास खड़ा होकर प्लेटफार्म से लिए अंग्रेजी के फर्स्ट क्लास शब्द को डस्टर से मिटा रहा है।'

इस पर मिस हीरा बोल उठी— मुझे तो यह सारी घटना सही हुई मालूम होती है।

और मिस्टर माथी ने कहा — घटना चाहे सही भी हो पर वह मुसाफिर था बिल्कुल बेवकूफ। उसे इस बात पर अड़ जाना चाहिये था कि कोई भी सेकेंड क्लास का डब्बा महज प्लेटफार्म से लिख देने पर फर्स्ट क्लास का नहीं हो सकता चाहे उसके अक्षर किसी भी अधिकारी के लिखे हुए क्यों न हों।

राजहंस साहब मुसकराने लगे। बोले— सवाल मुसाफिर के बेवकूफ या अक्लमन्द होने का नहीं है। सवाल तो सिर्फ यह है कि जो भी क्लास आदमी को बेवकूफ या जानवर बनाकर उससे रुपया ठगता है उसे आप क्या कहेंगे?

चाय की ट्रे नौकर उठा रहा था। मिस्टर माथी अपना एकदम खोये बैठे थे। मिस हीरा मानिक जिस तूलिका से चित्र बना रही थी वह उनकी ढीली अँगुलियों से गिर पड़ी थी। सभी एक-दूसरे की ओर देखते हुए बगलें झांक रहे थे। कोई कुछ भी नहीं कह रहा था।

इतने में राजहंस घड़ी देखते हुए उठ खड़े हुए। एक इतमीनान के साथ चलते वक्त जो उन्होंने हाथ बढ़ाया तो मुझे भी अपना हाथ बढ़ा देना पड़ा।

अभी हाथ-से-हाथ आया ही था कि राजहंस बोले— 'एक अरसे के बाद आपसे मुलाकात हुई। मेरे लायक कोई खिदमत हो तो उम्मीद है आप जरूर मुझे याद फरमायेंगे।

हो तो सारे-का-सारा शिकायतें मैं सामने पेश कर दूँ। तबियत की बात ठहरी। इसमें छिपाव और संकोच करने की जरूरत ही क्या है?

बस, बात पर आश्चर्य होने लगा कि यकायक यह इतना उत्साह मुझ में कहाँ से उमड़ पड़ा!

जान पड़ा बात कुछ और है। दोनों मेरे पास बैठ गयीं। बैठते ही बड़ी भाभी बोलीं— 'क्यों लाला, मौसी से बराबर सुनती आ रही हूँ कि स्त्रियों से मिलने-जुलने में तुमको आज तक संकोच ही होता आया है। यहाँ तक कि पास बैठकर और बात करते हुए भी लजाते हो! फिर यह समझ नहीं पा रही हूँ कि अपनी पसन्द का यह कैसा गीत अभी तुमने लगाया था। वह कौन सी याद है जिसकी याद है जो मन को इस बदरी से कचोटने लगती है?'

कभी-कभी मैं सोच लिया करता हूँ कि कुछ छिपा रखना मेरे वश का नहीं है। मनोभावों को दबाकर रखना मुझसे कभी सहज नहीं हुआ। इसीलिए मैंने बिना विचारे कह दिया— 'आज नहीं है तो चार दिन बाद होगी। ऐसा उसका निश्चय है। आप सोच क्या रही हैं न?'

सोचता हूँ— मन यह बात न कहता तो कितना अच्छा होता! लेकिन तब बड़ी भाभी बोल उठीं— 'जी हाँ, इतना जानती हूँ कि बात बनाने में एक तुम क्यों, सारी पुरुष-जाति कितनी चतुर होती है।'

बड़ी भाभी के मन में जो कुछ था, उन्होंने सहज भाव से हँसकर प्रकट कर दिया। लेकिन छोटी भाभी की भंगिमा से यह प्रकट नहीं हुआ कि मैंने केवल उन्हें प्रसन्न करने की इच्छा से ऐसा कहा है। क्योंकि अपनी जीजी के साथ घूमने और चलने तक एक बार उन्होंने भरी आँख जिस दृष्टि से देखा वह कुछ और ही बात कह रही थी।

तब इच्छा हुई कि उन्हें रोक लूँ और पूछूँ कि सच-सच बतलाओ भाभी, क्या तुम भी ऐसा ही समझती हो? जिस पुरुष जाति के सम्बन्ध में बड़ी भाभी ने ऐसी बात कही, क्या मैं भी उसी का एक प्रतिनिधि हूँ? मैंने क्या सदा तुम्हारा स्तुति-गान ही किया है?

लेकिन ऐसा अवसर नहीं आया। इसी क्षण बड़ी भाभी बोल उठीं— 'मेरा तब आमन्त्रण का इरादा था। मन ही मन था उस दिन बरिया के

साफ किया। मैंने उनकी पलकों और भृकुटियों को अत्यन्त कोमल मन से और धूप से ढका और उन्हें जगाया। पानी के छींटे लगाये और पंखा पूरे वेग पर कर दिया।

पर इस अवसर पर बिना बोले मुझ से नहीं रहा गया। मुझे कहना ही पड़ा—'मैं तुम्हारी यह व्यथा देख नहीं सकता भाभी। आँखें खोलो। देखो, कौन तुम्हारी ओर ताक रहा है? बड़ी भाभी ने तुम्हें हंसने से मना किया था लेकिन मैं अपने जीवन की सारी साधना को तुम्हारे पवित्र चरणों पर समर्पित करता हुआ तुमसे सानुराग निवेदन करता हूं कि तुम जीवन की इस गतिविधि पर जी खोलकर हंसो।

फिर मैंने मन-ही-मन यह भी कह डाला—हंसो कि तुम्हारे माता-पिता ने क्या सोचकर तुम्हें ऐसी परिस्थिति में डाल दिया! हंसो कि समाज ने क्या समझकर ऐसा सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार कर लिया! हंसो कि आधार हिन्दुस्तान का विधान आज तुम्हारी ओर कैसा टुकुर-टुकुर ताक रहा है! हंसो कि पति-परमेश्वर के पुरुषार्थ की यह कैसी पावन महिमा है!

एकायक सारा कमरा भर गया था। बड़ी भाभी मां चंदिया बड़ी भाभी का नौकर—हरिया—सब-के-सब वहां आ पहुंचे थे। मां ने कहा था—गायत्री मंत्र पढ़कर जरा पानी के छींटे तो मार राजन्।—बड़ी भाभी अत्यन्त व्याकुल होकर कहने लगी थीं—एक-दो बार कानपुर में भी ये इसी तरह मूर्छित हो चुकी हैं और अभी उस दिन भी। लेकिन उस समय तो पांच मिनट बाद ही होश में आ गयी थीं। फिर आज यह क्या हो रहा है?

लेकिन मैं अपने प्रयोगों में लीन था।

जी में तो आया कह दूं—तुम तो सब कुछ जानती हो देवी। तुम्हीं ने इनका जीवन भी नष्ट किया है। लेकिन अवसर अनुकूल न देख मैं चुप रह गया।

हरिया बोल उठा—हमरे गियान मां तो कौनो करमरायस के करतार आय मालकिन! तो चंदिया ने उसे डपट दिया—अरे चुप भी रहो बुद्धू!

पर मैं किसे समझाऊं कि हरिया का कथन प्रकारान्तर से कितना यथार्थ है!

जब उसने ऐसा प्रश्न कर दिया तो मैं सहम गया। मुझे विवश होकर कहना पड़ा—"यहाँ इस अवस्था में मैं ऐसी कोई बात न कहूँगा और न पहले तुम्हें भी न कहने दूँगा जो प्रकारान्तर से भी तुम्हारे मन-प्राण से जा टकराए। मैं इस बात की पूरी चेष्टा करूँगा कि तुम इस रोग से मुक्त हो जाओ जल्दी-से जल्दी।

"तुम कुछ नहीं कर पाओगे मैं जानती हूँ।

"मैं इस समय तुम्हारे इस कथन का वह उत्तर भी न दूँगा जो बहुत ही उपयुक्त होता। और इस विषय में कोई बात भी न करूँगा।

"अच्छा जाने दो। पर यह तो बताओ तुमने मुझे धोखा क्यों दिया? पहले ही बतला देते कि मैं तुम्हें इस ढंग से न जाने दूँगा।

'तुमने मुझसे पूछे बिना जाने की तैयारी जो कर दी थी।

"अच्छा तुमसे पूछे बिना अगर मैं कोई काम कर ही डालूँ तो क्या तुम मुझे क्षमा न करोगी? मैं अन्य व्यक्ति की बात नहीं जानता। पर जो अपने हैं—मेरे लिए अपने हैं उनसे भी हर बात क्या पूछकर ही की जाती है? मैं पूछता हूँ मुझसे पूछे बिना तुमने अगर कभी कुछ कर डाला हो तो क्या मुझे तुमसे उसका बदला लेना चाहिए?

इस अवसर पर मैंने जान-बूझकर भाभी से यह नहीं पूछा कि क्या वास्तव में कभी मैंने कोई ऐसा काम कर डाला है। क्योंकि अन्तर्मन की छानबीन में मेरी दुर्बलता स्पष्ट होते देर नहीं लगती। इतना संयम मैंने अपने-आपको सिखाया है। लेकिन उसके कथन पर नियन्त्रण लगाने के लिए मुझे कहना पड़ा—"मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ तुम ज्यादा मत बोलो। यहाँ भी अगर तुम इसी तरह हर बात की छानबीन करने में लगी रहोगी तो मर्मस्थल की उस उत्सुकता को कैसे सम्हाल सकोगी जो वार्तालाप के प्रसंग में अप्रत्याशित रूप से सामने आ ही जाती है?

तब सिरहाने का तकिया लेती हुई-सी भाभी बोली—'तुम मेरा मुँह कहाँ तक देखोगे! और मैं ही तुम्हें कहाँ तक बता सकती! ऐसा जान पड़ा भाभी उनका हृदय सिसकियाँ भर रहा है। आँसुओं की धार केवल इसलिए नहीं फूट रही है कि विदा के क्षण रोना मैं सहन नहीं कर पाता। भाभी मेरी यह दुर्बलता

जानती हैं। एक बार मैंने स्वयं उन्हें बतलाया था कि इसीलिए इस अवसरों पर प्रायः मैं मिला नहीं करता!

अम्मा ने मोतीचूर के लड्डू एक डलिया में रख दिए थे, यह मुझे मालूम था। सेकेण्ड क्लास के उस डब्बे में जहाँ दोनों भाभियाँ आराम से बैठी हुई थीं, बड़ी भाभी के पास खड़ा हुआ मैं उसी डलिया का सोच रहा था। लेकिन सीटी हो गयी।

मैं उतरकर प्लेटफार्म पर आ गया और हाथ जोड़कर नमस्कार करते-करते कहने लगा— 'मुझसे कोई भूल हो गयी हो तो उसे छिपायें नहीं भाभी। मुझे स्पष्ट लिख दें जिससे मैं अपने आपको समझने का मौका पाऊं।'

गाड़ी ने रेंगना शुरू कर दिया। बड़ी भाभी बोलीं— तुम भूल भी करोगे तो मेरे कल्याण के लिए!

उसी क्षण क्या देखता हूँ कि वही डलिया हाथ में लटकाये दौड़ता-हांफता हुआ रामलाल आकर उसी डब्बे के अन्दर घुस गया। गाड़ी तब तक और तेज हो गयी। उस समय रामलाल ने इतना साहस दिखलाया यह मेरे लिए कैसे आश्चर्य की बात हो गयी। फिर भी मैंने पूछा— 'कहाँ रामलाल, क्या तुम्हें भी कानपुर जाना है?'

हाथ की डलिया ऊपर की बर्थ पर रखता-रखता— 'जी, मैं कानपुर नहीं मैं लखनऊ।' हड़बड़ाहट में रामलाल इतना ही कह सका और ट्रेन और अधिक आगे बढ़ गयी।

तब धीरे-धीरे बाहर आकर तांगे की ओर बढ़ते हुए मैंने अनुभव किया जैसे मेरे कान के पास मुंह ले जाकर नियति मुझसे कुछ कहना चाहती है, कुछ ऐसा जिसे मैं सुनना नहीं चाहता।

दस

घर पहुँचने पर दो बातों का समाचार मिला। एक तो यह कि आज ही अपने—खास अपने—मकान में बस जाने का मुहूर्त बना है। दूसरे यह कि राय साहब देर से मेरी प्रतीक्षा में बैठे हैं। तब जो देर से प्रतीक्षा में बैठा है पहले उसी

उनमें एक रेशमी कुरता और सलवार धारण किये हुए थी। होंठों पर कृत्रिम लाली मुँह पर रोज पाउडर, नखों पर लाल पालिश हथेलियों पर मेहदी कानों में एक बड़ा वृत्त के भीतर अनेक क्रमशः छोटे होते गये हिलते-डुलते वृत्तों के इयर रिंग—लेकिन मुख पर उत्साह के स्थान पर उदासी की घनी छाया और पलकों के नीचे काजल की धपधुली कालिमा अधिक फैल गयी है। ऐसा भी हो सकता है कि आँसू पोंछने में यह काजल फैल गया हो।

दूसरी वयस्क है। रंग तो कुछ साँवला है किन्तु नयन चंचल यथेष्ट हैं। देह पर आभूषण नहीं है फिर भी वेश-भूषा में संस्कृति की छाप स्पष्ट झलकती है। भृकुटियाँ कुछ घनी विलग हैं और नाक पर जो कील सुशोभित है उसका नग उच्च जाति का होने के कारण एक उज्ज्वलतम झलमली उत्पन्न कर रहा है।

कमरे में एक तख्त पड़ा हुआ था। हम लोगों को सामने देखते ही सिर नीचाकर वह युवती बोली— आइए लालाजी।

हम लोग उस तख्त पर बैठ गये।

लालाजी ने बैठते ही पूछा— अब क्या इरादे हैं अर्चनाजी?

नवयुवती ने अपने आप में सिमटकर, पृथ्वी में अपनी दृष्टि गड़ाकर, अश्रु विगलित कंठ से कह दिया— आप मुझे किसी तरह लखनऊ भेजने का प्रबन्ध कर दीजिए लालाजी। मैं आपका यह एहसान जिन्दगी भर न भूलूँगी।

लालाजी इसके उत्तर में कुछ कहें कि उसी क्षण अर्चना बोल उठी— "आपने उनको नाहक बचाया। अच्छा होता कुछ दिन जेल की हवा भी खा जाते।

मैं अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गया कि यह कैसी नारी है जो अपने स्वामी के लिए ऐसी बात कह रही है! किन्तु वे स्वामी भी तो !

पर उसी क्षण लालाजी ने यह बात कह भी डाली। बोले— कम-से-कम आपको तो ऐसा न कहना चाहिए। क्योंकि आप जिनके लिए ऐसा कह रही हैं वे आपके —।

वाक्य अभी पूरा भी न हो पाया था कि उसे बीच ही में — 'जी पति कहलाते हैं।' शब्दों के साथ अर्चना ने पूरा कर दिया। जरा भी संकोच उसे नहीं हुआ।

उसके इस कहलाते ही मन पर मुझे बड़ा ही क्षोभ हुआ। पर उसने मुझे अधिक सोचने और विचार करने का अवसर नहीं दिया। क्योंकि तुरन्त ही सारी वस्तुस्थिति स्पष्ट करते हुए कह दिया— 'पर शायद आपको यह न मालूम होगा कि रिश्ते में मैं उनकी बहन होती हूँ। मेरी बुआ इनकी माँ की सगी भाभी हैं।'

इसके पश्चात उसने दूसरी नवयुवती की ओर कुछ ऐसा संकेत कर दिया कि वह अन्दर चली गयी।

इसी क्षण मामाजी बोले— 'तो क्या हुआ? ब्याह होने के बाद तो सभी नाते आपसे आप टूट जाते हैं। केवल एक पति का नाता रह सकता है जो सबसे अलग सबसे न्यारा और श्रेष्ठ होता है।'

'लेकिन ब्याह भी तो उन्होंने नहीं किया।' अर्चना बोली— 'क्योंकि उनके खयाल में ब्याह एक कड़ी है जो इन्सान को कैद में डाल देती है।'

इस पर मामाजी बोले— 'खयाल ऐसा कुछ खास बुरा भी नहीं है। क्योंकि हमारे इस महादेश में ऐसे स्वनामधन्य देशभक्तों, महात्माओं और राष्ट्रकर्मियों की कमी नहीं है जो पचास-पचपन वर्ष की आयु तक जिनका यही मत रहा है। बाद में परिस्थितियों ने उन्हें मजबूर कर दिया हो यह बात दूसरी है। पर आपका मतलब शायद यह है कि दोनों तरफ के रिश्तेदारों की उपस्थिति के साथ बाजे और स्वागत-पूजन के साथ भाँवरें नहीं फेरी गयीं! —दावतें नहीं उड़ायी गयीं—रुपया जेवर बासन-भाँड़े कपड़े तथा लड्डू पकवान आदि दान में नहीं दिया गया। यानी कसर सिर्फ इतनी रह गयी कि आपके पिता को सब तरह से हीन और नष्ट करके द्वार-द्वार पर दाता-धर्मात्मा बनने के लिए बीच सड़क पर नहीं छोड़ दिया गया!'

कोई अन्य स्त्री होती तो इस प्रसंग पर अत्यधिक गम्भीर हो जाती और उसकी काया पर भी दीनतापन आ ही जाता। पर अर्चना हँसती-हँसती बोली— "मतलब मेरा यही तो है। पर आपको शायद यह न मालूम होगा कि अगर विधि विधान से मेरा ब्याह होता तो न तो उस दिन मेरे पिता का सगा बनकर द्वार-द्वार दाता-धर्मात्मा बनने की जरूरत पड़ती—न कल ही मुझे हजार की जमानत के लिए रात के बारह बजे आपको सोते से जगाना पड़ता। क्योंकि हमारे पिता भी

कालामी छोर सिर में खिसककर गले तक आ गया है। उसके नीचे एक फूल से सोने की जंजीर झांक रही है। ब्लाउज़ में से सुन्दर ताप की ज्वाला महक महक उठती है। श्वास के वेग से नथुने भी थोड़े उठ-उठ जाते हैं।

तो क्या मैं यहाँ मुझ अभागे को भस्म करने के लिए भेजा है! द्वार पर ही खड़ा-खड़ा यही सब देखता रहा। इस बीच स्वामी को एक बार खाँसी भी आयी— और कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे हाथ छाती पर आ पहुँचा है। एक बार उसने मेरी ओर देखा भी पर जैसे ही मेरे मुँह से निकल गया— कैसा जी है स्वामी? बस ही उसके मुँह से हिचकते हुए होंठों से अस्फुट स्वर में निकला—"ठीक है। पर शब्द स्वर बनकर पूरा नहीं पाया— कण्ठ से निकलकर भी मानो बीच में रुक गया और तभी पलकें भी हाथ से मुँद गये। तब मैंने कह दिया— जरा हाथ दिखाना।

इस बार हाथ तो स्वामी का उठ गया पर नयन पलकों से आवृत ही बने रहे।—जाने इसका अर्थ?

अब स्पष्ट है कि तुम मुझे प्यार करने में भी अब तुम्हें क्या करूँ! जितना देख लिया है उतने से ही जी भर गया है। सच कहता हूँ मैं नाड़ी-वाड़ी देखना बिल्कुल नहीं जानता। केवल इतना जानता हूँ कि ज्वर का वेग जब बढ़ा हुआ रहता है तब नाड़ी की गति तीव्र और शरीर का तापमान अधिक होता है। पर उसकी कलाई पर हाथ रखते ही मैं तापमान की उस अवस्था का अनुभव करने लगा जब प्राय रोगी लोग कष्ट के स्थान पर अंगुलियाँ थर्मामीटर रखकर के निकास पर जा पहुँचती हैं! इसलिए मुझे स्पष्ट कहना पड़ा— डॉक्टर को दिखलाये बिना काम न चलेगा। ज्वर ऐसा कुछ मामूली नहीं है। साथ ही मैं गुरुपाल अपने निवास-स्थान की ओर चलने लगा।

इसी समय स्वामी बोली— डॉक्टर सिन्हा के पास तो मालूम आता-जाता रहता है। उन्होंने कहा है कि अभी तो कुछ परवाह है नहीं। स्वाय एक बार फुरसत मिले तो देख जायेंगे।

मैं डॉक्टर सिन्हा को जानता हूँ। बल्कि यह कहना चाहिए कि उनसे मेरा अच्छा परिचय है। इसलिए सोचने लगा कि जब उन्होंने आज का वादा किया है तो वे

करने को पहले से तैयार रहोगी। रुपया पास होना भर चाहिये। एक मेरी एहसान की बात तो यह भी तुम अपने ऊपर कभी रख न सकोगी चाहे वह अपनी सगी बहन ही क्यों न हो।

सीढ़ी के नीचे भाग के दरवाजे के पास सड़क पर टहलता हुआ मोती इसी समय बोल उठा— 'यह बात उन्होंने बिल्कुल ठीक ही कही है आपसे। इसमें रत्ती भर भी फरक नहीं है।"

अभी मोतीलाल इतना ही कह पाया था कि भाभी उठकर अन्दर चली गयी। तब मैं सोचने लगा—मेरा प्रयत्न बेकार नहीं गया है। मुझे कुछ उस प्रकार की प्रसन्नता हुई जैसी किसी विद्यार्थी को परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने से होती है।

मोतीलाल कहने लगा— 'आप किसी वक्त खर्च का हिसाब मुझसे लिखवा लीजियेगा। तभी मैं आपको रुपया दे दूँगा।

अन्दर पहुँचकर देखा माँ रामायण-पाठ करके उठी हैं। उस समय जब मैंने माँ को यह समाचार दिया कि भाभी की बीमारी में जो भी खर्चा हुआ है मोतीलाल उसे देने को तैयार है तो माँ को आश्चर्य हुआ। बोलीं—"तैयार कैसे भी हों, मगर रुपया वह दे ही देगा इसका कोई भरोसा नहीं।

तब मैंने कम शब्दों में वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया जिसके परिणामस्वरूप मोतीलाल को विवश होकर रुपया देना स्वीकार करना पड़ा। सुनकर इस बार माँ गम्भीर हो गयीं। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उनको मेरा यह कार्य रुचिकर नहीं लगा। पर थोड़ी देर सोचने की दशा में रहकर धीरे से कहने लगीं— 'यह सब अच्छा नहीं हुआ लल्लू। भाभी पराये घर की लड़की है लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि उसका हमारे साथ अपनापन का नाता नहीं है। हमारे साथ उनके सम्बन्ध इतने गहरे रहे हैं कि अगर सौ-पचास रुपये उनके लिए मुझे खर्च कर देने पड़े थे तो मैं कभी उनसे माँगना तो दूर उनकी चर्चा तक नहीं करती। व्यक्ति चाहे जिस रूप में हो उसके मन पर ऐसी बातों का यह असर नहीं पड़ना चाहिए कि हम लोग उनसे अपना रुपया वसूल ही कर लेना चाहते हैं। यह बात तुम्हें किसी तरह कहनी नहीं चाहिए थी कि आजकल उनका हाथ पैसे से सिकुड़ा रहता है। पर यह खुशी की बात है—मैं तो लिहाज के मारे बहुत सोच

उत्तेजना में पड़कर आदमी ऐसा अनिष्ट कर बैठता है। लेकिन कुछ भी हो मैं मानता इसे पागलपन ही हूं।"

वह बोली— 'मैं किसी दूसरे की बात नहीं कहती। मैं तो उन्हीं की बात कहती हूं जिन्होंने मुझे आज इस दुनिया की भिखारिणी बना डाला है।"

मुझे ध्यान आ गया कि एक दिन भाभी ने बतलाया था भाभी के पति इतने सुन्दर और अमीर थे कि ब्याह के अवसर पर देखनेवालों ने कहा था— "लड़का उमर में भले ही कुछ अधिक हो। लेकिन इसकी छवि और शोभा इसकी बिल्कुल राजपुत्र की-सी है।

तब मैं विचार में पड़ गया। मुझे कहना पड़ा — 'मुझे बड़ा दुःख है कि वही बात उनके लिए भी लागू हो गयी। वास्तव में मुझे ज्ञात भी न था कि ऐसी कोई बात उनके जीवन में हुई थी। पर अब तुमने स्वयं ही इसकी चर्चा कर दी तब क्या तुम यह भी बता सकोगी कि उन्होंने ऐसा क्या किया?

इतनी बात कहकर वह तकियों के सहारे पुनः लेट गयी थी और एक चादर से उसने अपना शरीर ढक लिया था। किन्तु मैंने जब यह प्रश्न कर दिया तब चादर से मुंह खोलकर उसने कह दिया— 'बस यही बात मुझसे मत पूछो।' और उसने चादर से पुनः मुंह ढक लिया।

तब मैं यह कहकर चलने लगा— 'मैं तो असल में तुम्हारी तबियत का हाल लेने आया था। लेकिन बात कुछ ऐसी हो गयी जिन्होंने तुम्हारी सोयी स्मृतियां जगा दीं। इसका मुझे दुःख है। अच्छा अब मैं चलता हूं। फिर बातें होंगी। इस समय किसी प्रकार मैं तुम्हारे मन को दुःखी नहीं करना चाहता।

ऐसा कहकर मैं सचमुच चल दिया। पर मैं अभी उसके कमरे के द्वार तक भी न आ पाया था कि पीछे से फिर उसका स्वर सुनाई पड़ गया— 'लेकिन तबियत का हाल तो अभी तक तुमने पूछा नहीं।' उसी जगह मैं ठिठुक कर खड़ा हो गया। फिर मैंने घूमकर उसकी ओर देखा। वह उठकर पुनः बैठ गयी। तब मुझे लगा कि उसके भीतर भी तूफान का एक ऐसा हाहाकार है जिसमें मैं न चल सकता हूं न आगे बढ़ सकता हूं न खड़ा रह सकता हूं!

तब मैंने कह दिया— 'अब उसकी जरूरत नहीं है।" और मैं बिना रुके चला आया।

पता नहीं क्यों मां विचार-मग्न सी हो उठीं। बात-की-बात में मेरी ओर देखकर चुप हो रहीं। मेरे आंसू उन्होंने पोंछ डाले। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जिस बात की आशंका से उन्हें संकोच हो रहा है वह इतनी छोटी है, इतनी साधारण कि उस पर उन्हें हंसी आ रही है। फिर कुछ ऐसी बात हुई कि वे मधु भाती-मधुभाती मुसकरा भी उठीं और बोलीं— बात जितने दुःख की है, राजेन्, उससे कहीं अधिक हंसी की और आश्चर्य की तो थाह नहीं उसमें! लोग भी तो कहते थे—वे अब भी शायद जीवित हैं। साफ तो नहीं कहती थी पर भी कुछ कहा उन्होंने उसका मतलब यही होता है। कहती थी—वे देवता थे। भला वे कभी मर सकते हैं! मैं जब पूरी सयानी थी तो मन उनको सम्पत्ती में भर में रंगा था। मैं वहां जितने दिन रही नित्य मैं उनका कभी सामने और कभी अपने इर्द-गिर्द देखती रही। कभी-कभी तो मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे वे बात कर रहे हैं और मैं चुपचाप सुन रही हूं। वे हजारों की संख्या में इकट्ठे नर-नारियों के बीच में बैठे उपदेश कर रहे हैं और मैं उस उपदेश को सुन-सुनकर मग्न हो गयी हूं। उन्होंने मुझे देखा भी है पर वे मुझसे बोले नहीं।

मेरे मुंह से निकल गया— चाची की सब बातें ऐसी ही होती हैं। वे रह क्या कहती, यह समझना बड़ा कठिन है। उनकी इन बातों में कौन सत्य है और सत्य किस सीमा तक असत्य है कुछ नहीं कहा जा सकता।

'नहीं राजन्, तू नहीं जानता उनकी इन बातों के अन्दर कुछ-न-कुछ सार अवश्य है। हां कुछ ऐसे ढंग से चाची जैसे कोई बात है अवश्य पर वे उसे कह नहीं पा रही हैं। उनके मन में कोई बात उठती अवश्य है पर उसके सम्बन्ध में वे निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकतीं मानो उनका स्वयं उस पर सन्देह हो उठता है। कुछ ऐसी स्थिति है कि हां भी सकता है—अर्थात् या नहीं हो सकता ऐसे सोचती-सोचती वे सहसा सोचने लगती हैं कि हां भी सकता है।

तब मेरे मुंह से निकल गया—'क्या सार है? किस बात का सार है! आखिर तुम कहना क्या चाहती हो? समझाओ न एक बार भी साफ-साफ! पिताजी ने जीवन में कभी कोई ऐसा काम नहीं किया जिसके सम्बन्ध में इस कभी सोच करने की आवश्यकता हो। फिर मेरी समझ में नहीं आता कि यदि

यह हरबंसपुर वही गाँव है जहाँ आपी-धानी की उस भयानक रात को बैलगाड़ी पर से पिताजी का शव अचानक लापता हो गया था!

इतने में सुखराम आ गया। बोला— 'आम का अचार है माँ जी।'

माँ ने पूछा— 'किस के यहाँ से आया है?'

इतने में रामलाल सामने उपस्थित होकर माँ के पैर छूने लगा। मैं उसे देखकर चकित हो उठा। मैंने पूछा— 'अरे रामलाल तुम! मैं तो समझ रहा था कि अब तक तुम जेल में होगे!'

मैं माँ के पास से उठकर रामलाल के साथ बाहर आया। मेरी बात सुनते ही रामलाल बोल उठा— 'मुझे जेल में डालने वाले मर गए!'

मैंने हँसते-हँसते कह दिया— 'सम्भव है कुछ बच भी रहे हों।'

तब रामलाल ने उत्तर दिया— 'जो बच रहे हैं वे आजकल जेल में अपना मुँह देख रहे हैं!'

रामलाल का यह उत्तर मुझे पसन्द नहीं हुआ। तभी पुनः ऊपर जाकर मैंने माँ से पूछा— 'माँ मेरे द्वारा तुम को कभी जीवन में कोई कष्ट हुआ है?'

मेरा प्रश्न सुनकर माँ यकायक चौंक पड़ी। बोली— 'नहीं तो! लेकिन यह सवाल आज तेरे मन में उठा ही क्यों?'

मेरे मुँह से निकल गया— 'क्या उठा, यह फिर कभी पूछ लेना। इस समय मैं चाहता सिर्फ यह हूँ कि तुम इस अचार को वापस ही कर दो। जो लोग ईमान बेचकर जीवन में बड़ा बनना चाहते हैं मैं उस जाति का आदमी नहीं हूँ। और इसीलिए उस जाति के साथ अब मेरा सम्बन्ध किसी तरह स्थिर नहीं रह सकता। ऐसे आदमी से मिलना-जुलना भी मैं अपने लिए अपमानजनक समझता हूँ!'

माँ बोली— 'जैसा चाहे वैसा कर! मैं कुछ नहीं जानती।'

जान पड़ता है रामलाल ने सारी बातें सुन ली थीं। तभी वह उसी स्थान से बोल उठा— "अच्छी बात है। अचार वापस लिए जाता हूँ। सादर प्रणाम!"

और ज्यों ही मैं नीचे उतर कर आ गया देखता हूँ कि सुखराम सचमुच [illegible] मकान के बाहर स्टेशन की डगर की ओर चल पड़ा है। स्वभावतः मैंने उस समय रामलाल से कुछ नहीं कहा।

की उपेक्षा भी यह सहज ही कर डालता है जो मेरे जीवन में सदा विशेष महत्त्व रखती आयी है।

उस संग-नारी ने दो कप चाय बनायी। एक कप अपने स्वामी को पिलाई और एक कप स्वयं पी।

इधर मैं भी अपनी ट्रे की चाय समाप्त कर रहा हूं। सोचता हूं कितना अच्छा होता अगर मैंने अलग से अपने लिए चाय इस स्टाल से न मंगवाकर केवल गरम पानी ही मंगवाया होता! और कोई बात न सही तो इतना तो प्रेमपूर्वक कह ही सकता था कि ओ सृष्टि की आदि चिरसंगिनी एक कप तेरे कोमल हाथों के स्पर्श से बनी हुई चाय का अधिकारी भी मैं हूं। तब ऐसा तो कभी सम्भव न था कि वह इनकार कर देती!

लेकिन मेरा यह शरीर जो अलग पड़ा है कह रहा है—'बस यही सोचते रहो। कह तो ऐसा सकोगे नहीं कभी।

अच्छा माना कि नहीं कह सकूंगा पर यह सोच लेना भी क्या बुरा है?

स्टाल को मैंने विदा कर दिया। गरम पानी के दाम के लिए उस संग-नारी ने भी उसे दो आने पैसे दे दिये। इतने में गाड़ी चल दी। सम्हलकर बैठने लगा तो उस नारी की सज्जनता देखिये कि उसने अपने बिस्तर पर हाथ रखकर मुझ से कह दिया—"आप सोयेंगे या नहीं? सोयें तो मैं आप के लिए जगह निकाल दूं?"

सोचता हूं स्वाभाविक इन्हीं सरलताओं को अपने जीवन के साथ संलग्न रखते हुए भी मेरा यह शरीर अभी कह रहा था—'बस इतना ही तेरे भाग्य में लिखा है। इससे आगे कुछ नहीं!'

"सोता अब मैं किसका सपाट अपने आप के साथ!'—किसे समझाऊं कि इस के आगे और होता क्या है?

पूरी नींद तो नहीं आयी पर बैठे-बैठे झपकियां लग जाती रहीं। कभी-कभी एक विचार-बिन्दु-सा मेरे मानस पर आ गिरता कि यह जीवन ही मानो दैहिक सुख में हीन ऐसी रचना है कि विश्राम और निश्चिन्तता की समस्त सुविधाएं सहज सुलभ नहीं रह गयीं। सर्वांश में आलस्य ही थोड़ा-बहुत मिल सकता है। सो भी सदा और सर्वत्र नहीं।

एक दिन की बात है। टिकट मैंने लिया था इण्टर क्लास का, लेकिन गाड़ी थी वह कानपुर-आगरा-पैसेंजर। इसलिए उसका प्रबन्ध कुछ विशेष तो होना ही चाहिए था। सो इस प्रकार हुआ कि पूरी गाड़ी भर में इण्टर क्लास का कोई डब्बा ही न मिला। तब विवश होकर थर्ड क्लास के डब्बे में बैठना पड़ा। बस ट्रेन कानपुर स्टेशन से चलने ही वाली थी कि एक शरणार्थी कम्पट बेचता हुआ आ पहुंचा। उमर उसकी कोई पचास-पचपन की होगी। बाल सफेद हो गये थे और कुछ झड़े हुए भी थे। बेचारा एक आने में सोलह के हिसाब से बेच रहा था। इतने में एक आदमी ने पूछ दिया—"क्या आपके घर में कोई कमाने वाला लड़का नहीं जो आप यह छोटा काम करते हैं? इसमें आपको भला क्या मिलता होगा!"

बस इतना पूछना था कि वह वृद्ध रो पड़ा। बोला—'क्या बताऊं मुसीबत का मारा हूं। जवान लड़का था बाईस साल का। उसका ब्याह जिस लड़की के साथ हुआ चाल-चलन उसका खराब निकल गया। मां-बेटी दोनों ने मिलकर मेरे बेटे को घर पर खाने को बुलाया। वहां दस बजने पर उसने खाना खाया। घर लौट आने पर बारह बजते-बजते वह बेहोश हो गया और दो बजे इस दुनिया से कूच कर गया। डाक्टर ने जांच करके साफ-साफ बतला दिया था कि इसको खाने के साथ संखिया दी गयी है। पर संखिया किसने दी? इसका कुछ पता नहीं चला। चौदह तोले भर सोने का जेवर था वह भी लड़की और उसकी मां ने दाब लिया। छै महीने भी न बीतने पाये थे कि सुना उस बहू का एक एम. पी. के लड़के से ब्याह हो गया। तब से मेरा यही हाल है। जितने दिन जिन्दगी है उतने दिन तो किसी तरह पार करने ही होंगे।

सोचता हूं इन दोनों घटनाओं में एक ही-सा जहर है। जो संस्कार उस छात्र को इंटर क्लास से उस में अपनी सीट पर बैठी हुई युवती को उठाने, उससे अलग बैठने की जगह लेने और फिर अधिक-से-अधिक जगह में पसरकर फैलकर, सोने या अविनय करने-कराने उस अपमानित करने को प्रेरित करते हैं, वही उस शरणार्थी की चरित्रहीना बहू और उसकी मां के द्वारा उसके नौजवान बेटे को जहर दिलाकर उसका चौदह तोले भर सोना मार देने और फिर तुरन्त पुनर्विवाह कर लेने को भी उत्साहित करते हैं।

पर ये कौन संस्कार हैं? कौनसी विचारधाराएं इन घटनाओं को प्रोत्साहन

कपूर बदन की दुबली-पतली गोल-मोल कटार-सी आँखें, केशपाश को दो लटों में विभाजित किये हुए, हलके हरे रंग की साड़ियाँ की इकलाई धारण किये हुए। पैरों में हरे और सुनहले रंग के चप्पल।

दीक्षितजी ने परिचय कराया— 'यह है मेरी बहिन वैसाखी, पर इसका दूसरा नाम शैतान की आँत भी है।' और वैसाखी ने मुसकराते हुए हाथ जोड़ते जोड़ते बतलाया—'और ये मेरी पुत्री— श्रीमती अचला देवी।'

बिना किसी प्रकार का भाव-परिवर्तन दिखलाये मुझे कहना पड़ा— 'मैं आपको जानता हूँ। इलाहाबाद में आपको … ।'

अचला कुछ संकुचित-सी जान पड़ी। फिर साड़ी के अंचल को बायें भाग में स्थिर कर के बोली— 'हाँ, आप काकाजी के साथ एक बार मेरे घर आये थे। पर अब तो हम यहाँ आ गये हैं।'

मैंने पूछा— 'कब?'

अचला ने उत्तर दिया— "यही कोई दस दिन हुए होंगे। एक कन्या विद्यालय में नियुक्ति भी हो गयी है।'

"चलो यह बहुत अच्छा हुआ।' सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। तुरन्त मैंने कह दिया।

दीक्षितजी वैसाखी से मधु बालों को लक्ष्यकर बोले— 'अब तो इस बैठक का कलेवर काफी बढ़ गया। चाय तथा अन्य सामग्री … ?'

मधु ने सिर नीचा किये हुए उत्तर दिया— 'अभी आती आती है।'

अब दीक्षितजी अचला देवी की ओर देखकर कहने लगे— 'पाण्डेयजी को आप जानती हैं यह भी खूब रहा!'

अचलाजी कहीं कुछ अन्यथा न अनुभव करें, इसलिए मैंने कह दिया— "इनके पतिदेव मुरली बाबू तो मेरे यहाँ प्रायः आते रहते हैं।'

पर मेरा इतना कहना भी उनके लिए बहुत हो गया। बेचारी अपने भावों को बरबस संयमित रखती हुई बोली— 'उस रोज आपसे मिलकर ही हम लोग आना चाहते थे, पर कुछ ऐसी जल्दी थी कि फिर आ नहीं सके।" और इतना कहकर तुरन्त घड़ी देखती हुई कहने लगी— क्षमा कीजियेगा, मुझे थोड़ी देर तो वैसाखी का —।

"जल्दी तो जाना ठीक है मगर कब ? सिर्फ छै दिन । आज का दिन उसमें शामिल नहीं किया जाता । मालूम है —ट के इस व मैटरके ।

माताजी को भान पड़ता है वैशाली का यह कथन अच्छा नहीं लगा । तभी उन्होंने मनाते हुए कह दिया— 'सब मालूम है । यह भी मालूम है कि पढ़ने में तेरा मन नहीं लगता जितना बातें बनाने में ।

"देखिये माताजी मैं आपसे बहुत विनयपूर्वक यह निवेदन करना चाहती हूँ कि— गम्भीरतापूर्वक इतना कह चुकने के अनन्तर वैशाली फिर हम पड़ी और बोली— 'न तो मेरे नय ख्याता गी हैं न मैं इनको एक चिट्ठी देने आयी थी बगल में । आपका अमूल्य समय नष्ट करने के लिए नहीं ।

और इतना कहकर उसने सचमुच अपने पाकेट में से एक लिफाफा निकाल कर मुझे दे दिया । अब मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा । मैं यह सोच ही न सका कि यहाँ आये अभी मुझे पूरा दिन भी नहीं हुआ फिर भी यह पत्र कहाँ से आया और किसने भेजा !

इसलिये पत्र बिना खोले ही मैंने आश्चर्य से पूछा— मेरा पत्र ! मेरा पत्र कैसा ? यहाँ मुझे पत्र भेजनेवाला कौन बैठा है ? फिर कौन आदमी यह पत्र ले आया है ? और वह आदमी है कहाँ ? मुझे उससे मिलना होगा । और साथ ही मैं उठकर बैठ गया ।

माताजी बोलीं—"पहले पढ़ तो लो पत्र फिर उस आदमी से भी मिल लेना मगर जरूरत समझना ।

पर वैशाली बोली—"आपको पढ़ने में दिक्कत हो तो मैं पढ़ दूँ । और हँसने लगी ।

तब पत्र को बीच से लेकर उसे किनारे-किनारे चीरते हुए खयाल आया कि सचमुच पत्र का समाचार और विषय की उपयोगिता जाने बिना ही मैंने कह दिया कि मुझे उस आदमी से मिलना पड़ेगा !

पत्र बहुत संक्षेप में लिखा हुआ है । पर उसका समाचार कुछ ऐसा है कि मेरे हृदय की गति यकायक तीव्र हो गयी है ।

वे लोग हैं जो दूसरों के दुःख से दुःखी हैं। उनका अपना सुख कुछ नहीं होता। वे तो दूसरों को सुखी देखकर सुखी होते हैं। वे सतत चेष्टाशील रहते हैं कि उनके द्वारा किसी को दुःख न पहुँचे उनमें कुछ भी पुरुषार्थ अगर होता है तो केवल इस लिए कि वे सब के प्रिय बन रहें। और उनके इस प्रयत्न का परिणाम यह होता है कि वे सुख की नींद नहीं ले पाते !

वैशाली की ही बात लीजिये। क्यों वह मुझसे नाराज हो गयी? क्योंकि मैंने उसकी बात नहीं मानी। मान पहुँची मेरे भी उससे। पर इसी मेरे का प्रति-फल यह है कि वह मुझ पर अपना सर्वाधिकार चाहने लगी। और इस महत्त्वा-काक्षा का मूल आधार यह है कि वह मुझ में कुछ ऐसा देखती है जो इस जगत् के लिए सर्वथा अनूठा है। और यह कितने प्रमाद की बात है कि वह समझने लगी है कि मैं उसके उस अनूठेपन का भक्त हूँ! यद्यपि इसमें भी सन्देह नहीं कि अनूठा-पन मुझे बहुत प्यारा है चाहे वह कहीं भी हो। पर ऐसी तो कोई बात नहीं है कि उस प्यार के आगे मेरे समग्र जीवन का और कोई महान् लक्ष्य है ही नहीं।

लेकिन मेरी यह निश्चित विचार-सरणि भी इस समय व्यर्थ हो गयी है क्योंकि यह सुकुमारी बालिका वैशाली समझ बैठी है कि मैंने उसका अपमान किया है! पर क्या उसके इस चरित्र के मूल में मामाजी तथा बड़े दीदीजी के संस्कारों का यह प्रभाव-दान नहीं जिन्होंने इसको इस सीमा तक अहंवादी बना दिया है!

इच्छा तो हो रही है कि मैं एकदम से कठोर मार्ग का ही अनुसरण करूँ और इस विषय में सर्वथा मौन हो जाऊँ किन्तु इस प्रकार मैं स्वयं अपनी दृष्टि में हीन हो जाऊँगा क्योंकि मुझे कुछ भी क्यों न हो जाय मैं ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहता जिससे उस व्यक्ति को दुःख पहुँचे जो कहीं-न-कहीं से मुझसे कुछ आशा रखता हो!

इस प्रकार मैं अब झुक रहा हूँ। मेरा मस्तक घूम रहा है। जिस बात को मैं पसन्द नहीं करता जिसपर मुझे बरस जाना चाहिए उसी के लिए मैं अपने घुटने टेक रहा हूँ। संसार के समस्त विचारक देख लें कि मैं इस क्षण अपने सिद्धान्त से सर्वथा च्युत होकर कितना हीन हो गया हूँ!

बुलाना चाहती हूं।

मैंने कह दिया—'दो दिन से तो यहीं टिके हैं। मां घबराती होंगी कि यहां मेहमानी में इतना लिप्त हो गया कि घर का खयाल ही भूल गया।

मन्दहास चुलती हुई वे बोलीं—'यह सब कुछ नहीं। मधू पहले यहां आयगी। कम-से-कम दो दिन मेरे साथ रहेगी तब जायगी। चाहे इस कान से सुनो चाहे उस कान से।

विरोध करना उचित न समझ झट से मैंने कह दिया—'जो हुक्म सरकार।

तब वे कहने लगीं—'तो सुनो पड़ोस में वर्मा साहब की कोठी है। अपने भैया के संग चले जाओ। फोन पर बुला लो मधू की सास को और कह दो कि मधू यहां होकर आयगी प्रणाम। आज ही शाम को विदा करनी होगी।

इतने में किसी के आसन की आवाज हुई। अन्दर आने पर मालूम हुआ भाईसाहब हैं। मुसकराते हुए वे बोले—"मैंने सोचा जल्दी ही आना ठीक है। क्या नहीं आप लोग किन बातों में लीन हों!

भाभी ने उधर तिरछी चितवन से देखा फिर अवगुण्ठन छूकर थोड़ा सम्हालने की चेष्टा की फिर अबकी भर हाथ अधरों पर प्रस्फुटित हुआ। फिर बोलीं—'जाओ अभी चले जाओ इनके संग।

भाईसाहब के पीछे एक मजदूर भी आ पहुंचा। तब भाईसाहब कहने लगे—"उस पलंग पर रख दो। बस-बस यहीं। और ये लो पैसे।

मजदूर पैसे लेकर जाने लगा तब भाई साहब ने कहा—"देखो राजन यहां कैसा रहेगा?

मैंने देखा यह का आवरण साटन का है और रंग उसका बहुत गोरा बल्कि उस तरह का गुलाबी जो किसी प्रकार का एक विकसित रूप होता है। रूई बहुत मुलायम नहीं हुई है।

मैंने कह दिया—"भाभी की पसन्द कीमती है। इसी समय मैंने दीदिमजी से फोन करने की बात की। कहा कि भाभी मधू को यहां बुलाना चाहती हैं।

भाईसाहब दांत के भीतर अंगुली से कुछ टटोलते हुए बोले—'हां-हां चलो।—मगर एक बात है। मेरा उनके यहां जाना उचित होगा? और वे

पर इतने में मैं क्या देखता हूं अर्चनाजी दरवाजे पर खड़ी हैं। मैंने रेडियो बन्द करते हुए कहा— 'आइए।'

वे सकुचाती-सकुचाती सोफे की मुड्डर से लग गयी और बोली— 'उस दिन मैंने आपसे कुछ कहा था। आपको याद तो होगा।'

मैंने कहा— 'हां कहिये।'

वे बोलीं— 'अभी आये हैं। करीब एक घंटा हुआ।'

मेरे मुंह से निकल गया—"मुरली बाबू?"

वे घबराती-सी कहने लगीं— 'जी। जान संकट में डाल रक्खी है उन्होंने। कहते हैं टार्सनिप-इन्सपेक्टर हो गया हूं। अब तुमको कोई तकलीफ नहीं होगी। रोटी-कपड़ा से मान-मर्यादा से तुम अब रानी की तरह रहोगी।'

मेरे मुंह से निकल गया— 'इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है?'

"लेकिन आप मेरी स्थिति से परिचित हैं। मुझे उनकी किसी बात पर विश्वास नहीं रहा। वे अब सोने के ही जाएं तो मेरे लिए मिट्टी के हैं। मेरे हृदय के अन्दर छाले पड़ गए हैं पांडेयजी। आपको मैं कैसे बतलाऊं।'

और इतना कहते-कहते अर्चना रो पड़ी।

इतने में भाईसाहब आ गए और अर्चना ने थोड़ा मुंह फेर लिया।

भाईसाहब बोले— 'क्यों मुझसे कुछ कहना है अर्चनाजी? लेकिन देखता हूं आप रो रही हैं। क्या बात है? बतलाइये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?"

तब विवश होकर मुझे कहना पड़ा— 'यह भी मेरी एक बहन हैं बंधी भैया। अत्यन्त घुल-घुल कर रह रही थीं। अच्छा हुआ आपके सामने भेंट हो गयी। कभी कोई मौका पड़ तो आशा है आप पूरी सहायता करेंगे। इसके पश्चात् मैंने अर्चनाजी को लक्ष्य कर कह दिया— 'आप थोड़ी देर बाद आयें अर्चनाजी। बस एक आधे पौन घंटे बाद। मुझे थोड़ी देर के लिए बाहर जाना है अभी।

अर्चनाजी चली गयीं तब मैंने पूछा— 'क्यों क्या हुआ?

भाईसाहब बोले— 'कुछ नहीं, यों ही जरा वमन हो गया था।"

मुझे आश्चर्य हुआ। पूछा—"वमन?

वे बोले— जी।

मैंने फिर पूछा— आज ही हुआ कि इधर आना होता रहता है?

उन्होंने तब नीलम की अंगूठी घुमाते हुए बतलाया— मेरी जीवन-कहानी तो तुमको मालूम ही है।

मैंने कहा— कुछ-कुछ।

तो बस समझ लो कि कुछ उलट-फेर हो रहा है। तभी मन बहलाने के लिए इसको यहाँ ले आना पड़ा है।

अच्छा तो यह बात है! अब सबकुछ समझ में आ रहा है। छोटी भाभी की नियति अपना कौतुक दिखलाना चाहती है! उनका ब्याह जिस अभाव की पूर्ति के लिए हुआ था भगवान् ने उसका यह रूप उपस्थित कर दिया है। मानवी पुरुषार्थ के लिए प्रकृति की यह स्पष्ट चुनौती है। मनुष्य कितने भ्रम में रहता है! अपने स्वार्थ-साधन के लिए वह झटपट कौन-कौन से मार्ग खोज लेता है! अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए वह उचितानुचित का ध्यान किस सीमा तक रखता है यह इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

वाह भाईसाहब आपने सचमुच कमाल का काम किया है!

किन्तु हमें चित्र की दूसरी ओर भी तो देखना है। छोटी भाभी के पिता ने क्या समझकर यह ब्याह किया? इस प्रश्न की आंतरिक स्थितियों पर उनका ध्यान क्यों नहीं गया? अपनी लड़की के भविष्य पर उन्होंने विचार क्यों नहीं किया?

अब छोटी भाभी को क्या कहूँ? गाय की भाँति बिक जाना उन्होंने स्वीकार कैसे कर लिया!

कुछ नहीं मैं कुछ सोचना नहीं चाहता। मैं कुछ कहना नहीं चाहता। मैं मौन हूँ मेरे मुँह पर ताला लग गया है।

इतने में भाई साहब बोले— अभी पहले खाना खा लो उसके बाद और कुछ करना।

पर मुझे भूख है कहाँ? —इतना जबरदस्त जलपान कर लेने के बाद—!

'कहते क्या हो? जवान आदमी हो।

"नहीं मुझे माफ कीजिए। खाना खाने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है।

तो म बनी भाभी भी आ गयी। झीनी-झीनी महीन सरसराती हुई साड़ी पहन है। लम्बी वेणी कमर के नीचे जानु-पर्यन्त लटक रही है। मेरे पास आते ही बोली— श्रीखण्ड बड़ा अच्छा बना है। चखो तो झट से। और तभी गार्निशिंग भर एक और चख लिया।

मैं भाभी के साथ चला तो आया किन्तु मैंने खाना स्वीकार नहीं किया। भाभी मेरे पीछे पड़ गयी। बोली—"तुमको खाना ही पड़ेगा। मैंने श्रीखण्ड बड़े मन से बनवाया है।

तब मुझे कहना पड़ा— 'तो मैं श्रीखंड ही थोड़ा-सा चख लूंगा। पर एक तो मैं खाना नहीं खाऊंगा इस समय दूसरे मुझे अभी मधु के यहाँ जाना होगा। तब बड़ी मुश्किल से भाभी का समाधान हुआ।

मैं श्रीखंड चखता जाता हूं पर उसके प्रत्येक ग्रास को कण्ठ के नीचे उतारता हुआ मैं यह नहीं भूल रहा हूं कि इस स्वागत और आदर-सत्कार के अन्तराल में जो उल्लास और आनन्द है कौतुक-कौतुक है उसका दूसरा पक्ष कितना विकराल है! और मुझे तो संसार और उसकी इस सृष्टि का वही कोना देखना है जो उपेक्षित है। स्पष्ट देख रहा हूं कि आज इस परिवार में छोटी भाभी का कोई मान और महत्त्व नहीं है। पग-पग पर उनकी व्यर्थता मेरे मर्मस्थलों में शूल की भांति पीड़ा पहुंचा रही है। मैं यही सोचता हूं क्या यह समस्त सृष्टि ही ऐसी द्वन्द्वमूलक है? जब प्रत्येक रुदन के आगे-आगे हास उल्लास की मृगतृष्णा है जब प्रत्येक सौम्य एवं आनन्द के पीछे हाहाकार, चीत्कार, अश्रुवर्षण और मृत्यु की भयानक-से-भयानक विभीषिकाएं हैं तब सुख-शान्ति का स्थायित्व एक स्वप्न ही तो है!

इतने में भाभी बोली— 'एक प्लेट और। तुम्हें मेरी कसम।

मैंने भाभी के चरणों पर सिर रख दिया। कुछ कहा नहीं। कहने लायक भी मेरा अन्तपट खुल जाता।

उन्होंने झट मेरा मस्तक उठा लिया। फिर वे बोली—"और कोई बात नहीं। फिर सही। जब इच्छा हो तब खाना।

आचमन करने के बाद मैं चलने लगा। तब वे बोली—"तो मधु को ला रहे हो न?

मेरे मुंह से निकल गया— 'प्रयत्न तो ऐसा ही करूंगा। पर सब कुछ है तो दीक्षितजी की मां के ही अधिकार में।'

'हां, यह तुम ठीक कहते हो।' भाभी ने कहते हुए मुझे कुछ ऐसी दृष्टि से देखा जैसे वे मेरे हृदय का सारा मर्म पढ़ लेना चाहती हैं। जैसे वे यही अनुभव कर रही हैं कि मैं यकायक क्यों इतना गम्भीर हो गया हूं? क्यों झटपट मैं यहां से भाग जाना चाहता हूं? क्यों मैंने कीर्तन दुबारा नहीं लिया? क्यों मैंने भोजन से ही इनकार कर दिया?

अब मैं चल खड़ा हुआ। इस समय मैंने जान-बूझकर न तो भाईसाहब को प्रणाम किया न भाभी के चरण छुए। केवल यह सोचकर कि कहीं इसका यह अर्थ न लगाया जाय कि मेरे मन में कुछ और है।

चलते समय मैंने चेष्टा की कि अर्चना से मिल लूं। पर वह उस समय अपने कमरे में मिली नहीं। तब अधिक प्रतीक्षा न करके मैं चला आया।

गाड़ी पर तो मुझे जाना ही था। इसलिए मैं चुपचाप उसमें बैठा हुआ जगत् की व्यस्तता और उसके भीतर छिपे रहस्यों पर विचार करता जा रहा था। छोटी भाभी को कदाचित् यह बतलाया भी न गया हो कि वे ब्याहकर जहां जा रही हैं वहां एक सौत भी पहले से उपस्थित है। फिर उस ब्याह का यह परिणाम कि उन्हें हिस्टीरिया ने ग्रस लिया है। इधर बड़ी भाभी की गोदी भरी जाती है!

प्रभु, तेरी यह कैसी लीला है?

यह स्त्री कौन जा रही है जिसका पहनावा लम्बा सफ़ेद है? सारी वेश-भूषा किसी मुसलमान नारी की-सी जान पड़ती है। ओ, यह तो अर्चना है!

'ठहरो, रुको एक मिनट!' मैंने ड्राइवर से कह दिया।

गाड़ी रुकी और मैंने पूछा— 'आपको कहां जाना है अर्चना जी?'

"जी, मैं... मैं चली जाऊंगी।'

'फिर भी जाना कहां है?'

'जी, मुझे जाना तो है सब्जीमंडी।'

'चलिये, आपको वहीं छोड़ देंगे और बातें भी आप की सुन लेंगे।' और मैंने अपने पास दाईं ओर बैठा लिया।

अब गाड़ी फिर चल दी ।

अर्चना बोली—'आप तो मुझसे बड़े हैं और सब तरह से बड़े हैं । मेरा मतलब यह कि अवस्था में ही नहीं मर्यादा में भी ।

मुझे कहना पड़ा—"तो इससे क्या हुआ ?

वह पुस्तकों को बगल में रखती हुई बोली—'मैं कहना यह चाहती हूं कि आज ही आपने चौहरी साहब से मेरा जो परिचय कराया है उसमें मुझे अपनी एक बहन ही तो बतलाया है ।

"सो तो क्या हुआ बहन तो आप हैं ही !

"मगर बहन तो 'आप' नहीं होती । बहिन हो जाने के बाद नारी की संज्ञा 'तुम' बन जाती है ।

"तुम ठीक कहती हो अर्चना !

अर्चना हंसने लगी ! बोली—'तो भैया मुझे आप क्या करने को कह रहे हैं ? मैं उनसे क्या कह दूं ? अभी तो मैंने सोचकर जवाब देने के लिए कह दिया है ।

मैं पहले तो चुप रहा । फिर मुझे कह देना पड़ा—आप—आप नहीं तुम—एक काम करो कि उनको मेरे पास भेज दो । एक बार मैं उनसे बात कर लूं तब कुछ बतलाऊं ।

तब अर्चना चुप रह गयी ।

क्षण भर बाद मैंने पूछा—'क्या सचमुच उनको राशनिंग-इन्सपेक्टर की जगह मिल गयी है यहां ?

"कहते तो यही थे । पर आप तो जानते हैं उनके पास सत्य की पूंजी कितनी है ।' वह बोली और चुप रह गयी ।

कितना अन्तर्विरोध है जीवन में ? मन कुछ कहता है आदर्श कुछ । संस्कार कहते हैं—समाज के अन्दर अपनी मर्यादा बनाओ और जीवन की प्राण-पीड़क परिस्थितियां कहती हैं—अन्याय के आगे घुटने मत टेको । प्राण तरसें तर तो पर हाथ मत पसारो दैन्य मत दिखलाओ । आदर्शों के लिए मर मिटनेवाले ही इतिहास बनाते हैं वही राष्ट्र-निर्माण करते हैं । सिद्धान्तों की

तब वह बोली— अच्छा बहुत गम्भीरतापूर्वक मैं आपसे एक वादा लेना चाहती हूँ।

– 'कौनसा वादा ?

'पहले यह स्वीकार कीजिये कि आप उसे अपने मन में ही रखेंगे किसी से कहेंगे नहीं।

'स्वीकार।

तो आप कृपा करके मेरे पत्रों का उत्तर अवश्य दिया करेंगे।

'स्वीकार।

"और पढ़ लेने के बाद आप उन्हें फाड़ भी डाला करेंगे तत्काल—क्योंकि मैंने भी ऐसा ही निश्चय किया है।

"स्वीकार।

'देखिये सदा-सर्वदा 'ना' कहनेवाले से मैंने किस चातुर्य से 'हाँ' कहला ली!

ऐसे स्वप्नों को मैं कभी पनपने नहीं देता! ऐसे वादों को मैं अपने निकट खड़ा नहीं होने देता! ऐसी बात मैं बहुधा याद भी नहीं रखता!

लेकिन ।

भेंट एक और हुई थी जब हम कुतुब देखकर लौट रहे थे।

उसने कहा था— 'देखिये भाई साहब मैं बात ज्यादा करती हूँ न! आपको मुझसे यही तो शिकायत हो सकती है? क्योंकि जो भी कोई बात अधिक करेगा वह कुछ ना निरर्थक बोलेगा ही। सो अपना यह दोष मैं स्वीकार करती हूँ।

'लेकिन फिर मैं एक बात पूछती हूँ कि जीवन के लिए जो बातें अत्यधिक प्रिय होती हैं वही बातें जीवन-यात्रा के लिए विष क्यों हो जाया करती हैं? मेरी बात आप समझ रहे हैं न? अर्थात् जिनको आप एक तरफ से बहुत आवश्यक मानते हैं उन्हीं को दूसरी तरफ से अनावश्यक और निरर्थक फिर क्यों कहने लगते हैं?

मैं इसका उत्तर देना नहीं चाहता था। क्योंकि मैं सोचता था देवानी से कोई ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये जो अत्यधिक गम्भीर हो।

अकस्मात् मधू की आँख खुल गयी। करवट लेते हुए उसकी दृष्टि मुझ पर आ पड़ी। झट आश्चर्य से उठकर बैठ गयी। बोली— अरे भैया तुम्हारी आँखों में यह आँसू कैसा?

कम्पस्वर बिना बदले मैंने कह दिया— 'कुछ नहीं [illegible] है। यों ही आ गया होगा। तू सो जा, अभी इलाहाबाद दूर है।

मैं क्या बतलाता उसको! कैसे बतलाता उसको कि मैं उन [illegible] को भी अपने पास नहीं रखता जो सामने आ पड़ने पर मेरा कार्यक्रम बिगाड़ा करते हैं! तभी मैंने बैसाखी की यह मोर-मुकुट अभी अभी ट्रेन के नीचे दी है—केवल इतना-सा वाक्य कहकर कि—

हे प्रभु, हम सब तेरी अबोध सन्तान हैं। कभी हमसे गलती न हो, समझ-समझकर कदम रखनेवालों के कठोर संयम को अमानवी कहना [illegible] क्षमा कर दे।

सच कहता हूँ, मैं ऐसा कदापि न करता, अगर बैसाखी मर [illegible] फाउण्टेनपेन को होठों से लगाकर उसका चुम्बन न लेती। मैं किसी को। आश्वासन नहीं देना चाहता और मैं किसी को मिथ्या भ्रम में डालना भी अपने लिए एक रोग मानता हूँ।

प्रातःकाल हो गया है और हम कानपुर स्टेशन पर पहुँच रहे हैं।

मधू ने कहा— तार मिल गया होगा तो मामी स्टेशन पर आ गई होंगी।

मैंने कह दिया— आना तो [illegible] ही है।

अब ज्यों ज्यों प्लेटफार्म पर गाड़ी आगे बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों प्रकार के व्यापारियों तथा कुलियों के शिरोभाग सामने से हटते जाते हैं। और टिक-टिक होती जाती है तो मैं अनुभव करता हूँ [illegible] करते से जा रहे हैं—पार जा रहे हैं!

कोलाहल के बीच में गाड़ी खड़ी हो गयी। मैं भी दरवाजे पर खड़ा हो गया। इतने में एक [illegible] और [illegible] लिए हुए प्रवेश करने लगा। उन्होंने

भाभी देख पड़ीं। मैंने झट से सामान रखवाया। पर कुन्नी को लिपटाकर क्या देखता हूँ कि मधू भाभी से लिपटकर सिसकियाँ भर रही है।

मैं भी भाभी के चरण छूने लगा तो उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा—"बस इतना ही——।"

तब मैंने उनकी आँखों के भीतर अपनी आँखें डालते हुए कह दिया—"नहीं-नहीं मेरा यह अधिकार तुम नहीं छीन सकोगी।"

उन्होंने झट अपना हाथ खींच लिया। मधू ने भी अपनी आँखें नीचे डालीं। फिर उसने भाभी का बिस्तर खोलकर बिछा दिया। कुन्नी को बिदा करते समय रेस्तराँ-ब्वाय से मैंने चार-पाँच कप चाय और तदनुसार टोस्ट का आर्डर दे दिया था। थोड़ी देर में वह चाय की ट्रे ले आया। भाभी चाय बनाने लगीं तब मैंने पूछा—"भाई साहब का कोई पत्र आया दिल्ली से? कब तक रहने का विचार है?"

इस पर उन्होंने सम्मुख दृष्टि स्थिर करके कुछ ऐसा संकेत किया कि फिर मैंने बात का रुख ही बदल दिया। कहा—"मुझसे तो कह रहे थे कि अभी कुछ दिन और रहेंगे।"

तब भाभी ने दृष्टि नीची किये हुए कह दिया—"पूरे महीने भर के लिए ठहर गये हैं। हो सकता है और भी दस-पाँच दिन अधिक लग जायें।"

मधू को कुछ मालूम न था। इसलिए उसने कह दिया—"मगर यह बात कितनी अजीब-सी लगती है कि तुमको वे यहीं छोड़ गये।"

चाय तैयार हो गयी थी। तब मेरी ओर बढ़ाती हुई भाभी बोलीं—"इसमें अजीब लगने की तो कोई बात है नहीं। इस वक्त उनको शरीर और मन से जिस तरह स्वास्थ्य और प्रसन्न रहने की आवश्यकता है उस तरह की कोई स्थिति घर साथ तो है नहीं। और यह तो अपनी तबीयत की बात है कि कभी मेरे साथ रहने में उन्हें सुख मिले और कभी अकेले रहने में।"

जिस स्थिति से मैं पहले से ही डर रहा था अब वही उपस्थित हो गयी। इसलिए जान-बूझकर मुझे विषय बदल देना पड़ा और मैंने कह दिया—"और कहो आजकल दुकानदारी कैसी चल रही है? सट्टे में कितना पैदा किया?"

मैंने कह दिया—"करना कुछ नहीं होगा। चुपचाप पड़ा रहने दो। बल्कि अच्छा हो ठीक तरह से पूरी सीट पर लिटा दो।

तब मधु ने उसके पैर पूरे फैला दिये। आरगंडी की मुलायम धानी साड़ी को भी यहां-वहां सम्हाल दिया। मुलायम कांच और सोने की मिली-जुली चूड़ियाँ न बजीं। बायां हाथ सीट के पटरे पर लटका-सा पड़ा था उसको वक्ष के निकट रख दिया।

इसके पश्चात् मधु बोली— यहां कोई डाक्टर मिल सकता इस समय तो कितना अच्छा होता?

मेरे मुंह से निकल गया— इससे भी अच्छा यह होता कि यहां भाभी को मूर्च्छा ही न आती। पर संसार में जो सबसे अच्छा और अपेक्षित है क्या वही सदा होता है? अक्सर मैं सोचा करता हूं मधु कि यह भी कितना अच्छा होता कि हम पैदा ही न होते!

दिल्ली से और एक दुर्घटना के आगमन का भय। इसी समय गाड़ी चल दी।

जान पड़ा मधु को मेरी बात पसन्द नहीं आयी। कुछ उदासीन होकर वह बोली— तुम्हारी कोई-कोई बात बड़ी कठोर हो जाती है भैया! तुम्हें इतना भी ध्यान नहीं रहता कि जिसके सामने तुम ऐसी बात कह रहे हो। दिल्ली में उस दिन तुमने वैशाली को तो जैसे पागल बना दिया था! घर भर में आगी-आगी फिरती थी। कहती थी— 'मैंने इतना सभ्य व्यक्ति अब तक नहीं देखा।'

मधु की इस बात का मेरे ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा। इसलिए मैंने कह दिया— वैशाली को हिस्टीरिया हो गया है। मुझे भय है कि यही हाल रहा तो वह कहीं पागल न हो जाय?

इसी समय भाभी ने एक ठंडी सांस ली। मधु बोली— सुनती हूं जिनका मन अति सुकुमार और अत्यधिक कोमल होता है उन्हीं को यह बीमारी अधिक होती है।

मेरे मुंह से निकल गया— अगर जल्दी ब्याह न हुआ, अगर उचित और स्वस्थ वर नहीं मिला—और अगर अभी से सम्हाला न गया तो सम्भव है वैशाली को भी ऐसे ही दिन देखना पड़ें!

गाड़ी यद्यपि सीटी दे रही थी पर चाल उसकी जरा भी धीमी नहीं पड़ी थी। डिब्बे में बैठे दो-तीन सज्जन मिलकर ताश खेल रहे थे। कभी-कभी उनके शब्द गानों के स्वर भाग पर अटकने की तरह अटक जाते थे—"मेरे पास गुलाम है जनाब।" उधर से उत्तर मिलता—"उसे मत्थे पर चिपका लीजिए—मेरे पास यह इक्का है पार्टनर!"

गाड़ी की गति अब धीमी हो गयी थी।

एक महाशय बोले—"अरे कुत्ता कट गया! वह पड़ा हुआ है!"—यह आया यह!

मैंने जो देखा तो मधु भी उसे देखने लगी। पर वह उसे देखती-देखती एकदम से कांप उठी। बोली—"हाय आगे के पैर फड़फड़ा रहा है! जान पड़ता है दम तोड़ रहा है!!"

वे महाशय कहने लगे—"ड्राइवर बेचारे ने स्पीड कम करने की तो बड़ी कोशिश की पर बचा नहीं सका!"

तब पता नहीं क्या सोचकर मधु बोली—"कहीं ऐसा न हो कि भाभी की मूर्छा टूटने में इतनी देर लग जाय कि इलाहाबाद स्टेशन पर साथ ले जाना ही एक समस्या बन जाय!"

मेरे मन में आया—जब भाभी का जीवन ही एक समस्या बन गया है तब एक इलाहाबाद स्टेशन क्या चीज है!

गाड़ी फिर तीव्र गति से चलने लगी और मैं सोचने लगा—उस दिन जब स्नेहा छोटी भाभी को मूर्छा आ गयी थी तो बड़ी भाभी रो पड़ी थीं। पर आज इन्हें कालरा भी हो जाय तो भी वे डिब्बा न छोड़ सकेंगी!

कान में कोई मुझे लगातार पूछ रहा है—उस दिन और इस दिन में भेद क्या है?

बहुत बड़ा भेद है। उस दिन वे उस आशा-किरण से सर्वथा निराश थीं, जो आज उनके जीवन में प्रभात बनकर उदय हो रही है। उस दिन सौत की सन्तान को वे अपनी मानने को तैयार थीं। पर आज तो उनको इतना भी सहन नहीं है कि वे इसे साथ भी रख सकें!

इसका कारण ?

कारण स्पष्ट है। उन्हें छोटी भाभी की मानवता पर विश्वास नहीं है। उन्हें उनके मातृत्व पर विश्वास नहीं है। और उन्हें उनकी आत्मीयता पर भी विश्वास नहीं है। कदाचित् वे सोचती हैं कि मेरी कुक्षि से किसी सन्तान के उत्पन्न होने से उन्हें जलन होगी। इसलिए कौन जाने कभी वे मेरा अहित ही कर बैठें। क्योंकि कुछ हो है तो व सौत ही !

इसी समय फतहपुर स्टेशन आ गया। गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी हो गयी। मैंने जो भाभी की ओर दृष्टि डाली तो कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे मन-ही-मन कुछ बुदबुदा रही हैं। तब मैंने मधु से कह दिया—"जरा सुनना तो मधु भाभी कुछ कह तो नहीं रही हैं ?

मधु ने कान भाभी के मुँह से लगा दिया।

इतने में ब्वाय ट्रे उठाने आ गया। मैंने कह दिया—'चाय का पानी ला। गरम-गरम तो पी ल थोड़ी-सी। अचानक इन भाभी को मूर्च्छा आ जाने के कारण चाय ज्यों-की-त्यों रक्खी रह गयी।

ब्वाय चाय की केतली उठाकर लिए जा ही रहा था कि दो सिपाही एक अधेड़ आदमी के हाथों में हथकड़ी डाले उसे पीछे की ओर ले जाते हुए देख पड़े। पास आ जाने पर मेरी दृष्टि जो उस पर स्थिर हुई तो यह देखकर आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि वह रामलाल था और उससे कुछ फासले पर पीछे-पीछे गिरिधर महाराज भरगमा-भरगमा चले आ रहे थे। जल्दी म मैं उनसे कुछ भी कह न सका। क्योंकि उसी समय भाभी आँखें खोलती हुई कहने लगी—"अरे ! मैं कहाँ हूँ ? तब मेरे मुँह से निकल गया—'तुम अभी तक स्वर्गलोक में थी पर अब तुम मर्त्यलोक में आ पहुँची हो !

उन्नीस

मेरे पास चलता हुआ दिखलाई पड़ सकता है। मथुरा वृन्दावन हरिद्वार, काशी, अयोध्या गया तथा पुरी के गगनचुम्बी मन्दिर चमकते हुए दिखलायी पड़

सकते हैं । तारागण और चन्द्र-सूर्य चलायमान हैं ही और पृथ्वी तो घूर्णशील मानी ही जाती है । तब अचल एक मानव-धर्म रह जाता है । और मानव-चेतना सदा गतिशील रही है । इसलिए मानव-धर्म भी अचल नहीं हो सकता । जीवन बदलेगा तो जीवन के मान भी बदलेंगे । इसके लिए हम क्या कर सकते हैं और कोई भी क्या कर सकता है ?

मन का भाव कई दिन हो गये । भाभी की तबीयत वैसी ही चल रही है । खाना पीना और साधारण रूप से हँसना-बोलना सब पूर्ववत् है । माँ आजकल पहले से कुछ अधिक प्रसन्न रहती हैं । किन्तु सुनता हूँ लाला जी की तबीयत ठीक नहीं है । बाहर निकलना बन्द है । जो मिलने का काम है उसमें मिलना भी बन्द है ।

यह संवाद मेरे लिये नया है । इसलिये विवश होकर मुझे उनसे मिलने को जाना ही पड़ा । वही पुराना नौकर है । देखते ही मुझे पहचान गया । मैंने पूछा—"लालाजी की तबीयत तो ठीक है ?

वह बोला—"ठीक नहीं है सरकार ।

"ज्वर आता है ?

"नहीं ज्वर तो नहीं आता । मगर ।

"क्या उभर आया है ? साँस फूलती है ऊपर का उठती है—नींद उनकी कम है ?

"नहीं ऐसी कोई बात नहीं है । फिर भी ।

"फिर भी चुपचाप पड़े-पड़े कुछ सोचा करते हैं ?

"जी ।

"घर से नहीं निकलते

"जी ।"

"किसीसे मिलते भी नहीं ?

"जी ।

"पूछ आओ मुझसे मिलना पसन्द करेंगे ?

नौकर अन्दर चला गया। मैं सोचने लगा—अवश्य कोई घटना ऐसी हो गयी है जिसका प्रभाव उनके मन पर से हट नहीं रहा है।

शीशे के ऊपर जो दरवाजा है वहीं खड़ा था। उसके कोने में चींटियों की सेना नीचे से ऊपर जा रही थी। जानेवाली चींटियों की संख्या अधिक थी लौटने वालियों की कम। तब मैं सोचने लगा—हो सकता है कि इस जानेवाली सेना को भी लौटना ही पड़े। पर क्या यह बात इस सेना के नेता को नहीं सुझायी देती?

कोई कह रहा है मुझ से—इस जाति को भगवान् ने इतनी बुद्धि नहीं दी।

और तभी मैं सोचने लगा—मनुष्य जाति में भी ऐसी चींटियों की कमी नहीं है।

इतने में नौकर ने आकर कहा—"चलिये। आपको बुला रहे हैं सरकार।

पहले चुपचाप मैं देखना चाहता था लालाजी को। पर यह तो सम्भव था नहीं। तब सिंहावलोकन ही सही। इसलिए दरवाजे पर क्षण भर रुक गया। देखा फर्श पर एक कम्बल पड़ा है। पलंग पर लेटे हुए हैं। मुंह खुला है और दाढ़ी बढ़ी हुई है। हुक्के की निगाली का सिरा ऊपर की ओर है। पीकदान नीचे रक्खा है। कमरा साफ है। मगर कलैंडर में तेरह दिसम्बर की तारीख लगी है और आज अभी नवम्बर की उन्नीस तारीख चल रही है। वाह! प्रगतिशीलता इससे बढ़कर और क्या हो सकती है!

यकायक द्वार पर खड़ा देखकर लालाजी उठकर बैठ गये। नौकर ने सिरहाने दो तकियों का सहारा लगा दिया। तभी लालाजी बोले—"कुरसी साफ नहीं की थी?

नौकर ने कन्धे पर रक्खे गमछे से उस पर पड़ी धूल पोंछ दी।

उसी वक्त सड़क पर किसी ने आवाज लगाई—"कपड़े का टुकड़ा न दे सको तो कफन ही दे दो।

लालाजी अनमने से बोले—"आओ न?

मैं जैसे ही कुरसी पर बैठा वैसे ही लालाजी नौकर से बोले—"देखो, पानदान? तश्तरी में पान-इलायची रख आओ और दरवाजा बन्द करके बाहर बैठो। जब तक मैं न बुलाऊँ, तब तक कोई आने न पाये। बस जा

नहीं समझा। अब पता लगाकर लिखूँगा कि ये रायहम साहब कौन हैं और कहाँ रहते हैं। साथ ही यह भी कि जनता वहाँ किस तरह रहती है।

इतना कहकर लालाजी ने सबसे नीचेवाली तकिया के नीचे से एक लिफाफा निकालकर मेरी तरफ बढ़ा दिया। मैंने उसे खोलकर देखा, सचमुच पोस्टकार्ड साथ में एक मज़मून में उसमें यही सब लिखा था।

मैंने पत्र लौटाते हुए कह दिया— 'सवाल वास्तव में चिन्ताजनक है। अब यह बताइए कि आप चाहते क्या हैं?'

लालाजी बोले— 'अब मेरे चाहने-न चाहने का सवाल ही नहीं रह गया! आसपास की सारी इज़्ज़त धूल में मिल चुकी। मैंने भी समझ लिया—जनता मर गयी।'

अब मुझे कह देना पड़ा— 'पर अभी आपको एक बात और समझना बाकी है। वह यह कि ये रायहम साहब और कोई नहीं, वही मुरलीबाबू हैं तीस-सौ वेतनवाले मामले में उस दिन जिनकी आपने वकालत की थी।'

तब लालाजी कड़कीली आवाज़ से बोल उठे— 'क्या कहा?'

"यही कि रायहम और मुरलीबाबू एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। मैंने उस दिन भी आप से नहीं कहा था और आज भी मैं विनयपूर्वक आप से यही कहना चाहता हूँ कि सेवा केवल उस व्यक्ति के लिए कल्याणमयी हो सकती है, जो अपने प्रति ईमानदार और निष्ठावान हो। पर उस व्यक्ति के लिए सेवा विष है, जिसे यह अनुभव करने का अवसर ही नहीं मिला कि विश्वासघात की पीड़ा कितनी मर्मान्तक होती है, जो यह जान ही नहीं सका कि अवहेलना का आत्मीय आघात किसी निरपराध इंसान के लिए कब प्राणघातक नहीं होता।

इतना कहकर मैं ज़रा रुक गया। तब लालाजी ने तकियों का सहारा छोड़ दिया—"तुम कहते जाओ आज। इसकी परवा मत करो कि मैं विरोध रखता या समर्थन।

तब मैं फिर बोलने लगा। मैंने कहा—"मुरलीबाबू जैसे लम्पट और आवारे आज हमारे देश में घर-घर पैदा हो गये हैं। जिसे पेट भर अन्न नहीं मिलता वह तो भूखा है ही, जिन बच्चों के लिए दूध की बात के पैसे भी नहीं जुटते वह तो मरा है ही। पर तृष्णा और अतृप्ति के नाम पर आज तो फैक्टरी का वह

मालिक भी भूखा बनता है। व्यावसायिक संबंध में अवसर हासिल के लिए जिसके पास नयी और अपटूडेट मार्तिनें नहीं हैं। मैंने तो एक प्रोफेसर को एक कवि साहित्यकार से यहां तक कहते हुए सुना है कि आपका खर्चा ही कितना है जो आपको अधिक पैसों की आवश्यकता हो। पैसों की आवश्यकता तो मुझे है जिसके होटलों का बिल महीने में तीन-चार सौ हो जाता है। अब मैं आप से पूछता हूं कि तृप्ति और अतृप्ति का माप भी आप कुछ रखेंगे या सब को हर समय यह कहने की छूट दे देंगे कि मैं भूखा हूं, मैं प्यासा हूं, मैं नंगा हूं, मैं असन्तुष्ट हूं जीवन से—जिन्दगी मेरे लिए मौत की मंजिल है?"

लालाजी बोल उठे—"मैं तुम्हारी बात समझ रहा हूं राजेन्द्र। लेकिन मैं अपनी जमना पर कैसे अविश्वास करूं! अगर उसको कोई कष्ट नहीं था तो वह मुरली बाबू के साथ भागी क्यों?

तब मुझे कहना पड़ा—"ठीक है, मैं मानता हूं कि जमना को अपने पति के यहां कष्ट होगा। पर मुझे यह जानने की भी आवश्यकता है कि उस कष्ट में [illegible] कितनी और किस मात्रा में थी और कल्पना की उड़ान किस मात्रा में। मैं तो अब साफ-ही-साफ कहना चाहता हूं कि उसको भगा देने को उन्हीं प्रवृत्तियों ने विवश किया जो सृजनात्मक नहीं, संहारात्मक हैं—जो संघर्ष के उस स्वरूप पर विश्वास करती हैं जो गहन कान्तार की भांति रात-दिन जलता ही रहता है। जरा सोचिए तो सही, किशोरीलाल की स्त्री मर गयी, तो उसने झट से दूसरा ब्याह कर लिया। पर कुन्ती विधवा हो गयी तो उसे जहर क्यों न पिलाया जाय! —मनोहर की नौकरी छूट गयी इसलिए वह भूखा है बेचारा। चोरी न करे तो और करे क्या? शिवशंकरलाल की स्त्री सुन्दर नहीं है। बेचारा तभी तो पड़ोस की युवती कन्या को लेकर भाग गया है।—क्षमा कीजिएगा अगर मैं कहूं कि ऐसी भी तो स्थिति हो सकती है कि तीन-चार सन्तान हो जाने पर भी कोई स्त्री यह कहने लगे कि मेरा पति तो शुरू से ही नपुंसक था! बतलाइए न मुझे अतृप्ति की क्या परिभाषा आप बनाना चाहते हैं?

नौकर ने आकर इसी समय लालाजी के हुक्के की चिलम बदल दी। तब झट से हुक्का गुड़गुड़ाते हुए लालाजी बोले—"तुम कहते जाओ। आज जो भी

तुम्हें कहना हो। मुझे कुछ कहना नहीं है। और मैं देखने लगा उनके मुंह का वह पका भी न लब-लब पर दोनों ओर से निकलते आ रहे थे।

तब मैं फिर बोल उठा। मैंने कहा—'आपको मालूम होना चाहिये कि मेरे एक मौसेरे भाई हैं बंसीधरजी। घर के बड़े अमीर और पुश्त-दर-पुश्त से मौरूसी हैं। उनको शिकायत थी कि उनकी गृहिणी के शरीर में ही कुछ ऐसा अभाव है जिससे वे संतान से वंचित हैं। और बस इसी बात पर उन्होंने झट से दूसरा ब्याह कर डाला। परन्तु आप तो जानते हैं प्रकृति के खेल को। दूसरी भाभी को आये पहली भाभी ने भी अपना नक्शा बदल दिया। फल यह हुआ कि दूसरी भाभी को अभी तक कोई सन्तान नहीं हुई पर पहली की गोदी भरी जा रही है! अब आप ही बतलाइए दूसरी भाभी के लिए आपका क्या सन्देश है? बहुत होगा तो आप यही कहेंगे कि उनको भी अन्यत्र आश्रय खोज लेना चाहिए। लेकिन मैं कहता हूं जिसके संस्कार ऐसे नहीं हैं वह क्या करे? अब क्या मैं आप से यह दरख्वास्त करूं कि कल ही अगर दूसरी भाभी के जीवन को कुछ हो जाय तो उस हत्या का उत्तरदायित्व क्या भाई साहब पर न होगा? पर जो भी घटनाएं नैतिक पतन की हों सब के लिए आप एक जीवन-दर्शन तैयार रखिये और कहते जाइए कि हां ऐसा तो होता है। इन स्थितियों में ऐसा ही स्वाभाविक है। तब मैं विनम्र शब्दों में यह कहूंगा—यह स्वाभाविक नहीं विकार-ग्रस्त है मानवीय नहीं पाशविक है सांस्कृतिक नहीं वन्य है। अस्तु आज हमारे समाज की जैसी स्थिति है उसमें उद्धार का एक ही मार्ग है—नैतिक मानों का निर्वाह। मैं तो कहता हूं यह [illegible] नहीं परले दरजे की कायरता है बुजदिली है जो काला बाजार और घूसखोरी बन्द नहीं हो रही है! हमारी आजादी के गौरव के साथ एक भद्दा मजाक है यह! देश के अभ्युदय के विरुद्ध चरित्रहीन सफेदपोशों का एक संगठित षड्यंत्र है यह!

अब लालाजी ने हुक्के की निगाली को अलग मोड़ दिया और पुकारा—ओ जमादार।

उत्तर मिला—'जी सरकार।

लालाजी बोले—"अरे नाई को तो बुला लाना। मैं हजामत बनवाना चाहता हूं सबसे पहले।

मूठहिं माजन मूठ चबना ! गोस्वामी जी ने इसी साम्प्रदायिक देशभक्ति का कदमचार पहले से लिख दिया था ! वे कितने बड़े भविष्य-द्रष्टा थे !

इतने में दाढ़ी की एक कील फट गयी और खून आ गया थोड़ा-सा।

मामी अब मेरे पास आकर थर्मामीटर दिखलाने लगी।

मैंने कह दिया— 'सिग्मालव प्वाइंट पोर निश्चयपूर्वक इरादा है।

अब भामी मधू की सिकाई देखकर बोली— 'ठीक है। बस ऐसी ही नोंक ऐसा ही फैलाव अच्छा लगता है।

झट उनकी इस बात पर मेरा ध्यान आकृष्ट हो गया और उसी क्षण मेरी दृष्टि मामी की चितवन से जा मिली।

मधू बोली— जाती हूं। अम्मा कहती हैं—आज करायल बनवा दो पकौड़ी बनानी है। चाय के साथ थोड़ी खाओगी न मामी ? मधू गरम-गरम !

मेरे मुंह से निकल गया— 'मक्खन से सककर भेजना इनको। और बेल दही में डालने से पहले पानी में छोड़ देना जिससे उनकी गरमी शान्त हो जाय।

मधू हंसने लगी बाहर जाती हुई बोली—"लो और सुनो अब पाकशास्त्र भी मुझे भैया से पढ़ना पड़ेगा !

इस पर मामी का भी जी न माना। बोली— भैया की बात ही अजब है। संसार की हर एक बात का इलेषात्मक भाव निकालकर मन-ही-मन मिश्री घोल-घोलकर पीना और मौन रहकर अपने को अशोकस्तम्भवत् थिर स्थिर व्यक्त करना कोई उनसे सहज ही सीख सकता है।

तब तक श्रविंग समाप्त करके मैं चिट्ठी पढ़ने लगा था। वह इस प्रकार थी —

दीक्षित-निवास
करोल बाग दिल्ली
ता २८-११-५

मेरे मन के देवता

आशा है आप प्रसन्न होंगे और पूर्ववत् आपका प्रवचन चल रहा होगा। कविता तो इसे क्या कहूं कुछ पंक्तियां लिखी हैं जिनमें श्रवण के उन मनोभावों

कि यह धवल भी इन स्वरों का
सुनना जानता है
जो प्राणों के पंख फड़फड़ाते जब
तुम्हारे अबाध कंठ से फूटे थे !
न मेरे—धवल के—भी स्वर थे पंछी
और न निखिल मानवी समृति के भी
स्वर थे पंछी !
तुम आशा पंछी !

देवता हूँ बैशाखी की इन पंक्तियों में कवित्व का परिपाक तो नहीं है पर कल्पना की आधार-भूमि कवित्वपूर्ण अवश्य है। लेकिन मुझ को उसने यह 'मन के देवता' सम्बोधन लिख दिया है इसमें कितना प्रमाद है। देवता तो किसी भक्त की श्रद्धा-भेंट को अस्वीकार नहीं कर सकते। भेंट की उत्तमता चाहे किस कोटि की हो। उसमें देवता की अपनी रुचि-अरुचि का प्रश्न ही नहीं उठता। उसमें तो भक्त की सामर्थ्य और अर्चना प्रणाली की हार्दिकता ही मुख्य मानी जाती है।

लेकिन यहाँ स्थिति बिल्कुल दूसरी है। यहाँ तो आपादमस्तक में पूरी तरह बंधा हुआ मेरा यह सर्वथा भौतिक शरीर है। यहाँ इस शरीर के अन्दर मन नाम की जो वस्तु है उसमें रुचियों और अरुचियों में स्पष्ट अर्थान्तर है। यहाँ सीमाओं की ग्रन्थियाँ और उनमें आदर्शों के तुलनात्मक प्रतिबन्ध हैं। यहाँ इतनी स्वतंत्रता ही नहीं है कि क्षण भर के लिए यह सोच सकूँ—हाँ मैं तुमको भी स्वीकार करता हूँ। यहाँ संस्कारों और मान्यताओं में जकड़ा हुआ मानव सर्वथा सीमित, संकुचित और मर्यादित है।

मानता हूँ कि मेरी यह दयनीय स्थिति है। परन्तु इस स्थिति से परे भी मैं कुछ हूँ। मैं यहाँ कठोर हूँ केवल वहाँ पत्थर हूँ। किन्तु ऐसे भी स्थल हैं जहाँ मेरी स्थिति उस पत्ती की-सी है जो स्पर्श-मात्र से शरमा जाती है। मैं प्यार केवल ले ही नहीं सकता दे भी सकता हूँ। मैं बैशाखी को प्यार करता हूँ। मैं चाहता हूँ उसका जीवन फले और वह सुखी रहे। मैं उसे आशा सन्तोष और शान्ति की निधियाँ संसार भर से बटोर-बटोरकर देना चाहता हूँ। मैं उसके दीर्घजीवन के लिए अपना

तब मने कह दिया—'मेरा तार मिलने पर तुम फौरन जो चल पड़ी हो, यह सोचकर मुझे अब चिन्ता हो उठी है। बल्कि कभी-कभी तो यह भी आता है कि तुमको बुलाकर एक तरह से मन अंबामिक गलती की है।

'इस विषय में तुम्हें जरा भी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। को अलमारी से लेकर सामने टेबिल पर रखती हुई भाभी बोलीं—'तार हमको आठ बजकर बीस मिनट पर मिला था और नौ बजे मैंने ट्रंक काल करके उनसे बातें कर ली थी। उस समय अन्य बातों के साथ-साथ उन्होंने यह भी कहा था—'तुम्हारी जीजी कह रही है कि जब ऐसी तबीअत खराब है तो यहीं क्यों नहीं आती? इस पर मैंने सिर्फ इतना कह दिया था कि ऐसा ही था तो चलते समय क्या वे मुझे साथ नहीं ला सकती थीं? इसका उत्तर बिल्कुल सीधे तौर से न देकर उन्होंने कहा था—इस विषय को इस तरह सोचकर तुम अपनी जीजी के साथ ही नहीं अपने साथ भी अन्याय कर रही हो। क्योंकि तुम स्वतः भी तो कह सकती थीं—मैं भी चलूंगी जीजी। इतनी बड़ी कोठी में मुझसे किसी तरह रहा नहीं जायगा। तब जानते हो मैंने इसका क्या उत्तर दिया था?

इतना कहकर भाभी दर्पण को टेबिल पर मुख के बल लिटाकर मेरी ओर व्यथापूर्ण दृष्टि से देखने लगीं।

मैंने कह दिया—'बतलाओगी न?

वे बोलीं—मैंने कह दिया—इन बातों में कुछ दम नहीं है। दो मास पूर्व से मासिक न होने पर भी तीन दिन तक विधिवत् वे जब उसका अभिनय करती रहीं तभी मैं जान गयी थी कि अब मेरी स्थिति क्या है। मेरी इस बात को सुनकर वे एकदम सन्न रह गये! तब अन्य उपाय न देखकर कहने लगे—और जो भी हो! मुझे तुम्हारी उच्चशिक्षा और सभ्यता पर अभिमान है। इसलिए आशा है कि एक साधारण मानवी दुर्बलता समझकर तुम इसका कुछ बुरा न मानोगी।—मौसी के यहाँ जाना चाहो तो चली जाओ पर बहुत परहेज से रहना। इस बार कानपुर आने पर मैं सबसे पहले डाक्टर भाटिया से मिलकर तुम्हारे विधिवत् इलाज का प्रबन्ध करूंगा।

देखता हूं भाई साहब की इस बातचीत में छोटी भाभी के प्रति उनकी हार्दिकता अब भी पूर्ववत् है। अर्थात् उनकी ओर से इन पर अन्याय ही हो रहा है।

ऐसी कोई बात नहीं है। तब कहना होगा कि भाई साहब काफी व्यावहारिक व्यक्ति हैं। यद्यपि मुझे उनसे कभी कोई काम पड़ा नहीं है। तब उनसे बिना लिए बिना मैं चला आया क्या यह मेरी भूल नहीं है?

सोचता हूँ बड़ी-छोटी भाभियों के इस संबंध में मेरा काम कहीं पक्षपात पूर्ण तो नहीं हो रहा? यह तो स्पष्ट ही है कि बड़ी भाभी की शिक्षा-दीक्षा उनकी संस्कार-शीलता बहुत उच्च नहीं है। यह भी सही है कि वे कपटाचार में बड़ी निपुण हैं। पर प्रश्न यह है कि मेरे साथ तो उनका व्यवहार बड़ा मधुर है। जिस आत्मीयता के साथ उन्होंने मेरा सत्कार किया उसके सम्मुख मैं नतमस्तक हूँ। फिर मैंने माधवी को उनके यहाँ से लाने की बात पर जो ध्यान नहीं दिया इसका कारण? इसका कारण है छोटी भाभी। बड़ी भाभी ने इनके साथ क्यों छल-छंद किया? और उनके साथ किया तो मेरे साथ किया।

अच्छा यह मैं क्यों कहता हूँ कि उन्होंने इनके साथ किया तो मेरे साथ किया? क्या इसका यह अर्थ नहीं कि इनको मैं अपनी निधि मानने लगा हूँ। अपनी मानों का स्वर अपने हृदय की धड़कन अपने अन्तस्तल का मर्म अपना सब कुछ।—लेकिन इसका मुझे अधिकार भी है? मुझे पूरा अधिकार है। मैं प्रत्येक पीड़ित मानव के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख मानता हूँ। उसकी लाज उसकी मर्यादाशीलता उसकी हिचकिचाहट उसकी मर्यादा—सब कुछ मेरी है। मेरा यह अधिकार कोई छीन नहीं सकता। मानता हूँ है यह पक्षपात। मानता हूँ मैं पक्षपाती हूँ। पर किसके लिए? इस अखिल मानव-सृष्टि के उस वर्ग के लिए, जो अत्याचार-पीड़ित है। मैं सदा उस वर्ग का पक्ष करूँगा जो दीन-दुःखी और असहाय है। मैं इस विषय पर कभी समझौता न करूँगा।

स्नान करके मैं लौटा ही था कि मधू से मूंग की गरम-गरम पकौड़ियाँ और चाय मिलवा था। भाभी की पकौड़िया दही में डूबी हुई थी। इसपर मैंने पूछा—"पकौड़िया कहीं तो नहीं है? जरा एक दो बनाकर इन्हीं तो।

सुनकर भाभी मुसकराती। बोलीं—यह काम मुझसे न होगा।

मैंने कह दिया—"अच्छा यह बात है! तब मुझे अभी डाक्टर मिश्रा के यहाँ जाना पड़ेगा। मैं कोई जोखिम नहीं लेना चाहता। तुम्हारे पैर पड़ता हूँ भाभी तुम ये पकौड़िया मत खाओ। देखो कहा मान जाओ।

उन्होंने बिना किसी आपत्ति के चुपचाप पकौड़ीवाली प्लेट मेरी ओर बढ़ा दिया। फिर वे प्याले में चाय डालने लगीं। वही बाकी पकौड़ियाँ खाते-खाते मैंने अनुभव किया मधू ने उन्हें काफी मिलाकर वही में छोड़ा है। तब मैंने वही प्लेट फिर भाभी की ओर बढ़ाकर कह दिया—"मेरे विचार से तुम्हारे खाने लायक हो गयी है।

भाभी ने नीचा मुह किये हुए दोनों पलकों के किनारे एकमात्र मुझ पर डालते-डालते कह दिया—"अब मैं कैसे ग्रहण कर सकती हूं?" और इतना कहते-कहते सलोना मन्द-मन्द हास भी फूट पड़ा उनकी मुसकान से।

मुझे उस घटना का स्मरण हो आया जब रामदास मधू के ब्याह में सुहाग रात हो जाने पर अकस्मात् आ गया था और उसको खाना खिलाने के प्रसंग में भाभी की और मेरी अपमानजनक गालियाँ ही बदल गयी थीं। अतएव मैंने कह दिया—"एक तो मन केवल एक ही बार करता है, दूसरे तुम्हारे लिए यह कोई नयी बात भी नहीं है।

वे कुरसी से उठकर खड़ी हो गयीं। फिर चाय के प्याले को मेरी ओर बढ़ाती हुई बोलीं—'वह बात दूसरी थी। अज्ञान में जो भूलें हो जाती हैं उनका विशेष महत्त्व नहीं होता।

मैंने पहला घूट कण्ठगत करते-करते जोर देकर कहा—'बैठो-बैठो।

वे बोलीं—बढ़ियाँ तो अभी बचा रक्खी होंगी मधू ने। मैं दूसरी प्लेट भेज देने के लिए कहे देती हूँ।

मुझे कहना पड़ा—'नहीं चाय की गरमाहट के साथ इस तरह की एकदम ठंडी चीज मैं लिया नहीं करता। इसलिए तुम ये बढ़िया सहर्ष ग्रहण कर सकती हो।—और, भूल तो सदा अज्ञान में ही होती है। फिर मैंने चाय का प्याला उठा लिया। वे इस बार कुरसी पर न बैठकर समेटे हुए बिस्तर के सहारे पलंग पर लेट रहीं। कुछ बोलीं नहीं और क्षण भर के लिए उनके पलक भी बन्द हो गये। यह दशा देखकर मैं घबरा गया। कुरसी से झट उठा और यह देखने के लिये कि कहीं मूर्च्छा तो नहीं आ गयी उनके निकट पहुंचते ही बोला— भाभी?

उन्होंने तुरन्त आँखें खोल दीं। कमलनयनों से थोड़ी मुसकरायी भी। फिर बोलीं— डर गये न क्या?

मैंने स्वीकार करते हुए कह दिया—'सचमुच भाभी मैं तुमसे अब बहुत डरने लगा हूँ।

"क्यों ?

"यह मत पूछो। —कहते-कहते मुझे एक कविता की कुछ पंक्तियाँ याद हो आयीं और मैंने कह दिया—

जग आज कहे है कि मैं किसी चमन का कभी एक अंकुर था।
कल तक न कहें कि मन किसी कभी को छुआ हो किसी उर्वशी का॥

तब वे जैसे अपनी सारी तरुणाई प्रश्न के एक ही प्रकार में भरकर बोली—"यह बात तुम मेरे सामने कर रहे हो ?

मैंने भी दृढ़तापूर्वक कह दिया—'हाँ तुम्हारे सामने अपनी माँ के सामने अपनी मधु अर्चना और वैशाली बहना के सामने। इतना ही नहीं उस काली और हीरामानिक के सामने भी सहर्ष कहने को तैयार हूँ जिन्होंने आज मेरे मन के तारों में झंकारें उत्पन्न की हैं।

तब भाभी तुरन्त उठ बैठीं और उसी कुरसी पर आकर चुपचाप बड़ियाँ खाती-खाती बोलीं—"इधर कई दिन से मैं अपनी मृत्यु की कामना करने लगी थी। पर अब मैं जीना चाहती हूँ! और भाभी के समक्ष मौन बैठा चाय पीता हुआ मैं समझ रहा हूँ कि उसके इस कथन के अन्दर समर्पण की कितनी बड़ी पूर्णता है ?

प्रातःकाल होने से एक घंटा पूर्व आज जो सूनी सी विभाजनवाली लकड़ी की आड़ और उसी दीवाल के ऊपरी भाग में भाभी के कमरे में रोशनी दिखलायी पड़ी। तुरन्त मैंने पुकारा—"भाभी ?

उत्तर मिला—'हाँ।

"क्यों, क्या बात है ?

बात-बात कहीं कुछ नहीं है। मैं नित्यक्रिया से निपटकर तैयार हूँ। तुम भी तुरन्त तैयार हो जाओ। घूमने चलेंगे। डाक्टर मिसरा की भी यही राय रही है कि कुछ मसरौंवाली सड़कों और वाटिकाओं में सबेरे घूमना लाभदायक होगा।

मने बरा अंगड़ाई लेते और आलस्य प्रकट करते हुए कहा—"ऐसा ही था तो कल से बतला देना था। क्योंकि अब इतनी जल्दी तयार हो जाना तो मेरे लिए दुष्कर है।

देखो गड़बड़ करोगे तो ठीक न होगा। फौरन तैयार हो जाओ। लाली ऊपर आ गयी है और चाय का पानी गरम हो रहा है।

भाभी का इतना कहना था कि मुझे उर्दू की एक पंक्ति का स्मरण हो आया— 'हुस्न इक ख्वाबे नाज है जिसके चौंक पड़ने को इश्क कहते हैं।

× × ×

अब हम आजादपार्क में नित्य प्रात घूमने जाने लगे। यहीं हीरा मीलम से भाभी का भी परिचय हो गया।

आज का दिन मुझे बहुत जंच रहा है। और इसका कारण यह है कि मेरे चारों ओर सौन्दर्य सौरभ और हास-परिहास लहराता हुआ देख पड़ता है। गुलाब के फूल की कुछ पखड़ियों को धूल से उठाती हुई भाभी कह रही है— जो पखड़ियाँ भूमि पर गिर जाती है उनका अभाव कौन मिटा सकता है?

अध्ययनशील हीरामानिक ने झट अपनी पुस्तक बन्द कर ली। फिर भाभी की ओर क्षण भर ध्यान से देखती-देखती बोली— 'उनके दुःख को यह धरती अपने वक्ष से लगाकर कितनी प्रसन्न होती है आपने कभी सोचा है? कभी विचार किया है कि बिखरे और धूल में मिले हुए सौन्दर्य को अपनी बाहों में भरकर ही यह प्रकृति जाड़ा-गरमी आंधी-पानी तुहिन-तुषार और हिम-उपलों की वृष्टि करती है।

और नीलम दौड़ती हुई भाभी के पास आकर कहने लगी— देखिये भाभी अब आप कानपुर जाने का नाम भी न लीजिएगा। भाई साहब आवें तो उनको मेरे पास भेज दीजियेगा। मैं उनको यों राजी कर लूंगी यों। और चुटकी बजाकर अपने कथन को उसने एक रूप भी दे दिया।

भाभी हंस पड़ी और बोली— 'ऐसा कैसे हो सकता है नीलम? जाना तो पड़ेगा ही।

"अच्छा जाने से पहले क्या एक बार आप हमारे यहाँ आने की कृपा न करेंगी? डैडी से कहकर आपका एक फोटोग्राफ लेना चाहती हूँ।" हीरा ने कह दिया।

"लेकिन मैं इससे भी अच्छा एक प्रस्ताव आपसे करूँगा।"

"तो उसमें पूछने की क्या बात है?"

"कल इसका जन्मदिन है। आप लोग हमारे यहाँ आने की कृपा करें।"

हीरा चुप रह गयी। फिर सिर नीचा कर नखों को देखती कुछ सोचती हुई बोली—"डैडी से पूछना पड़ेगा।" फिर होंठों को विकास के मोड़ पर लाकर कह दिया—"मैं पूरी कोशिश करूँगी।"

नीलम बोली—"हमको हर काम के लिए पहले सोचना और फिर कोशिश करना पड़ता है। लेकिन मुझे किसी चीज को सोचने में गाड़ी के डिरेल-मेंट हो जाने का-सा डर लगता है। आपकी क्या राय है?"

मुझे उसकी इस बात को सुनकर बैसाखी की याद हो आयी।

धूप चढ़ आयी थी। इसलिए गरम मुलायम जेस्टर को उतारती और बेंच पर इधर उधर बिखरती साड़ी सम्हालती हुई भाभी बोली—"राय देने का काम अब मैंने छोड़ दिया है। अब तो मैं आदेश देने के पक्ष में आ गयी हूँ। इसलिए मिस हीरा चाहे जिस तरह आओ मगर कल आओ जरूर।"

बेंच से उठकर हीरा बोली—"अच्छी बात है, आ जाऊँगी। हो सका तो अपने कैमरामैन को भी साथ लेती आऊँगी।"

तदनन्तर मुस्कान-संसद की बैठक समाप्त हो गयी और हमलोग अपने अपने स्थान को चल दिये।

कैनिंग रोड के चौराहे पर ताँगा आ गया था। हम उस पर सवार हो गये।

भाभी बोली—"मैं आज तक तुमको समझ नहीं पायी।"

मैंने कह दिया—"समझ तो जाती पर कुछ ऐसी बात है कि मैं समझाना चाहता नहीं।"

भाभी आश्चर्यान्वित होकर कहने लगी—"मैं चाहने-न-चाहने पर अब तक विश्वास करने लगी हूँ।

सिर उठाकर चश्मे के भीतर से झांकती हुई वैशाखी बोली—"आकस्मिक मिलन की बात ही और है। पत्र या तार से सूचना देकर आने में मुझ तो कोई चार्म जान नहीं पड़ता।

भाभी अब थोड़ी स्वस्थ हो चुकी थी। उन्होंने भी दोनों का चरण स्पर्श कर कहा— 'अहो भाग्य कि मुझे भी दर्शन मिल गये। फिर वैशाखी को छाती से लिपटाकर उसका प्यार करती हुई बोली— 'इस हरिणी को आप खूब ले आये।

सब लोगों को ऊपर भेजकर मैं पीछे से चढ़ ही रहा था कि रास्ते के एक कोने में चुपचाप खड़ी लाली बोली—"मेरी एक बात सुनोगे भैया?

आश्चर्य से उसकी ओर देखते हुए मैंने कह दिया— 'अब मैं तुम्हारी हर एक बात सुन सकता हूँ लाली।

'देखो भैया हर एक बात कहनेवाली लाली तो मर गयी। अब तो वही लाली बची है जो गिनी-चुनी दो बातें ही कर सकती है सो भी तब जब तुम्हें हो। और मुझे कहना यह है कि अब मैं पढ़ना चाहती हूँ। किसी विद्यालय में भरती करवा दो मुझे।

यों भी ऐसे कामों में देर-दार करने की मेरी आदत नहीं है। फिर लाली का अनुरोध! अतः मेरे मुंह से निकल गया— 'तो झट से तैयार हो जाओ बस दस मिनट में मैं साथ चलता हूँ।

सड़क पर देखा तांगेवाला जा ही रहा था। तब मैंने कह दिया—"जरा इस तांगे वाले को रोक लेना लाली।

ऊपर पहुंचते ही देखता हूँ मां प्रसन्नता के मारे फूली-फूली फिरती हुई दीक्षितजी से कह रही हैं— 'तुमने यह बहुत अच्छा किया बेटा कि वैशाखी बिटिया को भी मुझे दिखला दिया। देखो तो भगवान् ने बिल्कुल पारवती की-सी सूरत-मूरत दी है! अरी चंदिया एक थाल तो ले आ! मैं खुद अपने हाथों से बिटिया के पैर पखारूँगी।

जब थाल और बाल्टी भर पानी आ गया और वैशाखी को कुरसी पर बैठाकर मां उसके पैर धोने को तत्पर हुईं तभी दीक्षितजी आ गये और अंग्रेजी में बोले— 'देख वैशाखी तू माताजी से अपने पैर-वैर मत धुलवाना। और अगर

होकर बैठ जाय तो मैं तो तैयार हो नहीं सकता ! मैं मर जाऊंगा पर भाभी + मर्यादा की रक्षा मेरे मन का कफन तक करेगा ! मैं मर जाऊंगी पर कभी २ चाहूंगी कि कोई मुझे एक शब्द कहने का साहस करे ! पर अब आज से स्वप्ना का राज्य भटना प्रारम्भ हो गया! मां ने ऐसी बात कह दी है जिसको मैं न कर पाऊंगा । मैं चाहूंगा कि भाभी जितनी जल्दी हो सके कानपुर लौट जायें। कानपुर न लौटें तो दिल्ली चली जायें। मैं अब उनके बीच में नहीं पड़ता। रह गयी काली सो उसको भी साथ लेकर मैं बाहर नहीं निकलूंगा। मां ने ठीक कहा है कि सब लोग उनकी तरह मेरी मां तो हैं नहीं। मतलब यह कि दुनिया या कहेगी मुझे मानना ही होगा उसको। मैं जो कहूंगा उसे दुनिया मान चाहे न माने। मैं सत्य चाहे जितना बोलूं दुनिया उस पर विश्वास न करेगी। दुनिया जिसको सत्य कहेगी मुझ उस पर विश्वास करना पड़ेगा। आज दुनिया ने मेरे ऊपर अंगुली उठायी है। अच्छी बात है मैं दुनिया के अगुलि-निर्देश पर चलना स्वीकार करता हूं।

मैंने तुरन्त कह दिया— अच्छी बात है। मैं भाभी से कह दूंगा मुझे अवकाश नहीं है।

ना रे राजेन तू मेरी बात समझा नहीं। तौलिया लेकर उठती हुई मां कहने लगी— 'मैं उनके काम के लिए एक-दो बार बाहर जाने को तुझ मना नहीं करती। मेरा मतलब सिर्फ इतना है कि इस समय न जा तू कहीं। जब घर में मेहमान आवे तब तो तुझे बाहर जाना और काम थोड़ी देर के लिए छोड़ ही देने चाहिए।

"नहीं मां मैं इतना सस्ता नहीं हूं। मैं काली का कोई काम नहीं करूंगा। आखिर समाज में मेरी भी तो एक मर्यादा है। तुमने ठीक मौके पर मुझे सचेत कर दिया। भाभी को भी मैं हमेशा तांगे में बैठाकर यहां देखो वहां डोलता फिरूं, यह भी कोई तमाशा है। बड़े आदमियों को ये छोटी-मोटी बीमारियां तो लगा ही करती हैं। फिर कौन उनके पीछे भूख प्यास सह दौड़-धूपे और लोगों की आंखों में तिनके की भांति खड़ी-गलत खटकने की वस्तु बन। मैं आज उनसे भी साफ-साफ कह दूंगा—कानपुर में डाक्टरों की कमी नहीं है। वहां भी तुम्हारा इलाज ठीक तरह से हो सकता है। यहां मुझ इतना अवकाश ही कहां है जो

धीरे-धीरे साफ-साफ किये। जो कुछ और जहाँ तक हो सका उतना ही बहुत है। आज चलो मैं तुम्हें कानपुर भेज आऊं। है न ठीक मां!

"पर आज तू मुझको इतना गलत क्यों समझ रहा है यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। मैं कहां कहती हूं कि तू बहू की दवा करने में कोताही कर। —मैं कहां कहती हूं कि उसके साथ टहलने घूमने अथवा डाक्टर साहब के यहां जाना बन्द कर दे। मैंने तो सिर्फ इतना कहा है कि यह भी कोई बाहर जाने का वक्त है, जब मेहमान घर में बैठे हों। मैं कहती हूं और कोई न सही मेहमान ही अगर कुछ कहने लगे तो मैं उन्हें क्या जवाब दूंगी?

"नहीं मां मैं इतना बेवकूफ नहीं हूं कि तुम्हारी बात का मर्म न समझूं! जिस बात को आज तक कोई जबान पर लाना दूर रहा कल्पना में भी न ला सका वही तुम कह रही हो और मैं सुन रहा हूं। जो बात कोई दूसरा मेरे लिये कभी कह नहीं सकता—सोच नहीं सकता—वही तुम सोचने लगी हो! तब मैं कैसे मान लूं कि मुझमें कहीं खोट नहीं है। खोट होगी तभी तो तुमने उसकी तरफ इशारा किया है! और खोट मुझ में है तो मैं अपने को भी देख लूंगा। मैं छोड़ दूंगा यहीं अपना आपको भी। अब मेरा जन्मदिवस न मनाया जाय मैं स्पष्ट कहे देता हूँ। मेरी शुभ-कामनाओं पर कोई भी मंगल-गान न हो मैं सावधान किये देता हूं। मेरे घर अब किसी की दावत न हो मैं एलान किये देता हूं। मेरे घर के खान पान में कोई मामूली-सा भी परिवर्तन न हो यह मेरा स्पष्ट आदेश है।

इतना कहकर मैं चुपचाप अपने कमरे में चला आया। मां ने उत्तर में एक शब्द नहीं कहा। और मैंने भी उनका उत्तर पाने की प्रतीक्षा नहीं की। लेकिन कमरे में आते-आते मैं स्वयं रो पड़ा! मेरा रोना सुनकर मां मेरे पास आयी और मेरे सिर को अपनी गोद में लेकर कहने लगी—"मैं जानती हूं मेरा लाल ऐसा नहीं है कि कोई उस पर अंगुली भी उठा सके। बस यही विश्वास भगवान मेरा दृढ़ बनाये रक्खे।

विश्वविप्लव का ज्वालामुखी अब शान्त हो गया है। घर में मुझको और मां को छोड़कर अब और कोई नहीं है।

उस दिन जब अपह मैंने सूचित कर दिया था कि जब देश भर में आपत्ती हो, तब मैं अपने घर उत्सव नहीं मनाऊंगा। मुझे क्षमा कर दिया जाय।

उन व्यक्तियों में से नहीं हूँ जिनके मकानों में चाँदनी रातें और ... रहते हैं पर जिनकी तुच्छ बुद्धि के मुताबिक में कोई अन्तर नहीं पड़ता। अतीत मात्र वैसा नहीं हूँ जो प्रवाह में पड़कर बहता चला जाता हूँ — बहा जाता हैं। मैं वह मच्छ नहीं हूँ जो अपनी ही जाति के बच्चा-कच्चा निरन्तर उदरस्थ किया करता है। मैं वह अजा नहीं हूँ जो अपनी ही कुक्षि उत्पन्न हुए अज से सहज सयौरव गर्भधारण करा लेती है। मैं वह विकृत साधु नहीं हूँ जो भोजन करके तुरन्त वमन इसलिए कर डालता है कि केवल स्वाद का लोभ होता है पर सच पूछो तो मनुष्य ... हूँ व जीभ ... लगाने हुए लार टपकानेवाले कुत्ते मात्र!

मां ने बड़े संयम से काम किया। वे चुपचाप अपने काम में लगी रहीं पर उनका मुख उतरा-उतरा सा था। आगत-स्वागत में उन्होंने किसी ... की कोर-कसर नहीं रहने दी। दीक्षितजी, बैमाजी और मामी को तो उन्होंने बार-बार परोसकर खिलाया। बातचीत में कभी-कभी प्रसन्नता भी प्रकट की। दीक्षितजी ने अनुरोध किया कि मैं उनके साथ बैठकर खाना खाऊं पर मैंने कह दिया कि फिर मुझे सन्तोष न होगा। किस को कौनसी चीज चाहिए इसका निरीक्षण मैं स्वयं करूँगा।

मैं जब इन कार्यों में व्यस्त था तब मुझे क्षण-क्षण पर अपने सकल्प शिथिलता का भान होता जाता था। पर मुझे ग्लानि नहीं थी क्योंकि मुझे ध्यान आ जाता था कि सकल्प मेरा पूरा अवश्य हो जाता पर परिणाम बड़ा भयानक होता। मेहमानों का स्वागत न होता तो मां का अनशन निश्चित हो जाता। फिर एक जरा-सी बात पर उनका ... कितनी बड़ी घटना होती! इस घटना को बचा ले जाने में मेरी हार स्थिति है उसे मैं सहन कर सकता हूँ। इसके सिवा क्रोध और उत्तेजना में ... हुए सकल्पों को कभी अधिक महत्त्व भी नहीं देना चाहिए। ऐसे व्यक्ति बड़े होते हैं जो प्रतिक्रिया में पड़कर कुछ-का-कुछ कर डालते हैं।

अब जो अपने आप पर सोचने और विचार करने लगता हूँ तो प्रतीत होता है कि मैं सभा-समाज में बैठने-उठने लायक नहीं हूँ। कोई भी ... मेरी दुर्बलताओं से अनुचित लाभ उठा सकता है। कोई भी व्यक्ति मुझ कड़ी

वे एक खिड़की के नीले परदे को खोलती और बन्द करती हुई कहने लगी—"चलो यह तुमने अच्छा बता दिया। अब मुझ——। कहती-कहती वे फिर कुछ रुकी और कमरे के बाहर जाती-जाती आगे बढ़कर कहने लगी— अधिक कष्ट नहीं होगा।

मैं समझ गया कि उनके इस कथन का आशय क्या होता है। जान-बूझ कर वे— 'अब मुझ शब्दों के साथ 'मरने में' शब्द कहती-कहती रुक गयी है। तब उस सीट पाने के समयवाली छवि को मैंने भी ध्यान से अपने मानस पट पर छाप लिया जो कह रही थी— 'अब मुझे मरने में कष्ट न होगा।

यद्यपि मेरा हृदय उन शब्दों की कल्पना करके थर-थर कम्पित हो जाता है कब भाभी का निधन होगा? सोचता हूँ मैं उनकी उस महायात्रा को सह कैसे सकूँगा? मेरे प्राण कैसे स्थिर रहेंगे? मेरा मन कहाँ आश्रय पायगा। मैं किस को देख कर जीवित रहूँगा? कहीं मैं पागल तो न हो जाऊँगा? और हो ही गया पागल, तो दुनिया मुझे क्या कहेगी! कहेगी कि यह भी उन्हीं में से एक है। इसका भी नाम नोट कर लो। बड़ा विचारक बनता था। अब दिमाग ठिकाने लग गया। जिस पशुशाला मे बन्द कर देने योग्य था घूम-फिर कर वहीं आ पहुँचा।

हा हा हा हा! हा हा हा हा!!

तब तुरन्त सावधान होकर क्षण-क्षण पर मैं उसी समय की कल्पना कर रहा था जब भाभी यहाँ से चली जायगी। पहाड़ों के पत्थरों को पीठ और कंधों पर लादकर चला जा सकता है मानता हूँ। लेकिन उन्हें छाती पर लादकर जीवन की साँसें भी पूरी की जा सकती हैं इसका पहले अनुभव न था। पर प्रभु की इस अद्भुत इच्छा को क्या कहूँ कि आज इसका भी अनुभव करना पड़ा।

दीक्षितजी को जिस कमरे में ठहराया था वह सड़क के दूसरी ओर एक ऐसे मुहल्ले में पड़ता था जहाँ दूध वाले ग्वालों की बस्ती थी। वहाँ छज्जे पर से भैंसों के छोटे-छोटे बच्चे भी कभी-कभी देखने को मिल जाते थे।

दीक्षित जी ने जब मुझे बुलाकर कहा—"मैं तो सोचता था तुम रात-दिन आनन्द-विनोद में डूब रहते होगे। पर यहाँ आकर मझे तुम्हारा दूसरा ही परिचय मिला। जब देखो तब पढ़ना— पढ़ना। पढ़ना भी कोई सुमन है जी! इससे तो यही अच्छा है यह भैंसों का तबेला। पशु-प्रकृति का कभी-कभी परिचय

हो मिल जाता है। अभी-अभी मन देखा—एक भैंस अपने आपको भैंसा समझ-कर मिलेवन की कामना प्रकट कर रही थी। तभी मेरे ध्यान में आया कि तुम्हारी अपेक्षा इस भैंस की अधिक उपयोगिता है संसार के लिए।

मैं इसके उत्तर में कुछ नहीं कह पाया। बात यह हुई कि जब दीक्षित जी की यह बात पूरी हो रही थी उसी समय वैशाली उस कमरे में प्रवेश कर रही थी। साड़ी उतार कर उसने शर्ट-पैंट धारण कर रक्खी थी उस समय। आते ही उसने कमीज के जेब से वही मेरा उपहार में दिया हुआ फाउण्टनपेन निकाला और अपनी अटैची खोलकर एक कापी के बीच से एक पन्ना फाड़ते हुए यह लिख कर पूछा— बतलाइये उस कापी के लिए इस फटे हुए पन्ने की क्या उपयोगिता है ?

संयोग की बात तो देखिए उसी समय उस द्वार से भाभी गुजर रही थीं। वैशाली का प्रश्न सुनती-सुनती वे भी उस कमरे में आ गयीं। उनकी छाती पर वह मर्माभरण अब भी पूर्ववत् सुशोभित था। उनके कानों के झूमर आज ही सामने के यहां से साफ होकर आये थे। दीक्षित जी उन्हें देखते ही बोले— देखो भाभी इस बार तुमको मेरे साथ चलना ही पड़ेगा। जब चौधरी साहब दिल्ली में राग-रंग मना रहे हों तब भी तुम अपना यह उदास उदास मुख लिए यहां-वहां पड़ी रहो यह ठीक नहीं है।

तब भाभी मुसकराती हुई कहने लगीं—"ये सब बातें बाद में कीजियेगा। पहले यह बतलाइये कि वैशाली के प्रश्न का आपके पास क्या उत्तर है ?

पनिया तश्तरी में पान दे गयी।

चार बीड़े एक साथ मुंह में दबाकर दीक्षित जी बोले— वैशाली को तो सदा एक-न-एक ऐसा व्यक्ति चाहिये जिसको वह खिलौने की तरह बजा सके, पत्थर की तरह नचा सके और रेल की तरह दौड़ा सके। वैसे चाहे भाभी यहां रेल भी न पड़ती लेकिन वैशाली ने ऐसा प्रश्न कर दिया कि मयूर के पुच्छ की तरह लोग हाथ बढ़ा-बढ़ा कर उसे तोड़ने का प्रयत्न करने लगे।

तब वैशाली के सिर पर हाथ फेरती और उसे अपनी सलोनी देह में समेटती-सी भाभी बोलीं— आप चाहे जो समझें दीक्षित जी आपकी बात ही दूसरी है।

लेकिन मैं तो अभी से यह मानने लगी हूं कि इस अवस्था में इतनी सांस्कृतिक चेतना आपको शायद ही किसी लड़की में मिले।

वैशाली मुसकराती हुई बोली— आप चाहे जो कहिये। पर मुंह पर प्रशंसा करने से बच्चों की ही नहीं बुड्ढों तक की आदत खराब हो जाती है यह मैं जानती हूं।

भाभी बोली— तभी तो मैं यह कह रही थी कि वैशाली वैशाली है। —अच्छा वैशाली अपने प्रश्न के संबंध में तुम्हीं न बतला दो कि आखिरकार तुमने उसका क्या उत्तर सोचा है ?

वैशाली आज भी टाफी लेकर आयी थी। एक न्यबिस्केट मुंह में डाल कर उसका रस चूसती हुई बोली— अच्छी बात है सुनिये। कल्पना कीजिये कि मैंने उत्तर देते हुये कहा—कापी की साधारण उपयोगिता यह है कि उसका हर पृष्ठ पूरा-पूरा लिखा जाय। जिसका अर्थ यह हुआ कि जीवन के सारे अंग पूर्ण किये जायें—सुख-दुःख क्षमा दया उदारता वीरता क्रोध ईर्ष्या-द्वेष प्रतिहिंसा—यहां तक कि कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत दुर्बलता भी।

लेकिन कुछ हो भाभी को उसका यह उत्तर कुछ जंचा नहीं और उन्होंने कहा कि सारे गुणों के पश्चात् अन्त में यदि दुर्बलताओं के द्वारा हमारा अधःपतन ही हो जाय तो इससे तो अच्छा यह होगा कि वह पन्ना खाली ही पड़ा रह जाय। चाहे आवश्यकता के समय कोई उसे इसी तरह भले ही फाड़ ले।

किवाड़ की आड़ में खड़ी चुपचाप मधू सब कुछ सुन रही थी। अतः इसी समय वह प्रकट हो गयी और सिर नीचा कर हंसती हुई बोली— 'यह मेरा मत नहीं हो सकता। क्योंकि मैं यह कभी पसन्द नहीं कर सकती कि जीवन का कोई पन्ना इतना कोरा छोड़ दिया जाय कि कोई उसे फाड़ कर ही सन्तुष्ट हो जाय।'

सुनकर भाभी प्रसन्न होकर बोल उठी—"मधू ने भी अच्छा तर्क पेश किया।

तब वैशाली ने एक टाफी मधू को देते हुए धीरे से कहा— 'इसी बात पर चखकर बतलाइये कैसी है ? फिर कुछ जोर से बोली—"मगर मेरे इन भाई साहब को भाभी का यह उत्तर भी अगर पसन्द न आये तो आप क्या कीजियेगा ? अतः आपने कहा—पूरा पेज लिख लेने के बाद भी अगर तबियत

न भरे, तो उसकी दूसरी ओर भी लिख डालने में मत चूका। आप जानते हैं इसका क्या मतलब हुआ ? मतलब यह हुआ कि अगर प्रयत्न करते-करते आप अभी सफल नहीं हुए हैं तो फिर प्रयत्न कीजिये फिर कीजिये प्रयत्न। अन्त में आपको अवश्य सफलता मिलेगी। अर्थात् आप सफलता के पीछे सटर लिये फिरते रहेंगे तो वह भागकर जायगी कहां ? उसे मिलना ही पड़ेगा।

अब रह गये अपने राम। वैशाली कुछ विनोद की भाषा में बोली—"मेरा इसकी राय इस मामले में आपको बिलकुल अजीब लगती। क्योंकि अगर दूसरे पेज पर ही लिखना है तो सब से अच्छा यह होगा कि जो पत्र एक बार भरा जा चुका है उसे या आड़ी लकीरों से काट डाला जाय और फिर जो कुछ भी रहता हो, उसे दूसरी बार चार पंक्तियों में लिख दिया जाय। अर्थात् जीवन में सब कुछ कर डालने पर भी यदि ऐसा प्रतीत हो कि सब गलत हुआ है तो फिर क्यों न उसको काटकर—सब कुछ समाप्त करके—कुछ ऐसा किया जाय कुछ ऐसा किया जाय जो युग-युग तक अमर बलि की भांति लहराता और सौरभ फैलाता रहे !

मामी इस बात को सुनकर सन्न रह गयीं कुछ बोलीं नहीं। दीक्षित जी ने कहा—"इसके विचार कभी-कभी बड़े रेडिकल हो जाते हैं। यद्यपि मानता हूं कि यह भी एक दृष्टिकोण है। यह बात दूसरी है कि इसको अभी व्यावहारिक न मान पड़े। —अब मुझे बोलना पड़ा। मैंने कह दिया—"पर यह सब तो वैशाली की अपनी बात हुई। मेरा मत कुछ और है। वास्तव में आप लोगों ने मूल प्रश्न पर ध्यान ही नहीं दिया। प्रश्न तो यह था कि फटे हुए पत्र की उस कापी के लिए क्या उपयोगिता है ? और उत्तर उसका यह होना चाहिये था कि उस पत्र की उपयोगिता तभी तक है जब तक वह उस कापी का अंग है। विलग हो जाने पर उस कापी के साथ उसकी कोई उपयोगिता नहीं—वियोग में आंसू बहाने के अतिरिक्त !

इधर ये बातें हो रही थीं। उधर दरवाजे पर कोई खड़ा-खड़ा पुकार रहा था। स्वर से ही जान पड़ा लालाजी आ गये।

ज्यों ही उनके पास पहुंचा वे बोले— अभी चलना होगा। अत्यन्त आवश्यक काम है।

मैंने कहा— "मगर क्या दस-पांच मिनट भी न बैठियेगा ?"

वे बोले— "नहीं । इस समय एक-एक मिनट का हिसाब रखना पड़ रहा है ।" तब मुझे विवश होकर जाना ही पड़ा ।

बीस

जान पड़ता है आज फिर मुझे नींद नहीं आयगी । सारी रात यों ही करवट बदलते बीत जायगी । लालाजी ने मुरली बाबू के नाम वारंट तो निकलवा दिया पर उनका पता नहीं चला । अर्चना से भी चाहे सहायता मिल भी जाती पर जब से यह निश्चय हो गया कि वे इस बार सदा के लिए मुरली बाबू से पृथक हुई हैं तब से मुरली बाबू से भेद लेना दूर रहा उससे मिलना-जुलना भी बन्द कर दिया था ।

फिर भी जब लालाजी अर्चना से मिले और उससे अर्चना को यह ज्ञात हुआ कि लालाजी की लड़की कमला मुरली बाबू के साथ है तो उसका खून खौल उठा । उसने कमला का पता लगा लेने की प्रतिज्ञा कर ली । वह सुना करती थी कि यहां अधिक पढ़ी-लिखी लड़कियों की एक ऐसी संस्कृति पनप रही है विवाह-विच्छेद और स्वच्छन्द विहार जिसका एक मात्र उद्देश्य है । इस दल में उच्च पदाधिकारियों बड़े से लेकर कम-से-कम प्रांतीय ख्याति के नेताओं और मिल-मालिकों की लड़कियां प्रमुख हैं । उनका सब से बड़ा बल है स्वावलम्बन और उनकी सब से बड़ी शक्ति है रूप और फैशन । उनमें मुख्यतया अविवाहिता हैं । जो विवाहित भी हैं वे अपने स्वामियों के साथ न रहकर पिता-मां-बहिन के साथ रहना अधिक पसन्द करती हैं । स्वामी के घर रहने पर भी वे सेवा और परिश्रम का कोई काम नहीं करती । न वे समय पर खाना पकाकर खिला सकती हैं—न नौकर के अभाव में एक बर्तन मल सकती हैं । बटन टूट जाने पर वे उसे कुरते में टांक तक नहीं सकतीं । हां दो-एक काम वे कर सकती हैं । वे साथ में सिनेमा देखने को तैयार हो सकती हैं । सभा-समाज में साथ दे सकती हैं । और अगर आप घुमाने का वादा करें, तो कार पर आपकी बगल में बैठ सकती हैं । उनके पास रुपये की कमी नहीं है पर नये मित्र होने के कारण उपहार में आप

उन्हें कोई भी कीमती वस्तु दे सकते हैं। कोठी या बंगले पर छत के सामने आप उनसे मिल तो नहीं सकते पर पत्र भेजकर या फोन के द्वारा पहले से कार्यक्रम तै कर के आप उनसे मिलने का काम कभी भी प्राप्त कर सकते हैं। आप उनसे विवाह तो नहीं कर सकते पर अपने कार्यालय अथवा संयोजन में किसी मर्यादा पूर्ण पद पर आप उन्हें सहर्ष रख सकते हैं। उस समय आप उन्हें घर पर भी बुला सकते हैं। याँ आप उन्हें अपने घर पर एक दिन भी नहीं ठहरा सकते किन्तु आपका कार्यालय यदि शिमला मसूरी नैनीताल अथवा दार्जिलिंग चला जाय तो आप एक साथ छै महीने तक उन्हें साथ रख सकते हैं!

इस समाज की नारियाँ सन्तानोत्पादन स्वीकार नहीं करती। जिस अवधि तक वे शिक्षा-संस्थाओं में उच्च पदों पर कार्यारूढ़ रहती हैं उस कार्यकाल में कहीं-कहीं यहाँ तक देखा गया है कि कुछ अपवादोंको छोड़कर विवाहिता अध्यापिकाएं अपनी संस्था तक में रखना उन्हें स्वीकार नहीं होता!

एक बार इसी दिल्ली में अर्चना ने पहले भी एक संस्था में अध्यापिका की जगह प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। पर उस समय उसे इसमें सफलता नहीं मिली थी। किन्तु इस बार विवाह-विच्छेद की योग्यता प्राप्त करते ही उसे नौकरी मिल गयी। यह बात दूसरी है कि इस तरह की योग्यता कम-से-कम अर्चना को स्वयं प्राप्त करने की आवश्यकता न पड़ी हो। परिस्थितियों ने ही उसे जीवन के इस मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया हो।

या हाँ अर्चना जब उन देवियों से मिली जो सार्वजनिक क्षेत्र में काम करती हैं तो उसे बड़ा प्रोत्साहन मिला। भाँति-भाँति के आश्वासन उसे मिलने लगे।—एक देवी जी टेलिग्राफ आफिस में थीं। वे नखों पर पालिश कर रही थीं। उन्होंने बतलाया—आज होटल में आपको सिर्फ बीयरबुक लिखनी होगी। डार्लिंग पुलिन-जी। आप हमारे साथ चलेंगी तो मैं आपको प्रोप्राइटर से मिला दूंगी। —एक देवी जी इन्शोरेन्स कम्पनी में थीं। वे आमलेट को चाकू से काट रही थीं। कहने लगीं—जब आप व्याख्यान दे सकती हैं तब तो आप हमारी संस्था की स्टाफ-मेम्बर भी बन सकती हैं। फिर आपको कोई चिन्ता न रह जायगी। यह दूसरी बात है कि आपके निजी विचार चाहे जो हों केवल कार्यक्रम में आपको संस्था के उद्देश्यों का ध्यान रखकर बोलना पड़ेगा। उदाहरण

आपको पूरी स्वतन्त्रता रहेगी। एक टेलिफोन-नम्बर भी। घंटे-भर इधर-उधर की बातचीत के अनन्तर वह बोली— 'और तो सब ठीक है। पर आपको नृत्य तो सीखना ही पड़ेगा। हमारे यहाँ इस कम्पा का काम हो गया है। रावण जब सीता को हरण करने आया था तब वह किस तरह उनको जोर और जबरदस्ती से उठा ले गया होगा अगर आप नृत्य में इस भाव का प्रदर्शन कर सकें तो दिल्ली भर में मैं कहती हूँ बिलिंग बन जाइए' आप प्रसिद्ध हो जायँ! आप मुझे फाके कर रही हैं न? तो ऐसा कीजिये आप तीन बजे हमारे आफिस में आ जाइये। काम तो हमारा परम हुआ रहेगा इसलिए थोड़ी देर गपशप और चाय में व्यतीत करके आप हमारे साथ चली चलेंगी। फिर सब ठीक हो जायगा। पर आपकी यह इकन्नाई-विकन्नाई काम न देगी। उस वक्त आपको बारजेट की साड़ी पहिन कर आना होगा। और भी दो-एक बातें हैं जिन्हें मैं आपको ठीक अवसर पर बतला दूँगी।

अर्चना को मालूम था कि ये सब देवियाँ अपने-अपने देवताओं को साथ लेकर एक बार कनाट-प्लेस का चक्कर अवश्य लगाती हैं। इसलिए कई दिन तक वह सायंकाल सात बजे के लगभग वहीं चक्कर काटती रही। उसके साथ की एक अध्यापिका ने पूछा भी कि आपको कुछ खरीदना है क्या? तब अर्चना ने कह दिया— 'खरीदना तो है पर मैं उसके लिए एक फ्रेंड की प्रतीक्षा कर रही हूँ।'

उसने पूछा— कौन फ्रेंड?

अर्चना— आप उनको नहीं जानतीं।

वह— 'पर आप नाम तो उनका बता ही सकती हैं।

अर्चना— 'राजहंस नाम है उनका।

वह— 'क्या काम करते हैं?

अर्चना—देशोद्धार का।

वह—लीडर हैं?

अर्चना— 'लीडर क्या चीज है उनके सामने! लीडर तो केवल भविष्य का स्वप्न देखते हैं। पर वे ऐसे वीर पुरुष हैं कि परिणामों पर विचार किये बिना स्वप्नों को चरितार्थ करके देखते हैं!

वह— 'आप मजाक कर रही हैं।

कि रात के नौ बज गये थे। तभी वह लड़की मुझ से मैच-बाक्स माँग ले गयी थी। मेरा ख्याल है उसके मुँह में बायें होंठ के ऊपर, बिल्कुल किनारे, एक तिल है।

यह बात सुनते-सुनते लालाजी की मुखाकृति बदल गयी। कुछ आशा का संचार हुआ। बोले— 'बस वह जमना है।'

इतने में उस मकान का कुक आ गया। उसने पूछा— 'आप लोग किस की तलाश कर रहे हैं ?'

अर्चना बोली— 'मिस्टर राजहंस आर्टिस्ट और जमना देवी की।'

'ओ' पर वे दोनों तो कल बम्बई चले गये।'

'बम्बई चले गये ?' लालाजी ने आश्चर्य से पूछा।

'जी।'

'यह तुमने कैसे जाना ?'

'मैं उन्हें स्टेशन तक भेजने गया था। भला मैं न जानूँगा।'

'वे लोग बम्बई में कहाँ ठहरेंगे ?'—कुछ चर्चा हुई थी।'

'यह तो मैं नहीं कह सकता पर वे अंगरेजी बोलते हुए बार-बार एक कम्पनी का नाम ले रहे थे।'

'उस कम्पनी का नाम याद है ?'

'नाम तो याद नहीं रहा साहब। पर नाम में क्या होता है ? बम्बई जाने पर वहाँ पता चल ही जायगा।'

और तब लालाजी को बम्बई जाना पड़ा।

इसी समय बारह बजने की आवाज हुई। तभी ख्याल हो आया अभी एक साहब 'टुडे' के आफिस से लौटेंगे सड़क पर खड़े होकर अपनी बहिन को बुलायेंगे। मुहल्ले भर में उनकी पुकार का स्वर गूँज उठेगा— 'मालती' !

मैं तो जानता था आज की रात नींद आना मुश्किल है।

लालाजी इसके पश्चात् बम्बई पहुँचे। वहाँ वे सभी स्टूडियोज में कई दिन तक चक्कर काटते रहे। जहाँ-जहाँ नयी हिरोइनों या अभिनेत्रियों के चुनाव की खबर पाते वहाँ अवश्य पहुँचते। वहाँ वे कई डायरेक्टरों से भी मिले। लालाजी का व्यक्तित्व देखकर उन्हें डायरेक्टरों ने कुछ और समझ लिया। एक महाशय ने पूरा समाचार सुनने के पूर्व ही कह दिया— 'ए साहब हम कानों के बजाय

आँखों से देखते हैं। इसलिए लड़की को आप साथ लाइये। आप के कहने से हम यह कैसे मान लें कि यह कालिदास की साक्षात् शकुन्तला है!

अब लालाजी की समझ में आने लगा कि हम कहाँ आ पहुँचे हैं। यहाँ वे अपने ऐसे वाक्य-बन्धु के यहाँ ठहरे थे जो एक गुजराती पत्रकार थे। नित्य रात को उनके साथ बैठक जमती। नित्य लालाजी अपने अनुसंधान-कार्य का विवरण उपस्थित करते। दो-तीन दिनों के बाद उस पत्रकार-बन्धु ने कम-कम से एक्स्ट्रा-सप्लायर्स को अपने यहाँ बुलाना शुरू किया। हर एक्स्ट्रा-सप्लायर से वे एक प्रश्न करते—"तुम्हारे यहाँ कोई नया माल तो नहीं आया है?

पहली बार जब उन्होंने एक से यह प्रश्न किया तो लालाजी उसे सहन न कर सके। उठकर कमरे से बाहर चले गये। जब वह एक्स्ट्रा-सप्लायर चला गया तो लालाजी बोले— आपने मेरे ही सामने उससे ऐसी भाषा का प्रयोग किया यह तो बड़े खेद की बात है!

पर सब होता है, जब अपने ऊपर बीतती है। आज लालाजी यह कहना भूल गये कि "हाँ ऐसा तो अक्सर होता है!

उन्होंने बतलाया— आप अभी तक सिद्धान्तों और विचारों को केवल कमरे के अन्दर बैठकर—केवल प्रवचन के द्वारा—सीख रहे हैं। पर यह वह जगह है जहाँ राजनीति के बिना काम चल ही नहीं सकता। मैं साफ कहता हूँ कि अगर इसी एक्स्ट्रा-सप्लायर को कहीं से इस बात का सुराग लग जाय कि आप उसी भगायी हुई लड़की (मास्टर कौशिवेला) की खोज में निकले हैं तो उसका पता लगता हुए रहा जानने पर भी वह उसे छिपा डालेगा। अतः मुझे तो उससे ऐसी तरकीब से बात करने की जरूरत है जिससे उसे अपना रोजगार चलने और कोई अच्छी खासी रकम हाथ लगने की आशा हो।

अब लालाजी चुप रह गये थे। फिर उन्होंने बतलाया था— 'सच कहता हूँ साहब, तुम अगर उस समय मेरे पास होते तो मैं तुम्हें गोद में लेकर उछाल देता।

विचार और कर्म में भेद, मन और वचन में भेद, वक्तव्य और भावना में भेद रखते रखते ऐसा जान पड़ता है हम यह भूल ही गये हैं कि जो भी व्यक्ति इस दुनिया में नगर और देश में रहते हैं हमारी निज की संतान भी—उन्हीं की

संस्कृति की देन है। दूसरे लोग पास-पड़ोस के लोग हमारे मिलने-जुलने वाले हमारे घरों में आने-जाने वाले ये सभी बन्धु-बांधव नौजवान वृद्ध और बच्चे बालिकाएं और युवतियां जो संस्कृति रखने जो भाव विचार और धर्म रखेंगे उनके प्रभाव से हम कैसे बच सकते हैं!

लालाजी की लड़की जमना ससुराल में भी नित्य सिनमा देखने के पीछे अपने स्वामी से लड़ा करती थी। कहीं घूमते-फिरते इधर-उधर बैठे-बैठे उनका परिचय मुरली बाबू से हो गया। उनसे कुछ रटे-रटाये जुमले सुनकर, उन पर मुग्ध होकर, वे उनको अपने घर ले आये एक बार—दो बार—दस बार। अन्त में उन्होंने जमना से भी उनका परिचय करवा दिया। फिर क्या था मिस्टर राजहंस आर्टिस्ट का भविष्य स्वर्णिम होने लगा। वे स्वप्न देखने लगे कि मुग्ध जमना के साथ बम्बई पहुंचकर किसी फिल्म-कम्पनी का डायरेक्टर बनना है। फिर तीन वर्ष के अन्दर लक्षाधिपति मकान कार, नौकर-चाकर सब कुछ!

चुटकी बजाने में भी उतनी देर नहीं लगती जितनी देर में कल्पना का स्वर्ग मूर्तिमान हो उठता है!

एक दिन राजहंस साहब ने चाय का प्याला कण्ठगत करने के बाद अपना सिगार सुलगाते हुए फरमाया— आज एक बड़ा फर्स्ट-क्लास पिक्चर आया है।

'कौन-सा ? जमना ने पूछा।

राजहंस साहब बोले— 'राजधानी।

'नाम तो अच्छा है। —उसके पति रामचन्द्र भाप ने जमना की ओर देखते हुए कहा।

'मगर मैं नाम पर नहीं जाता। मैं तो काम देखता हूं। राजहंस साहब ने कुछ इस तरह कहा जैसे वे किसी वेद-मंत्र का भाष्य प्रकट कर रहे हों!

'तो पिक्चर आपकी देखी हुई है। जमना ने चप्पल के भीतर से पैर निकालते हुए पूछा।

'जी।

'तो क्या हुआ ? एक बार फिर सही। रामचन्द्र भाप ने कह दिया।

लेकिन बेकार में पैसा क्या खोया जाय ? राजहंस बहुत सम्हल-सम्हल कर, बड़े इत्मीनान से चाल चल रहा था।

"पैसा तो मौज के लिए कमाया ही जाता है।" रामचन्द्र साथ को भी इस दर्शन से कुछ उदासियत हो गयी थी।

तीनों सिनेमा देखने गये। पिक्चर राजहंस का देखा हुआ न था। एक स्थल पर रामचन्द्र साथ ने जब प्रश्न कर दिया—"जरा सुनियेगा। वह लड़की जो इस पुरुष से नफरत करती है फिर इससे प्रेम कैसे कर सकती है ?

राजहंस साहब बोले—"यही तो इस कहानी की खूबी है। आप देखते ही जाइये पहले से बतला देने में फिर आगे का सारा मजा अन्दर हो जायगा।

और पिक्चर देखने के बाद जब जमना मोटर गाड़ी पर बैठी तो चित्त का एक गीत गुनगुनाने लगी—

"सवेरे मैं जल पायी नहीं—प्यास भी बाह बुझाती रही।

राजहंस साहब की तबियत न मानी। बोल उठे—"वाह! क्या कण्ठ पाया है आपने! बम्बई में होतीं तो प्लेबैक देने में आपको हजार रुपये रोजाना की इनाम हो सकती थी।

मगरों में हम लोग रहते हैं। मगर यहां जगाये जा रहे थे।

चार दिन बाद जब जमना को मगली बाबू ने उनकी सुनी बैठक में पाया तो कार्य-क्रम बन गया। पहले दस-पांच दिन छिपकर कहीं-न-कहीं रहा जाय—अच्छी तरह तय कर लिया जाय। उसके बाद बम्बई।

और जमना के पास दस हजार का जेवर तो रखा था जिसे वह अपने खास ट्रंक में रखती थी और तबियत होने पर अक्सर पहनती रहती थी। विशेष रूप से जब समय जब कहीं बाहर निकलती थी।

मैं तो आजमा था आज की रात यों ही बीतेगी।

इन मकानों बंगलों और कोठियों में जो सीढ़ियां आजकल बनायी जाती हैं, उनमें मोड़ होते हैं। इस से दो लाभ स्पष्ट हैं। एक तो सीढ़ियां चढ़ने वालों को उन मोड़ों पर खड़े होकर एक-आध मिनट विश्राम लेने का अवसर मिल जाता है। दूसरे अगर कोई व्यक्ति सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते गिर भी पड़े तो चोट कम लगती है।

हमारे वंश का समाज-संगठन हमारी संस्कृति कुछ इस तरह की बनी है हमारी ऐतिहासिक मर्यादा कुछ ऐसी पावन और गौरवमयी है कि हम पतन की पहली सीढ़ी को ही सहन नहीं कर पाते। क्योंकि हम जानते हैं हमारी मान्यताओं का राज-प्रासाद कुछ ऐसा बना है कि सीढ़ियां उसकी सीधी गयी हैं। एक बार ऊपर से गिरने भर की देर है और पतन का गह्वर गर्त निश्चित है। साधारण मानवी दुर्बलता कहकर हम जिन बातों की उपेक्षा कर दिया करते हैं वे अन्त में हमारे आदर्शों की युग-युग संचित निधियां हमसे लूट कर चल देती हैं।

उन पत्रकार-बन्धु ने अन्त में जिस एक्स्ट्रा सप्लायर को बुलाया पहले हैं उसके साथ बीड़िया थी।

वे बन्धु इन एक्स्ट्रा-सप्लायर्स से जब बातें करने लगते तभी लालाजी उस कमरे से बाहर चले जाते। पर एक दिन उन्होंने साहस करके कहा—"आज मैं बाहर नहीं जाऊंगा। सभी बात अपने इन कानों से सुनूंगा। मैंने बहुत अमृत पिया है। थोड़ा-सा विष भी पी लूंगा तो सहसा मर नहीं जाऊंगा। मेरा हृदय लोहे का स्तम्भ है—एक बाध बार का वज्रपात तो सह ही लेगा।

जब वह अवसर आया तब लालाजी बैठे रहे। पत्रकार-बन्धु ने उस एक्स्ट्रा सप्लायर से वही प्रश्न किया— 'कोई नया माल तो नहीं आया मुल्तान भाई?

'आया तो है लेकिन।

'लेकिन क्या?

'अभी उसकी शर्म पूरी तरह नहीं गयी है।

'वाह! क्या बात बतलाई है दोस्त! बिल्कुल ऐसी ही रकम के फेर में हूं इस वक्त। पहले से जाने की जरूरत नहीं है। सारा नक्शा बयान तो कर जाओ। देखिये बात को। देखेंगे क्या बल्कि सामने बैठालकर सब नोट करना होगा। एक मॉडल के बिना आजकल आर्टिस्टों का काम चलता नहीं है।

और मुल्तान ने बतलाया— देखिये पंडित जी यह सब गलत बात है। जब मैं कहता हूं कि बड़ी-बड़ी हिरोइनें उसके सामने पानी भरेंगी तब आपको मेरी बात पर यकीन क्यों नहीं होता?

'अच्छा जाने दो। सिर्फ दो-एक बात बतलाओ। उसका चेहरा गोल है या लम्बा?

लालाजी ने पहली ही दृष्टि में जमना को दूर से पहचान लिया था। पर वे उस समय ऐसी अवस्था में थे कि हर्ष और विषाद से परे हो चुके थे। उस। न जीवन में पहली बार उन्होंने शराब पी थी और उनका कहना था कि पहचान लेने के बाद ही उन्होंने बोतल खाली की थी। उन्होंने यह प्रयोग खूब समझ-बूझकर किया था। क्योंकि उनका कहना था कि अगर मैं ऐसा न करता तो अनर्थ हो जाता। यह भी हो सकता था कि जमना को पिस्टल का पहला निशाना बनना पड़ता।

नशे में धुत लालाजी का मुख उस समय तीन कोने का हो गया होगा। वंशागत मर्यादा और उसकी सारी प्रतिष्ठा को अपने समस्त आत्मगौरव अपने समस्त स्वाभिमान को ठग पर मारते हुए उन्होंने कहा होगा—'सब ठीक है—दुनिया के इस कबूतरखाने में सब जस्टीफायड है—। सब कुछ म्योन्युरस—मोस्ट-सुपर-म्यान्युरस है मिस्टर व्यास—माई डियर फेलो ओ।'" और उस समय उनकी हंसिया ने कितना मजा पैदा कर दिया होगा।

अब व्यासजी अपने एक अन्य कमरे में जाकर उस एक्स्ट्रा-सप्लायर से बोले—'ठीक है। अब यह गर्ल यहीं रहेगी। बाकी बात हम कल करेंगे।

सुल्तान कुछ सोचता हुआ बोला—"मगर—।

अब अगर-मगर मैं कुछ नहीं सुनूंगा। काफी रुपया तुमको पहले ही दिलवा चुका हूं। अब तो जो कुछ मुनासिब समझूंगा वह इनाम के तौर पर थोड़ा दे-दिलाकर निपटा दिया जायगा।

'बहुत अच्छा पंडित जी। जैसा हुक्म। मगर कल तो आप इसको—?

मैंने पहले ही कह दिया है कि बाकी बातें कल होंगी। फिर इसके बाद तो कुछ कहने-सुनने की जरूरत रह नहीं जाती।

'जी बहुत बहुत अच्छा। सलाम!

और तब सुल्तान उस कमरे से बाहर हो गया होगा।

लालाजी से मैंने पूछा—'उस दिन जमना से आपने फिर क्या कहा?

हुक्के की नली मुंह से हटाते धुआं उगलते हुए बहुत संक्षेप में वे बोले—मैंने कुछ भी नहीं कहा।

तब मैं यह सोचने लगा कि पति के प्यार की सीमा त्याग देने के पश्चात् क्या इसे क्षण भर के लिए प्रेम का एक कण भी कहीं मिला होगा। और कोई भी नारी प्रेम की गोद में सिर डाले बिना और उसके स्नेहाधारों पर मृणाल जैसी अंगुलियों का कोमल कर-किसलय रक्खे बिना नींद की मीठी-मीठी थपकियां पा ही कैसे सकती है! और फिर प्रेम क्या हलवाई की दूकान पर बिकनेवाले रस-गुल्लों की चाशनी है जिसे कोई भी आदमी किसी भी बाजार में जाकर चाहे जब खरीद लेगा?

पड़ोस में कहीं पास ही किसी व्यक्ति ने अपनी इहलीला समाप्त कर दी है। स्त्रियों के करुण-क्रन्दन का मर्म-भेदी स्वर बढ़ता जाता है!

मैं जानता था आज की रात मुझे सोने न देगी।

हां मेरा ध्यान ज्योंही जमना की इस दुर्दशा पर आकृष्ट हुआ त्योंही मैंने कह दिया— 'बैठो जमना।'

जमना फिर भी खड़ी रही। लालाजी भी कुछ नहीं बोले।

'किसी के मर जाने पर भी कर्त्तव्यों की समाप्ति तुरन्त नहीं हो जाती।' अब मैंने कहा— 'जीवन में चाहे कितने विपर्यय उपस्थित हो जायं परन्तु आदमी को समय पर नित्यकर्म और नित्यधर्म-पालन तो करना ही पड़ता है। मैं तुमसे बातें करूंगा जमना मैं तुम्हारी सुख-दुख की कहानी भी सुनूंगा पर अभी नहीं। सब से पहले तुम स्नान कर लो कपड़े बदल लो चाय या जलपान करके स्वस्थ-चित्त हो लो तब। मैं शान्ति-पूर्वक तभी तुम्हारे सम्बन्ध में विचार करूंगा। जाओ जमना भगवान तुम्हारा मंगल करेगा।'

तत्काल जमना अन्दर चली गयी।

तत्काल लालाजी बोल उठे— 'उजागर!'

'जी सरकार' कहता हुआ उजागर सामने आ खड़ा हुआ।

लालाजी घड़ी देखते हुए बोले— 'मुझे पहले से कहने की याद नहीं रही। राय चन्द्रनाथ आ रहे हैं। उनको गाड़ी भजनी है। हालांकि अब तक तो उन्हें यहां आ जाना चाहिए था।'

इसी समय नीचे से किसीने पुकारा— 'लालाजी।'

और लालाजी पलंग से उठते हुए बोले— 'रायसाहब आ गये।'

एसा कोई विषय कष्ट रहा होगा । मैं पूछता हूं तुम जैसा भोजन अपने घर में करती थी वैसा यहां बम्बई म नसीब भी होता था ? मैं जानना चाहता हूं स्वामी का-सा निश्छल प्रम यहां तुमको कहीं मिल सकता है ? फिर तुम को कमी किस बात की थी ? मेरे विचार से तुम्हारे पास न तो आभूषणों की कमी थी न घर पर तुमको एसा कोई काम ही करना पड़ता था जो तुम्हारे लिए दुखदायी होता। कितनी बड़ी तुम्हारे पिता की इज्जत है—वैसी तुम्हारी ससुराल की मर्यादा है कुछ तो खयाल किया होता तुमने ! मैं पूछता हू—निर्मल गंगाजल छोड़कर नाली का गंदला पानी तुमने पसन्द कैसे कर लिया ?

इसी क्षण राय चन्द्रनाथ साहब उठकर खड़े हो गये । बोले—'अब मैं समझा । तो आपने मुझे जलील करने के लिए यहां तलब किया है !'

लालाजी न उत्तर देने के बजाय राय चन्द्रनाथ जी की ठुड्डी पर हाथ लगाकर कहा—'बिगड़ो नहीं मेरी हालत पर रहम खाओ बेटा । तुम्हारी इज्जत से ही इस वक्त मेरी इज्जत है । जमना ऐसी कोई बात न कहेगी जिससे आपकी शान की तौहीन हो । मगर दुनिया म अगर सचाई वाकई एक कीमती चीज है तब तो इज्जत का सवाल भी उसके सामने नाचीज होगा ।

राय चन्द्रनाथ भड़क उठे । बोले— 'आप लोगों न मुझ इसलिए बुलाया था कि हम ऐसे नाजुक मामले पर आपस म बैठकर बहस कर ! तो आप कर लीजिए बहस और मुझ इजाजत दीजिए । म जहर खा सकता हू पर यह नहीं बतला सकता कि मेरे इस जगह नासूर है !'

और चन्द्रनाथ इतना कहकर कमरे से बाहर हो गये ! तब अस्थिर चित्त विवश लालाजी भी उनके पीछे-पीछे चल दिए । अब उस कमरे में केवल जमना मेरे सामने थी । कमरे का द्वार भीतर से बन्द था और बाहर उजाला फैला हुआ था । इसी क्षण मन्द-स्वर म जमना बोली— मैं अगर आपसे कुछ पूछू तो आप ? है आप ।

तत्काल मैंने कह दिया— अवश्य । बल्कि यही मैं चाहता भी था ।

जमना बोली— 'क्या आप समझते हैं खाना-पीना कपड़ा-लत्ता स्वामी और बच्चों-कच्चों म परे एक सभ्य नारी की कोई आकांक्षा हो ही नहीं सकती ?

'हो क्या नहीं सकती ? इसीलिए तो मैं उन कारणों को जानना और

समझना चाहता हूँ जिन्होंने पति का घर छोड़ने के लिए आपको विवश किया है। अपने विषय का जो एक अतिसाधारण प्रश्न आज हमारे सामने है बिल्कुल उसी का मुँह खोल देना मैंने अधिक उपयोगी समझा।

अभी तक जमना खड़ी थी। अब वह कुरसी पर बैठ गयी। वह कुछ कहने ही जा रही थी कि उसी समय लालाजी आ गये।

तब विवश होकर मुझे कहना पड़ा—'क्षमा कीजियेगा अगर मुझे आपसे यह कहना पड़े कि थोड़ी देर का एकान्त हमारे बीच में आवश्यक हो गया है।

लालाजी तब तक दरवाजे की देहली पर आ गये थे। अब वे पुनः वापस लौट गये चुपचाप बिना एक शब्द कहे हुए। बल्कि मुझे थोड़ा संकोच भी हुआ कि यह मैंने क्या किया! जमना तो मुझे बहुत सभ्य लड़की मालूम होती है।

जमना बोली—"आप मेरे साथ अन्याय नहीं करेंगे कुछ ऐसा मुझे विश्वास हो रहा है।

मैं तुम्हारे विश्वास की रक्षा करूँगा। कहना मेरे लिए आवश्यक था।

"बात यह है कि दुर्भाग्य से मेरे विचार और संस्कार पुरानी पीढ़ी के लोगों जैसे कभी नहीं रहे। जब मैंने कहा कि मैं घोड़े पर चढ़कर घूमने निकलूँगी तब मेरे लिए बढ़िया-से-बढ़िया घोड़ा पिताजी ने मँगवा दिया। आपसे तो परिचय अभी हुआ है। इसलिए कदाचित् आपको मालूम भी न हो कि विवाह से कुछ ही दिन पहले पिताजी ने हमारे घूमने के लिए नयी गाड़ी खरीदी थी। कहने का अभिप्राय यह कि न सिर्फ यहाँ बल्कि वहाँ ससुराल में भी मुझे किसी चीज की कमी नहीं रही। इसलिए यह सोचना तो बिल्कुल व्यर्थ है कि मुझे वहाँ किसी भी तरह का कोई कष्ट था।

पुलकित होकर मैंने कह दिया—"वाह जमना! मैं तुमसे ऐसी ही आशा रखता था। भगवान जानता है तुमने इस वक्त यह बात कह दी जिससे मेरी कल्पना में तुम्हारे लिए सार्वजनिक सहानुभूति का भाव तो मैंने आप ही आप भर गया।

तब उत्साह में आकर जमना बोली—"मैं उन कुल-कलंकिनी नारियों में से नहीं हूँ जो अपने दोस्तों के साथ साफ तौर पर अक्सर कह दिया करती हैं कि मेरे पति में स्वामी होने की योग्यता ही नहीं है! अगर कोई नारी इस प्र

की बात जबान पर आती है तो मैं साफ-साफ शब्दों में यह कहना चाहती हूँ कि वह जिम्मेदारियों में पली कर्तव्य-भावना में कभी रही नारी नहीं वरन् निरन्तर मस्त-मूक प्रवाहिनी वह नारी है—जिसका अन्त नरक-कुण्ड के गन्दे नालों में होता है !

आज मेरे हृदय ने वास्तविक आत्मानन्द प्राप्त किया है। आज मुझे यह अनुभव करने का अवसर मिला है कि सन्तोष और शान्ति का जीवन के निर्माण में कितना बड़ा स्थान है।

कहाँ है लालाजी ? आते क्यों नहीं इस समय ?

और प्रसन्नता से खिले हुए लालाजी ने कमरे में आते-आते कहा—"मैं हाजिर हूँ।

मैंने कह दिया— 'जमना ने आपके गौरव की रक्षा की है। मैं इस बात की शपथ ले सकता हूँ।

जमना बोली— 'मैं रास्ते से बे-रास्ते हो गयी थी यह स्वीकार करने में मुझे जरा भी संकोच नहीं है। लेकिन मुझे इस बात का अभिमान है कि—।

और इतना कहकर उसने कमर से एक तेज छुरी निकालते हुए कह दिया— 'भक्ति के इस प्रतीक ने मेरे आदर्शों की रक्षा की है ! अभी हाल ही में एक बार तो इसने जा भरकर खून पिया है !

इसी क्षण पान चबाते और मुसकराते हुए राय जगन्नाथ भी अन्दर से निकलकर उसी कमरे में आ गये और बोले— आप लोगों की बहुत खबर खतम हो गयी हो तो मैं भी जमना से दो-एक बात कर लूँ।

लालाजी और मेरे मुँह से एक साथ निकल गया— जरूर-जरूर।

पर इसी क्षण जमना बोली— आप इनसे पूछ लीजिये केवल कला-प्रेम के नाम पर मैं इस नगर में पड़ी थी। पर मैं पिताजी की एक लाड़ली बेटी तो हूँ। ठीक समय पर उन्होंने मुझे उस जाल से मुक्त कर दिया जिसमें पड़कर आज भारतीय संस्कृति की सारी मान-मर्यादा नारकीय भोग-विलास-पूर्ण षड्यन्त्रों का शिकार बन रही है !

और इतना कहकर जमना अन्दर के कमरे में जाती हुई अपने पति के पीछे पीछे चल दी।

तभी मैंने काकाजी से कह दिया—"अब मैं आपसे फिर वही प्रश्न करना चाहता हूँ कि सन्तोष और शान्ति का मार्ग जीवन के लिए अधिक कल्याणकारी है या नीतिहीन प्रवृत्ति के नाम पर उस क्रांति का मार्ग जिसमें पड़कर हम निरन्तर पागल कुत्तों की तरह एक दूसरे का कलेजा फाड़ खाने में जीवन की चरम सफलता मान बैठे हैं! वस्तुतः मैं प्रेम के पावन पथ में आप साधना और त्याग के महत्त्व को स्वीकार करते हैं या उस प्रमाद-वृत्ति को जो प्यास के नाम पर इस बात पर विचार ही नहीं करती कि कमल-वन को विदीर्णकर जिस पुष्करिणी-कूल से अभी-अभी दर्जन-के-दर्जन पशु निकल गये हैं कर्दम और कलुष से ओत-प्रोत उस स्थल का पानी अब अभी शान्त और स्थिर तक नहीं हो पाया है!

काकाजी इसके उत्तर में कुछ कहने ही जा रहे थे कि एकाएक इसी समय दरवाजा खुल गया और कमरे के अन्दर जिस व्यक्ति का मुख दिखलायी पड़ा वे और कोई नहीं मुरलीबाबू थे।

इक्कीस

हमारे सामने एक ऐसा अनन्त पथ है जिस पर हम निरन्तर चल रहे हैं। जैसे इस यात्रा का अन्त नहीं है वैसे ही इस पथ का भी अन्त नहीं है। कभी-कभी कुछ ऐसा होता है कि हम जहाँ से चले थे घूम-फिरकर वहीं आ पहुँचते हैं। कभी-कभी जब हम समझते हैं बहुत चल चुके हैं और ऐसा लगता है कि अब तो उस पार पहुँचने ही वाले हैं तभी ऐसा अवसर समान और दुर्योग सामने उपस्थित हो जाता है कि हम सम्भ्रम में पड़कर एक ऐसे रहस्यपूर्ण इन्द्रजाल में जा पड़ते हैं कि हमारी सम्पूर्ण यात्रा विफल सम्पूर्ण उद्योग परिश्रम और सामयिक तपस्याएँ विफल हो जाती हैं और एक पराजय प्राप्त करके हम निखिल विश्व के इस अविकल कोलाहल में अपने आप में सीमित एक अकेले व्यक्ति मात्र रह जाते हैं। मानो रास्ते से दूर पड़े हुए हम निरन्तर यही खड़े-खड़े देखते रह जाते हैं कि वे भी एक दिन वे जब हम इस पथ पर चल रहे थे। वह भी एक साथी था जो हमको चलते चलते इसी पथ पर मिल गया था। उसने कहा था—बड़ी दूर जाना है

चलते चलो। संग-साथ में कुछ रास्ता ही कट जायगा। हम चलते जाते हैं—चलते जाते हैं। रास्ता है और यह कन्था भी जाता है। कभी हमें प्यास लगती है तो यह कोना-कोर निकालकर हमें पानी पिला देता है। कभी उसे प्यास लगती है तो अवसर देखकर कहीं-न-कहीं से मांग-मूंगकर उस सुराही के शीतल जल के एक गिलास-दो गिलास-तीन गिलास तक पिला देते चले जाते हैं। तब उसकी तृप्ति मानो मेरी तृप्ति हो जाती है। लेकिन जनाब यह दुनिया ठहरी। तरह-तरह के जीव पड़े हैं इसमें। ऐसे भी लोग हैं जो साथी की इस प्यास और हमारे इस साहस पर हंसते हैं। लेकिन हम भी ठहरे एक मौजी जीव। हम उस दुनिया पर नित्य हंसा करते हैं तिरस्कार और उपहास की हंसी जो हमारे साहस पर हंसने की चेष्टा करती है। साथी का कोई भरोसा नहीं। भाव पट गयी तो साथ बैठकर खाना खा लिया—कल नहीं पटी तो खाना खाते समय मुंह फेर लिया। रास्ते में मिल गये तो मुसकराकर नमस्कार कर लिया—दूर जाते देख पड़े तो पुकारकर यह नहीं कहा कि ठहरो हम भी आ रहे हैं। साथ निभाना एक हमारा ही नहीं तुम्हारा भी धर्म है।

भाभी को मैं कानपुर से अपने साथ ले तो आया पर इस बार मुझे कुछ ऐसा जान पड़ा जैसे वे धोखा दे रही हैं। एक तो उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता दूसरे जिन साधनों से उनका स्वास्थ्य सुधर सकता है उनकी वे उत्तरोत्तर उपेक्षा कर रही हैं। कुछ दिनों तक वे सवेरे पुष्पवाटिकाओं में घूमने को नित्य मेरे साथ जाती रहीं पर जब मैंने कह दिया कि अब तुम भाभी के साथ चली जाया करो तो उन्होंने घूमना ही बन्द कर दिया।

इधर कई दिन से इस घर में कुछ नयी बातें पैदा हो रही हैं। पता नहीं उनके आधार क्या हैं? नित्य जब मां सोने को पलंग पर जाती हैं तब भाभी उनके पैर दबाने लगती हैं। यद्यपि इसमें कुछ बुराई नहीं है पर मेरी समझ में नहीं आता कि वे क्यों—आखिर क्या ऐसा करती हैं?

मां भी पहले तो मना करती रहीं। पर अब नित्य पैर दबवाने की उनको भी आदत पड़ गयी है। कुछ यह बात भी है कि उसी समय भाभी को उनसे बात करने का अवसर मिल पाता है।

यों तो माँ की आदत ही है कि वे साधारण-सी बात पर बहुत प्रशंसा कर देती हैं। पर आजकल तो भाभी की प्रशंसा का अन्त नहीं है। कहती हैं—ऐसी बहू ऐसी दुलहिन मिली है जैसी किसी राजकुमार को भी नसीब न होगी। मेरी तो इतनी सेवा करती है कि मैं कभी उससे उऋण न हो पाऊँगी। एक भैया है जो इस समय उल्टी गंगा बहा रहा है। वह यह नहीं सोचता कि ईश्वर के कितने बड़े [illegible] हाथ हैं।

एक दिन की बात है भाभी माँ के पैर दाब ही रही थीं कि यकायक माँ चौंक पड़ीं! बोलीं— दुलहिन!

भाभी ने कुछ उत्तर न दिया।

तब माँ ने उनके हाथ थाम लिए। बोलीं—"रहने दो बहुत हो गया।

भाभी फिर भी न मानीं। माँ से छिपाकर आँसू पोंछ डाले। तब माँ उठ बैठीं। कहने लगीं— अगर तुम रोओगी तो मैं पैर न दबवाऊँगी।

भाभी ने कह दिया— 'मगर मैं कहाँ रोती हूँ?

माँ बोलीं—"मुझ से तुम अपना दुःख छिपा न सकोगी दुलहिन। मैं रोने वाले का मुख पहचानती हूँ, कष्ट पहचानती हूँ।

भाभी फिर भी न मानीं और उनके पैर दाबती ही रहीं।

तब माँ ने फिर उनके हाथ पकड़ लिए और उसके बाद वे स्वयं भी रो पड़ीं। रोती हुई वे कहने लगीं— आज तुम अपना सारा दुःख मुझ से कह डालो दुलहिन कोई भी बात मुझ से मत छिपाओ।

उनकी सिसकियाँ किसी तरह शान्त न होती थीं। एक बार वे आँसू पोंछतीं पर फिर दुबारा उनकी आँखें भर भर आतीं। तब वे बोलीं— और मुझे यह भी बतलाओ दुलहिन कि तुम मुझसे चाहती क्या हो?

भाभी कुछ नहीं बोलीं। वे मुँह तक नहीं खोल सकीं। बारम्बार वे यही कहती रहीं कि मैं तो केवल तुम्हारा आशीर्वाद चाहती हूँ मैया। तब माँ ने कहा —"लेकिन क्या मेरे आशीर्वाद में इतना बल है कि तुम्हारा दुःख दूर हो जाय?

भाभी बोलीं—"मैं यह बात नहीं मानती। तुम आशीर्वाद देना ही न चाहो यह दूसरी बात है। पर मैं यह कैसे मान लूँ कि तुम्हारे आशीर्वाद में बल नहीं है।"

भाभी के इस कथन पर मां चुप रह गयी ।

उस दिन कुछ ऐसा हुआ कि यह सारी कथा भाभी ने स्वयं मुझ अविकल रूप से बता दी ।

तब मैंने कह दिया— 'जिस रास्ते से तुम आ रही हो उसमें भगवान तुम्हें सफलता दे ।' पर इस कथन के पश्चात् मुझे स्वयं हंसी आ गयी ।

भाभी बोली— 'तुम तो प्रयत्न की उस सीमा पर विश्वास करते हो जब असफलता रो पड़े ।'

मैंने कह दिया— 'याद है एक दिन तुमने कहा था कि मैं तुम्हें समझ नहीं पायी । पर यह बात बिना मुझे समझे तुम कैसे कह सकी ?'

भाभी पास पड़ी दूब की पत्ती को दांत से दबाती हुई मुसकराने लगी । बोली— 'उस दिन की बात दूसरी थी ।'

तब मैंने कह दिया— 'चलो मुझे तो प्रसन्नता इस बात की है कि आज कल तुम्हारा स्वास्थ्य कुछ ठीक हो चला है ।'

भाभी फिर मौन हो रही । फिर जो बोली भी तो यह — 'स्वास्थ्य तो तभी ठीक हो सकता है जब अब तक लिखे हुए सारे पृष्ठ दो आड़ी लकीरों से काट डालूं और उसके पश्चात् पृष्ठ भाग पर जैसा मन कहे वैसा लिख दूं चाहे चार पंक्तियां ही लिख पाऊं ।'

मैंने कहा— 'अगर वैसाखी कुछ दिन यहां और ठहर जाती तो तुम्हें पावन बना देती ।'

एक निःश्वास को दबाती हुई-सी भाभी बोली— 'कोई नयी बात न होती । यह बात तो अकसर मेरे मन में आयी है कि कर्मभोग की चरम परिणति पापक होने में ही है ।'

सुनकर मैं मग्न रह गया ।

जाड़े के दिनों में प्रायः मैं पैंट पहनता हूं । उस दिन कुछ ऐसा हुआ कि मेरे पैंट के बकसस का बटन टूट गया । पर इस बात का ज्ञान तब हुआ जब मैंने पैंट पहन लिया । इसलिए उसी अवस्था में भाभी के पास जाकर मैंने कहा— 'जरा इसमें बटन तो टांक देना भाभी ।'

भाभी सुई धागा लेकर पास आ पहुँची। एक तो बटन से सटा हुआ पैर और फिर उसका दो इंच मात्र लम्बा ठहरा बकलस। फल यह हुआ कि भाभी को मेरे बिल्कुल पास आकर खड़ा होना पड़ा। मैंने क्षण-क्षण पर अनुभव किया भाभी के केशपाश और बदन से इतनी भीनी-भीनी मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही है कि मेरा मन नियंत्रण से बाहर चला जाना चाहता है। भाभी जब साँस लेती हैं और प्राण उनका डोलने लगता है तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम रत्नाकर के कूल पर खड़े हैं और अमृत लहरें हमारी तृषित-भुग्न देह सभा के लोम-लोम को अपने शीतल सुस्पर्श से इस प्रकार परिप्लावित कर देना चाहती हैं कि एक ही हिलोर के साथ यदि मन-प्राण और मेरा यह कलेवर भी उसमें बह जाय तो मैं इसी जीवन में मोक्ष-पद प्राप्त कर लूँ!

बटन टाँकने में देर कितनी लगती है! अधिक-से-अधिक दो मिनट। पर मैं कुछ ऐसा सोचने लगा कि इन कतिपय क्षणों की सीमा किसी प्रकार बढ़कर यदि युग-की-युग बन सकती—!

बटन टाँक देने पर भाभी पुनः सामीप्य से विलग हो गयी तो मेरी आँखें उनकी आँखों से जा मिलीं। तब निरप्रयास रूप से आप-ही-आप कुछ ऐसा हुआ कि वे मुसकराने लगीं। और साथ में मैं भी अपना चिर संचित हास-निरोध न कर सका। भाभी तो फिर भी मौन रहीं। पर मैं अपनी बात न रोक सका। मैंने कह दिया—"अगर रोज ही बकलस की यह बटन इसी तरह टूट जाया करे तो कभी तुम इनकार तो न करोगी भाभी?"

"ऐसे 'अगर' पर अब मुझे विश्वास नहीं रह गया!" उत्तर में कहती हुई कमरे से बाहर निकलतीं भाभी का एक पैर द्वार की देहली के बाहर था दूसरा भीतर।

× ×

अपनी एक व्यथा-कथा कहता हूँ।

आज मेरा मन बड़ा विद्रोह कर रहा है। क्यों कर रहा है इस बात को समझने की ज्यों-ज्यों चेष्टा कर रहा हूँ त्यों-त्यों अधिकाधिक उलझनों में पड़ जाता हूँ। यह कैसी आग है जिसकी लपटें तो उठती हैं पर शरीर पर प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रभाव नहीं पड़ता। केवल आत्मा-ही-आत्मा झुलस रही है। दिन पर

फफोले उठते हैं और तत्काल फूट जाते हैं! सुनो आगे हैं और सम्मुख सभी कुछ स्थूल रूप में दिखलाई पड़ रहा है। पर जीवन-पथ के कल्पना-पट पर कुछ भी स्पष्ट दिखलाई नहीं देता—सब कुछ घना-घना लाल-लाल हो उठा है रक्त-मांस जैसा। जैसे दोपहर होने आयी हो भगवान भुवन भास्कर बिल्कुल सिर के ऊपर गगन मंडल पर विराजमान हों और धूप चारों ओर ऐसी छायी हो कि धरती तप्त तवा-सी जल रही हो। और उसी समय किसी ने आंखों पर ऐसी पट्टी बांध दी हो कि प्रकाश का प्रतिबिम्ब मुन्दी पलकों पर एकदम घना लाल-लाल समुद्र-सा लहरें ले उठता हो एक ऐसे भयानक हाहाकार के साथ कि विश्व भर मिलकर मानों रक्त का ही एक महासागर बन गया हो!

महीनों हो गये लाली से मैंने अपनी ओर से बोल-चाल बन्द-सा कर रक्खा था। कुछ ऐसा नियम-सा बना लिया था कि जब वह कोई बात पूछेगी तभी जवाब दूंगा अपनी ओर से कोई बात न करूंगा। पर यह संकल्प मन रखना मन ही में था। कहा इस विषय में किसी से कुछ नहीं था। पर आज अकस्मात् मेरा सिया हुआ मुंह खुल ही गया।

दरवाजे पर खड़े दो आदमी चने के समूचे पौधे ठेले भर में फैलाये हुए बेच रहे थे। आवाज सुनकर मां ने ऊपरी आंगन में पड़ी कोह की छत पर बैठे बैठे नीचे के आंगन में झांकते हुए लाली से कह दिया होगा— 'लाली बिटिया बूट तो लेना चार आने के। पैसे मुंह में यहां से फेंक रही हूं।

और लाली जिस समय साड़ी का अंचल उठाकर वे पैसे मां से ले रही थी उसी समय मैं बाहर से आकर घर के अन्दर प्रवेश कर रहा था। अतएव इस स्थिति में यकायक लाली की निरावरण यौवन-सम्पदा पर मेरी दृष्टि जा पड़ी। बस तभी से यह हाल है कि अपने को क्या कर डालूं।

क्यों आखिर क्यों ये यन्त्रणाएं होती हैं? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है रे प्रभु?

दुनिया में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो ऐसी घटनाओं से प्रभावित होकर इसी जीवन-काल में केवल कुछ ही घड़ियों के अन्तर में परम पद प्राप्त कर लेते हैं। और संसार में एक ऐसी भी जाति निवास करती है जिसकी प्यास कभी बुझती ही नहीं। अवसर आ जाय तो उस तलैया का भी पानी पिये बिना न

"लेकिन अम्मा भैया के सम्बन्ध में यह कह सकना बड़ा कठिन है कि व कब क्या चीज पसन्द करेंगे। क्योंकि ऐसा भी हुआ है कि पसन्द की-कराबी चीज उन्होंने लौटा दी है और जिन चीजों को वे कभी पसन्द नहीं कर सकते मौके से विनय या अनुराग कर देने पर उन्होंने उनको ले लेने से कभी इनकार भी नहीं किया। काली चनों के दाना को छिलकों से निकालती हुई यह बात कहने लगी तो भाभी उसको और एकटक देखती रह गयी और मा के मुंह से निकल गया — 'तू बात बहुत करती है काली।

इतने में मोने की आवाज आ पहुंची— अरे काली देख तो दियासलाई की डब्बी कहीं पड़ी-पड़ायी है या नहीं यह डब्बी तो मन्थरा-मार्का प्रचण्ड नारियों की तरह हिन्दू-कोड बिल के संकाबे में आकर काम ही नहीं दे रही है।

भाभी हंसने लगीं। काली उठती हुई बोली— 'डब्बी में चिकनाई वाले हाथ लग जाने से फिर वह बेकार हो जाती है न उसी की बात कह रहे हैं मोने भैया।

काली इस प्रकार सिर्फ एक मिनट ठहर कर चली गयी।

अपने कमरे में बैठे-बैठे आंगन में होने वाली बहुतेरी बातें मैं प्राय सुनता रहता हूं। उस समय मैं बाहर निकलने की तैयारी कर रहा था। काली जब नीचे चली गयी तब एक मिनट रुककर मैं भी नीचे जाने लगा। पर उस समय काली नीचे से ऊपर आ रही थी। जब हम दोनो एक ही सीढ़ी के अन्तर पर एक दूसरे के समक्ष हुए, तब अपने को कुछ और झुकाकर मैंने धीरे से कह दिया— 'तुम से कुछ बातें करनी हैं काली। लेकिन यहा यहा नहीं।

काली प्रसन्नता की स्वाभाविक सरस मुसकराहट का होठों से दबाती और हृदय में छिपे हुए उद्दाम प्यार को मुक्त नयनों की कोरों से काटती मेरे कानों में मुंह लगाकर बोली—"भाभी रानी भी तो मा के साथ मन्दिर में आरती करने जाने लगी हैं। बस तभी ..। और उन्माद से इठलाती हुई मेरे घर के आंगन की ओर बढ़ती चली गयी।

सायंकाल अभी हुआ नहीं था। और उस समय तक जीने में थोड़ा प्रकाश भी था। इसलिए जब वह ऊपर चढ़ने लगी तब मैंने एकबार मुंह घुमाकर उसे देखा तो कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे जीवन यात्रा में भी काली ऊपर उठती चली

आ गयी है और मैं मौन खड़ा-खड़ा केवल उसे ताक रहा हूं ! तब मैं अपने आपसे पूछता हूं सफलता के नाम पर अधर में लटका हुआ क्या मैं केवल प्रतीक्षा के लिए ही बनाया गया हूं ? जिसको मेरा मन चाहेगा समाज सदा उसका विरोध करता रहेगा !—अब अधिक देर के लिए तो मैं घर से निकल नहीं सकता था और अब निकल ही पड़ा था तो तत्काल घर लौटना कैसे ? इसलिए सड़क पर आकर सोचने लगा कि चार छह-घंटे का समय यहीं कहां बिता दिया जाय ? पर देखा तो, जिन क्षणों का मूल्य मनुष्य कभी चुका नहीं सकता कामना के उद्वेलन में उन्हें कैसी निर्ममता से नष्ट कर डालता है ! कहीं सन्तुलन नहीं कहीं एकरूपता नहीं। पर क्या हम इस विषय पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते ?

इसी समय पीछे से दौड़ता हुआ सुन्दरराम आ पहुंचा और बोला—'मां साहब बुला रही हैं ।

मेरी समझ में नहीं आया कि अभी तो मैं घर से बाहर निकल कर आया ही हूं फिर इस समय मेरी क्या जरूरत आ पड़ी ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि फोन में माली से मेरी जो बातचीत हुई है उसे मां ने सुन लिया है और वे मेरे कान खींचना चाहती हैं ! अच्छा चलो देखें, जय नीलकण्ठ-महादेव-ज्योतिर्लिंग-शिवशंकर !

एक-एक सेकंड काटना कठिन हो गया । क्षण-क्षण पर यही कोई कहने लगता—"तुम छिपकर कोई काम कर ही नहीं सकते । तुम कभी बात बना ही नहीं सकते । तुम ठहरे सत्य के उपासक । तुम्हारे लिए इस संसार में शान्ति कहां है ?

सुन्दरराम से मैंने पूछा— क्या बात है ?

पर जब तक वह मुंह खोले तब तक मैं पसीने से लथ-पथ हो गया ।—अभी पकड़ा जाता हूं ! उसने बतलाया—'आपके बाहर आते ही दिल्ली से कोई चिट्ठी आ गयी । उसे पढ़ते-पढ़ते सरकारजी बड़ी बेहाल हो गयी हैं ।

हे भगवान् ! यह तेरी कैसी लीला है ? यह चिट्ठी दिल्ली से कैसी आ गयी ? क्या उसमें कोई ऐसी बात लिखी है जिसमें मेरे ऊपर कोई कुछ दोष लगाया जा रहा है ? क्या मेरी विधि-लिपि मुझ कसौटी पर कसना और मेरा परीक्षण करना चाहती है ? क्या मेरे मुंह पर सब कालिमा पुतना ही चाहती है !

और, तत्काल मैं घर पहुँचा। माँ, भाभी और उसकी मामी ने जैसे तैसे उठाकर भाभी को पलंग पर लिटा दिया था। केशों के गुच्छ बन्धन ढीले पड़ गये थे। मस्तक, नासिका, चिबुक और ग्रीवा पर श्रम-बिन्दुओं के मोती झलक रहे थे और वाम बाहु पर सिर कुछ इस भांति टिका हुआ था जैसे वे सहज स्वभाव से लेट रही हों। हल्के आसमानी रंग के शाल से सारी देहलता आवृत थी। हाँ बायें पैर का अंगूठा कभी-कभी थोड़ा-थोड़ा हिल उठता था।

माँ ने बतलाया— मधु को चौधरी साहब कहीं अपने घर ले गये थे। वहाँ उससे मालूम नहीं क्या बातचीत हुई। उसी पर बिगड़कर बड़ी बहू ने जो मन में आया सो लिख मारा है! ले तू खुद चिट्ठी पढ़ कर देख ले।

यही वह पत्र है और मैं उसे पढ़ रहा हूँ।

२४ विमर्श रोड नयी दिल्ली

प्यारे लल्ला १३-२-५१

उस दिन मैंने कितनी विनती की थी कि मधु को पहले यहाँ ले आना। मैं उसे दो दिन अपने साथ रक्खूँगी। उसके बाद तुम उसे इलाहाबाद ले जाना। और तुमने वचन भी दिया था कि दीक्षितजी की माताजी से पूछ देखूँगा। अगर उन्होंने स्वीकार कर लिया तो मधु को जरूर ले आऊँगा। पर तुमने यहाँ इसकी चर्चा भी न की। यह बात मुझे या तो आज ही तुम्हारे भैया से मालूम हुई पर मैं समझ तभी गयी थी जब तुम बिना भोजन किये यहाँ से लौट गये थे। क्या तुमने यह चाल चली थी? क्यों तुम मधु को यहाँ नहीं ले आये? फिर रानीजू कानपुर में कैसे तुम्हारे साथ होकर इलाहाबाद चली आयीं और क्यों बार-बार मेरे अनुरोध करने पर भी वे यहाँ आना नहीं चाहतीं? उनके मन में रात-दिन कौनसे विचार पैदा होते उठते और गिरते रहते हैं—यह मैं अच्छी तरह सोच सकती हूँ। मुझसे उनका राई-रत्ती भर भेद छिपा नहीं है। मुँह पर न लाने पर भी मन का चोर कहीं छिपाए छिप सकता है! उपेक्षा की इन सब बातों का मर्म ऐसा कठिन नहीं है कि मैं उसे समझ नहीं सकती। इतनी बेवकूफ मैं नहीं हूँ। थोड़ा-बहुत तो मैं मधु के ब्याह में ही अपनी आँखों से देख चुकी हूँ। मैं स्वयं भी तो एक दुखिया नारी हूँ। क्या मेरे आँखें नहीं हैं? क्या मेरे हृदय नहीं है? यह जो बार-बार हर दूसरे तीसरे उनको मूर्छा आती रहती है इसका भी मतलब एक डाक्टर से पूछने पर मुझे मालूम हो

रहा है।"—तो यह तो बड़ी अच्छी बात है। मैंने उनसे कह दिया कि खर्चा तो तुमको देना ही पड़ेगा। सौ रुपये मैं बीस से अभी भिजवा रही हूं और हमेशा हर महीने की पहली तारीख को उन्हें मिलते रहेंगे। जिसमें उनको सुख मिले उसीमें मुझे भी आनन्द है। रह गयी मेरी बात सो मेरा भी बेड़ा भगवान जैसे-तैसे पार ही कर देगा।

अब इस पत्र के बाद उनसे मिलने की कोशिश करना फिजूल है और अब फिर बार मुझसे भी मिलने की कोशिश करना व्यर्थ है। जब तक मैं जिन्दा हूं घर मामलों में हुकूमत मेरी चलेगी—बात मेरी रहेगी। मैं जो कहूंगी सो होगा। मेरी आज्ञा के बिना इस परिवार में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता।

अब इस पत्र के बाद उनका मुझ को कोई भी पत्र लिखना व्यर्थ है और मुझसे मिलना भी व्यर्थ है।

उनका यह विवाह मैंने करवाया था। वह कुलटा ही मैंने अपने पैरों पर मारी थी। मैं सोचती थी—जीवन में कोई ऐसा काम न करूंगी जिससे उनको भी दुःख। मैंने निश्चय किया था कि मैं उन्हें हमेशा छोटी बहन की तरह मानूंगी। मगर उन्होंने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया है उसे मैं किसी तरह सहन नहीं कर सकती। मैं उन स्त्रियों में नहीं हूं जो बात-बात पर बदल जाया करती हैं। मेरा निश्चय जीवन भर का निश्चय होता है।

एक दिन था जब तुमने मेरे हृदय में स्थान बना लिया था और मैं यह सोचने लगी थी कि अगर हम लोग एक साथ ही रह पाते तो कितना उत्तम होता! मगर अब मैं सोचती हूं वह मेरी नादानी थी। जब हृदयों के अन्दर इतना कपट और दुर—छल और प्रपंच—है तब ऐसी सम्भावना ही कहां है! साफ बात है कि जब उनको मेरा सुख सहन नहीं हुआ तब मैं ही उनका ख्याल क्या करूं?

तुम्हारे लिए भी यह एक उत्तम अवसर है। इसमें तुम्हें जो सुख-शान्ति मिलेगी उससे मौसी की वृद्धावस्था आनन्दपूर्वक कट जायगी!

इस पत्र का उत्तर देने की जरूरत नहीं है। केवल सूचना के लिये भेज रही हूं।

तुम्हारी अब तक की—भाभी
विमला

अब मैं सर्प-दंश का अनुभव करने लगा।

सायंकाल हुआ। रात आयी। भी भाभी की चेतना जाग्रत हुई, तो व उठकर बैठ गयी। पर बोली कुछ नहीं। काकी पास बैठी थी। पास ही मां भी लेट रही थी। किसीने खाना नहीं खाया था। साम रसोई में कच्चा रक्खा था। चूल्हे में कोयला और उस पर कच्चे का छीजन पड़ा हुआ था। दियासलाई जलाकर उसमें छुआ देने भर की देर थी। पर सब बेकार पड़ा था। क्योंकि जलती हुई दियासलाई तो मुझे मुर्दा समझकर मेरे शव को छुआ दी गयी थी!

आज तक मुझे कभी क्रोध नहीं आया। मामा भी तो घड़ी-दो-घड़ी से अधिक कभी टिक नहीं सका। पर अब मुझे कुछ करके दिखाना रहा है।

अब तक मैं भी मरा-मरा-सा लेटा था। पर ज्योंही घर की इस दुरवस्था को एक बार मैंने देखा त्योंही मेरे मुंह से निकल गया— भाभी तो मैं लौटकर आऊंगा पर मेरे लिये एक-आध सेर गरम-गरम दूध तो देना मा।

मा को उठने की आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि काकी पास ही बैठी थी। दुःख-सुख म उसके साथ और सहयोग का हमें सदा सहारा रहा है और यह सहारा तो कभी छूटेगा नहीं।

जब गिलास भर दूध मैंने ग्रहण कर लिया तब मा से पूछा—"अब तुम्हारी क्या राय पड़ती है मा? मा ने कह दिया— 'राम मैं क्या बतलाऊं! बहू की जो राय पड़े।

एसा जान पड़ा जैसे मा कुछ कहना नहीं चाहती। पहले व मुझसे कुछ सुनना चाहती है। लेकिन मैं बिना काकाजी की सम्मति प्राप्त किये कुछ कहना नहीं चाहता था।

भाभी बोल उठी— मेरी राय तुमको स्वीकार भी होगी मौसी?

भाभी का इतना कहना था कि मा फट पड़ी। बोली—"पहले तो मैं एसा कुछ नहीं सोचती थी लेकिन अब मेरा मन भी कुछ कहने लगा है। तू सबसे पहले एक काम कर, काकाजी को यहीं बुला ले। उनकी राय के बिना कुछ भी तै कर लेना बस्तवाजी होगी। बड़ी बहू न मेरे बुढ़ापे को आनन्द से बिताने पर जो ताना मारा है वह बेकार नहीं जायगा।

भाभी मां की इस बात को सुनकर भाभी गद्गद् हो उठी। बोली— मैं जानती थी एक-न-एक दिन मौसी को हमारे बीच में पड़ना ही होगा। अच्छा तो है, शान्ति के साथ बीच का समझौता अगर हो जाय तो मृत्यु को अभी मैं कुछ दिनों के लिए टाल सकती हूं।

भाभी इन बातों के बीच प्रायः उसी अवसर पर बोलती हैं जब उस विषय के मर्म को पूर्ण रूप से हृदयंगम कर लेती हैं। पर इस अवसर पर अकस्मात् मालूम नहीं क्या उनके मुंह से निकल गया— क्यों मां, आखिर यही भाभी चाहती क्या हैं? जिस मतलब से उन्होंने इस छोटी भाभी को बुलाकर यह महाभारत रचा था, उसका ध्यान भी अब उनके मन से उतर गया? ठीक तरह से दवा की जाय तो क्या भाभी की तबियत जल्दी अच्छी नहीं हो सकती? मैं तो देखती हूं, यहां आने से तबियत में कुछ सुधार ही हुआ है। और जो यह कहो कि यह मूर्छा क्यों आ जाती है, सो मेरी भाभी को भी सुनती हूं पहले यही हाल था। लेकिन बाल-बच्चा होने पर हिस्टीरिया-फिस्टीरिया न जाने कहां चला गया!

भाभी ने लाली की इस बात पर कुछ भी कहना उचित न समझा। लेकिन पलंग से तुरन्त उठकर वे बाहर की ओर जाती हुई बोल उठीं— देखती हूं लाला का कुछ बोल जल्दी बन सकता है या नहीं।

भाभी का इतना कहना था कि मां भी उनके साथ हो लीं। मैंने तब कह दिया— 'सुन्दरराम से कह देना मां कि लालाजी को बुला लाय। मैं पत्र लिखे देता हूं।'

मां बोलीं— मैं उसे अभी तेरे पास भेजती हूं।

मां और भाभी के पीछे-पीछे जब लाली भी जाने लगी तो मैंने कह दिया— 'चिट्ठी तुम्हीं लिख जाओ लाली। सुन्दरराम यहीं कहीं श्यामा को मुले-राम की नानी काम में लगा होगा।'

मां और भाभी चली गयीं तब मैंने पूछा— 'तुम्हारी पढ़ाई तो ठीक ढंग से चल रही है लाली?'

लाली बोली— पढ़ाई तो और चल रही है, पर तुम थोड़ा समय देकर कभी आधा घण्टा भी जो पढ़ा दिया करते तो साल-दो-साल में मैं पूरी पण्डितानी बन जाती।

'मैं तुम्हें पढ़ा तो देता भाभी' न जाने क्यों बहुत सम्हालते-सम्हालते हुए भी मेरे मुँह से निकल ही गया— 'पर मुझे डर है कि शिष्या बनाते-बनाते कहीं स्वयं मैं ही तुम्हारा शिष्य न बन जाऊँ—कहीं ऐसा न हो कि पढ़ते-पढ़ते तुम स्वयं मुझे पढ़ाना प्रारम्भ कर दो ! क्योंकि प्रायः जमाने में ऐसा हो जाता है। और इस दुनिया में ऐसे योग्य शिष्यों की सदा कमी ही बनी रहती हो ऐसी भी कोई बात नहीं है !

"हटो तुम फिर वही आगम कहाँ से बके न। मुसकराती-मुसकराती एकदम फिर गम्भीर हो पड़ी भाभी। 'कभी यह तक नहीं पूछा कि अफीम आखिर क्यों खायी ! प्राणत्याग देने को भी जो तैयार हुई तो उसमें भी सामने आ खड़े हुए। बोले—मैं तुम्हें मरने न दूँगा भाभी। न जाने मुझे जिन्दा रख कर तुम करोगे क्या ? मैं पूछती हूँ अगर मैं मर ही जाती तो तुम्हें क्या दुख होता ?

इसी समय किसीके आने की आहट पाकर भाभी चुप रह गयीं। मामाजी के नाम मेरा पत्र तैयार हो गया था। तभी मामी ने आकर कहा— 'जान पड़ता है तुम्हारे भाई साहब आये हैं।

विस्मय के साथ मेरे मुँह से निकल गया— 'कौन बड़ेभैया ?

वे बोलीं— तुमको उसी पीछेवाले कमरे में बुला रहे हैं।

तब मैंने भाभी से कह दिया— 'रहने दो फिर देखा जायगा। और मैं उठकर कमरे के बाहर चला आया।

भाई साहब का चरण अभी पूर्ण रूप से स्पर्श भी न कर पाया था कि वे बोले— 'आपी-तूफान भरी कोई चिट्ठी आयी होगी तुम्हारे पास—आयी है न ?

चिट्ठी मेरे जेब में अब तक पड़ी थी। तत्काल मैंने उन्हें दे दी। उन्होंने ध्यान से उसे पढ़ा। फिर मुसकराते हुए कहा— अपनी भाभी को जरा बुलाना नहीं।

छोटी भाभी किवाड़ के बाहर ही छिपी खड़ी थी। आह्वान पाकर आ गयी।

भाई साहब के मुँह से निकल गया— अच्छा तो तुम दरवाजे पर ही खड़ी-खड़ी सुन रही थी कि देखें क्या बातें होती हैं !

भाभी तब भी चुप बनी रहीं।

तब भाई साहब बोले— 'अच्छा हो तुम कुरसी पर बैठ जाओ क्योंकि इनके तो रहने का तो कोई भरोसा है नहीं।'

भाभी अब पलंग पर बैठ गयीं। मैंने कह दिया— 'अच्छा होगा तकियों के सहारे बैठ जाओ।' मैं कुरसी पर आ गया। भाई साहब ने गरम कोट उतारकर खूँटे पर टाँग दिया और शाल अपने ऊपर डाल ली। फिर कुरसी पर बैठते हुए उन्होंने कहा— खाना तो मैं शौक से खा सकता हूँ पर चाय का एक कप मिल जाता तो काम करने में कुछ आसानी होती।

मैंने कहा— 'दीक्षितजी खाना भी आपको शौक से करना होगा और चाय भी आपको दो मिनट में मिल जायगी। पत्र मिलने के बाद हम लोगों की अवस्था चिन्ताजनक हो गयी थी। यहाँ तक कि चूल्हे में कोयला अभी तक ज्यों-का त्यों पड़ा हुआ है। अब अलबत्ता हम लोग ब्रेक-फास्ट की सोच रहे थे। कहकर मैं तुरन्त बाहर आ गया और माँ को सब कुछ समझा-बुझाकर भाभी से भी माँ की सहायता करने का अनुरोध करते हुए कह दिया— अरे भाभी माँ तुम्हें कब की याद कर रही हैं। सुनो तो जरा। शायद घंटे-आध घंटे की अकेले बोल दी गयी है। और पुनः मैं यथास्थान पहुँच गया।

भाई साहब बोले— 'इस चिट्ठी का शायद मुझे पता भी न चल पाता अगर इसकी प्रतिलिपि मुझे एक जगह पड़ी न मिल जाती। अब तुम पूछोगे कि जिसने इस तरह की चिट्ठी भेजी उसने इसकी प्रतिलिपि को भी इतनी मजबूती के साथ क्यों नहीं रक्खा? तब मुझे इस सिलसिले की अन्य बातें भी कहनी पड़ेंगी।

इसी समय छोटी भाभी उठ बैठीं और भाई साहब से बोलीं— तुम इसको खत्म कर लो। फिर मुझे भी कुछ कहना होगा मैं तुमसे बाद पूछूँगी। और इन्हीं शब्दों के साथ वे कमरे से बाहर चली गयीं।

भाई साहब इसी समय भाभी को लक्ष्य कर बोले— अगर तुम यहाँ इन लोगों के सामने इस तरह आराम से नहीं लेट सकती तो इस कमरे की दूसरी ओर जाकर लेट रहो। मगर जो मैं कह रहा हूँ उसको सुनो जरूर क्योंकि उससे हमारे हितार्थियों का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मैंने कह दिया— 'हाँ भाभी! यही मुझे भी उचित जान पड़ता है।

अब भाई साहब बोले—"रामलाल को तो तुम जानते ही हो। कहीं से कतर-ब्योंत करके उसने दस-बारह हजार रुपए इकट्ठा कर पाये थे और इस सिलसिले में वह जेल की हवा भी खा रहा था। लेकिन फिर छूट गया किसी तरह। और, मुझ तो कुछ मालूम न था तुम्हारी बड़ी भाभी के पास उसकी घरेहर रहा करती थी। एक दिन उसने मुझ से कह दिया—रामलाल की रकम जो मेरे पास रक्खी है उसे अब तुम बैंक में ही डाल दो तो अच्छा हो। क्योंकि घर पर जोखिम की चीज रखने में मुझे बड़ा डर लगता है। फल यह हुआ कि उसकी बारह हजार की रकम मैंने अपने हिसाब में जमा कर ली।

इतने में साली ने एक प्लेट में आलू की कचरी के साथ चाय सुखराम के हाथ भेज दी। इसके बाद दो प्लेट्स में गजक लेकर साली स्वयं आ पहुंची। मैंने देखा साली की वेश-भूषा इस समय बिल्कुल बदली हुई है। श्वेत परिधान में उसका एकदम कमल-सा खिला हुआ मुख मुझे उस समय बड़ा प्यारा लग रहा था। साली प्लेट रखकर जा ही रही थी कि चुपचाप मन-ही-मन मन कह लिया—"मन अगर उज्ज्वल रहता है तो उज्ज्वल कपड़ों में आनेवाला व्यक्ति मुझे प्रायः प्रभावित कर ही लेता है।

साली ने दरवाजे से घूमकर पूछा—'ए! क्या तुम मुझसे कुछ कहना चाहते हो भैया?' सुनकर मैं हक्का-बक्का सा हो उठा!—हे भगवान् तेरी यह कैसी लीला है! और प्रकट रूप में कह दिया—'नहीं नहीं कुछ नहीं।' पर उसी क्षण मैंने लक्ष किया साली की बात खाली नहीं गयी।

साली जब चली गयी तो भाई साहब गजक का एक टुकड़ा मुंह में डालते हुए कहने लगे—'इस लड़की को मैंने नहीं पहचाना।

मैंने कह दिया—'नीचे जो किरायेदार पहले से रहते हैं उनकी यह एक विधवा बहन है और एक विद्यालय में पढ़ने जाती है। मां इसे कभी-कभी मदद के लिए बुला लेती हैं।

भाई साहब बोले—'चाय तो अच्छी बनाती है यह लड़की।'—मैंने का यही जल्दी चला जान दिया। आलू की यह कचरी तुम्हारी भाभी भी अच्छी बनाती है। मौसी कह रही थीं—दीक्षितजी ने जब कहा—जी जब कहोगी तब भेज जाऊंगा। पर अम्मा कहती है कि सयानी लड़की को तो अपने घर

में ही सदा रहना चाहिए । बस इस बात पर राजन् झट उस भजन बेन पर राजी हो गया !—मालूम नहीं क्यों यह गजक आज मुझे बहुत पसन्द आ रही है ।

मैंने वहीं बैठे-बैठे कह दिया—'अरे भाभी !

भाभी माँ के पास से बोली— आयी भैया ।

और तत्काल भाभी फिर सामने आ गयी । मैंने कहा—'यह गजक कौन लाया था ? मैं तो लाया नहीं ।

भाभी ने दृष्टि नीची कर ली और मैंने लक्ष किया उसकी अधोमुखी बड़ी-बड़ी आँख उत्तर के पंख पर उस तरह जमी हुई हैं जैसे दुलार में रक्खे हुए कपाल पर प्राय अनुशासन की कोमल हथेलियाँ रहा करती हैं ।

इसी समय भाभी दीक्षितजी के प्लेट पर दृष्टि डालती उमकती हुई दरवाजे के बाहर जाती-जाती कह गयी—'मैं और लिये आती हूँ ।

भाई साहब चाय का घूँट घूटककर प्याला टेबिल पर रखते हुए बोले—रुपया तो खर्च होगा पर रामलाल को इस बार साल भर जेल में न रक्खा तो मेरा नाम बसीधर नहीं । सुनकर मुझे आश्चर्य तो हुआ पर अधिक नहीं । क्योंकि जब भाई साहब ने बातचीत के प्रारम्भ ही से उसका नाम लिया तभी मैंने सोच लिया था कि कुछ दाल में काला है । फिर भी कुतूहलवश पूछा—'आपका क्या है ?

वे बोले— अभी बतलाता हूँ । पर उसी समय भाभी गजक का दूसरा प्लेट ले आयी तो भाई साहब सहसा उसकी ओर देखकर कहने लगे—"यहाँ किस क्लास में पढ़ती हो भाभी ?

भाभी शरमा गयी । बोली—"नाम तो यहीं जुलाई में लिखा जायगा ग्यारहवें दर्जे में । इस समय उसी का कोर्स तैयार कर रही हूँ । "आपको कुछ और ले आऊँ वैसे भोजन भी अभी तैयार हुआ जाता है !

भाई साहब गजक के टुकड़े को दाँत से काटते हुए बोले—"मगर अब इस अवस्था में पढ़ने का विचार मेरी समझ में तो आता नहीं !

"क्यों ? जीविका के लिए ।

जीविका के लिए यह जरूरी नहीं कि स्त्रियाँ बी ए ही पास करें ।

लाली इसी समय कमरे से बाहर हो गयी।

"जैसे आभूषण पहनने के लिए यह जरूरी नहीं कि वे सोने के ही हों। क्यों ? मैंने कह दिया।

'बेशक। लेकिन तुम मेरी दुकान देखने तो कभी आये नहीं तुमसे कहूं भी क्या ! और इसमें बहस की क्या बात है। चार पाँच में तुम्हें एक साथ दिखलाऊंगा। उनको देखकर बतलाना—कौन असली सोने की है कौन नकली—एकदम दो कौड़ी की।

'तो शायद आप कहना चाहते हैं कि जो लोग योग्यता और अनुभव के सहारे जीविका पाने की चेष्टा करते हैं वे बेवकूफ हैं।

'इसमें भी कुछ शक है ? मझो बाबू साहब मैंने ऐसे-एसे लोगों को बड़े बड़े जिम्मेदारी के पदों पर काम करते हुए देखा है जिन्हें उस विषय का रत्ती भर भी ज्ञान नहीं। क्या मैं आपको उदाहरण देकर समझाऊं कि दुनिया में कहीं भी किसी इंजीनियर का कोई लड़का इंजीनियरिंग पास किये बिना इंजीनियर नहीं हो जाता। लेकिन हमारे देश में पेशेवर नेताओं के साले-दामाद योग्यता और अनुभव में कोरे रहने पर भी महीने की दूसरी तारीख को बगल में अपनी पास-बुक लेकर इम्पीरियल बैंक पहुंच ही जाते हैं।

'तो ऐसे लोगों की श्रेणी में आप स्त्री जाति की भी गणना करना चाहते हैं।

इसी समय कहीं से बिल्ली बोल उठी—म्याऊं।

भाई साहब बोल उठे— 'और छोड़िये इस बहस को।

मैंने चाय की ट्रे उठाकर एक तरफ रख दी। भाई साहब कुरसी छोड़कर पलंग पर आ रहे और कहने लगे— 'हां तो रामलाल को जब कभी रुपये की जरूरत पड़ती वह मुझ से मांग ले जाता। उसके हिसाब में कभी गड़बड़ी न हो इसके लिए मैंने एक कापी अलग से बना दी और उसी में उसका जमा-खर्च लिखा जाने लगा। कुछ दिनों तक इसी तरह उसका काम चलता रहा। इसके बाद कभी-कभी वह ऐसे समय अपनी बुआ के पास आकर रुपये की जरूरत बतलाता जब मैं घर पर न रहता। कई बार ऐसा हुआ कि वह जब-जब घर पर आया मैं नहीं मिला।

"तुम्हारी भाभी ने कहा—रामलाल कह रहा था कि तुम फुफाजी से चेक लिखवा लेना। मुझे जब फुरसत मिलेगी—मैं ले जाऊंगा।

"मैं बराबर चेक काटकर घर में दे जाता और वह उस घर से ले जाता। इसमें कभी कोई ऐसी बात नहीं पैदा हुई, जिसमें मुझे शक होता।

"लेकिन संयोग की बात कि एक बार चेक-बुक समाप्त हो चुकी थी। इसलिए मैंने नयी चेक-बुक प्राप्त करने वाला आवेदन-पत्र काटकर घर में दे दिया और समझा दिया कि इससे चेक-बुक मंगवा लेना। वह चेक-बुक ले आया और घर में छोड़ गया। पर फिर महीने भर उसका पता नहीं चला। मैंने भी समझ लिया कि अब उसे रुपये की जरूरत न रही होगी।

इसी समय एक बिल्ला कमरे में आ पहुंचा और मूंछों पर जीभ फेरता हुआ बोला—म्याऊं!

आप कहेंगे कि उससे चेक-बुक मंगवाने की जरूरत ही क्या थी? और आपका यह कहना कायदे से ठीक ही है। चेक-बुक तो मुझे अपने विश्वस्त आदमी से ही मंगवानी चाहिये थी। लेकिन रामलाल तो तुम्हारी भाभी का सगा भतीजा है। उसे मैं अविश्वसनीय कैसे समझता? और इधर कुछ ऐसा हुआ कि एक मकान खरीदने के लिए मुझे एकायक बैंक से रुपया निकालने की जरूरत आ पड़ी। मैंने चालीस हजार रुपये का जो चेक काटा सो चेक तो मेरा कैश हो गया पर पास बुक पर मेरी जो दृष्टि गयी तो क्या देखता हूं कि तीस हजार की एक रकम और मेरे नाम पड़ी हुई है। मैंने बहुत सोचा पर कहीं से भी कोई ऐसी मद नहीं निकली जिसके लिए मुझे रुपया निकालने की जरूरत पड़ी हो। इसलिए अन्त में मैं इसी परिणाम पर पहुंचा कि हो न हो यह रामलाल की ही कृपा का फल है। और संयोग तो देखिये कि कभी-कभी नयी चेक-बुक आने पर उसके पूरे पृष्ठ मैं देखता भी नहीं था। पर उस समय जो देखा तो यह देखकर अवाक् रह गया कि तीसरे नम्बर का चेक ही गायब है! अब बतलाइये सिवा इसके कि हम यह साबित करें कि वह चेक मेरा लिखा हुआ नहीं है, उसपर मेरे हस्ताक्षर भी नहीं हैं, बैंक ने भुगतान करने में गलती की है—मेरे पास और कौनसा मार्ग रह जाता है?

इसी समय भाभी पान देने आ पहुंची तो भाई साहब ने पान लेने के लिए हाथ बढ़ाते हुए बोल उठे—"चूना ठीक तरह से लगाया है न? क्योंकि तुम तो पान

जाती न होगी। और अनुभव के बिना लाल-पीलवाली चीजों का ज्ञान— ।
फिर पान के हाथों को पलंग की पाटी पर घिसते और पोंछते मुसकराहट दबाते मेरी ओर देखते हुए यथास्थान आ पहुंचे और कहने लगे— 'मामला दायर तो कर दिया है मैंने। पर फैसला पक्ष में होगा इसमें सन्देह है। क्योंकि बैंकवालों का कहना है कि मैंने तो फोन से भी आपसे पूछ लिया था। और फोन दुकान में है उस पर उस दिन किसने जवाब दिया और जवाब में क्या कहा कुछ भी पता नहीं लग रहा है। इसके सिवा कि रामलाल तो दुकान पर आया ही करता था और जरूरत पड़ने पर घर का आदमी अगर फोन करे, तो उस पर कैसे अविश्वास किया जाय ? दस हजार के लगभग उसका रुपया हमारे पास जमा था और बीस हजार की रकम उसने हमारी मार ली ? इधर उनका कहना है कि रामलाल कभी ऐसा कर ही नहीं सकता ! जरूर तुम्हीं से कोई भूल हुई है।

तब कुरसी से उठकर टहलते हुए मैंने कह दिया— ठीक तो है। घर के लोग कहीं ऐसा विश्वासघात कर सकते हैं ! जबकि घर के लोग आपस पूछे बिना मुझ इस तरह की चिट्ठी लिखवा सकते हैं जिससे उनके मन के भीतर का ताप संचित विष एक साथ वमन हो पड़ा है !

इसी क्षण भाभी कमरे के अन्दर आ गयी और बोलीं— 'मैं पूछती हूं कि ये सब बातें अगर रामलाल से कही नहीं गयीं तो उसने पत्र का ड्राफ्ट बनाया कैसे ? और अगर रामलाल को ये सब बातें बतायी जाती हैं तो मैं नहीं जानती कि जीजी कहाँ कहां है !

'ये चाहे जहां कहीं हों और तुम चाहे जहां बैठी रहो मुझको इस समय इस बात पर विचार नहीं करना है। मैं तो रामलाल से केवल इतनी मदद चाहता हूं कि रामलाल के मुख पर न सिर्फ कालिख ही पुतकर रह जाय वरन् उसका वह मकान भी नीलाम पर चढ़ जाय जो उसने अभी आयनगर में बनवाया है !

'तुम चाहे जो कार्रवाई करो रामलाल पर पर ये इस मामले में क्या कर सकते हैं ! रामलाल खूनी आदमी ठहरा। वह कत्ल और फौजदारी की कमाई खाता है। इनको जान-बूझकर इस आग में पड़ने की क्या जरूरत है ?' भाभी ने कह दिया।

तब हँसते-हँसते भाई साहब बोले— 'मेरा ख्याल है, राजेन्द्र ने अपनी पैरवी में फिर तुमको वकील तो बनाया नहीं। और बना ही लिया हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन तुम इस तरह रूठी कब तक रहोगी ? घर नहीं चलना है क्या ?

घर का मतलब घर ही हो तो मैं तैयार हूँ।

"भोजन तैयार है, चलिए। इसी समय बरतन पर माल डाले हुए लाली ने आकर कह दिया।

चाइस

दो दिन तक मैंने भाई साहब को रोक लिया। इस बीच एक दिन लालाजी से फिर भेंट हो गयी। मैंने पूछा— 'मुरलीबाबू वाले केस में फिर क्या हुआ ?

लालाजी बोले— "जब तकदीर उसका साथ दे रही है, तब मैं क्या कर सकता हूँ ! सौ रुपये फाइन या एक महीने की सजा हुई थी। हुक्म सुना देने के बाद अर्चना ने वहीं रुपया जमा कर दिया।

अर्चना ने रुपया जमा कर दिया ! मैंने आश्चर्य से पूछा।

लालाजी बोले— मुझे भी इस बात पर आश्चर्य हुआ। —अर्चना का कहना है कि हमारी लड़ाई तो केवल सिद्धान्तों की है। पर जहाँ तक पारस्परिक सहानुभूति का सम्बन्ध है, हम कभी अलग हो नहीं सकते।

मैंने कह दिया— अच्छा !

लालाजी ने पहले सिगरेट जलाकर एक कश लिया। फिर गाड़ी स्टार्ट करते हुए कहा— "मेरे विचार तुमने डावाँडोल कर दिये हैं। इसलिए मैं अपने में खोया रहा हूँ इस समय। लेकिन कुछ हो, मुझे अर्चना लड़की पसन्द आ रही है। जहाँ क्या पाने की जरूरत है, वहाँ वह टस-से-मस नहीं होती। पर जहाँ भावना का प्रश्न उपस्थित हो जाता है, वहाँ मैं उसको नरम ही पाता हूँ।

"विचार मेरा भी कुछ ऐसा ही है। बल्कि मैं तो यहाँ तक सोचता हूँ कि दोनों इस दशा में एक साथ रह सकते हैं। यद्यपि अर्चना कभी ऐसा पसन्द न करेगी।

लालाजी गंगाजी के उस पार झूसी की ओर जा रहे थे। और उस समय हम लोग पुल के ठीक ऊपर थे। मैंने पूछा— 'जमना कहां है आजकल ?

लालाजी सिगरेट की राख बाहर फेंकते हुए बोले— 'अभी तो यहीं है। राय चन्द्रनाथ मलकत्ता दूसरे दिन ही चले गए थ। लेकिन यं चन्द्रनाथ की जमना से कुछ दबते-से देख पड़े मुझको। उनसे इतना तक नहीं हो सका कि अपराध उसने किया या नहीं किया यह बात दूसरी है पर इतने दिन तक वह घर से गायब जो रही इस बात पर कुछ तो क्रोध दिखलाते ! — मेरे विश्वासों और विचारों में इतनी उथल-पुथल पैदा हो गयी है राजेन् कि मेरी पसन्द तक दिन-पर दिन बहुबियाना-सी होती जा रही है। मैं पहले सोचा करता था क्या ऐसे लोग भी सभ्य हो सकते हैं जो अपनी बीबी को इतना मारते हैं—इतना मारते हैं कि खाल उखाड़ कर रख देते हैं ! पर अब मुझे ऐसा लगता है कि जब प्रेम विरोधीपक्ष के लिए हत्याओं तक को जन्म दे सकता है जब वह अपनी बीबी की रक्षा के लिए प्राण तक कुर्बान करा सकता है तब ऐसे मौके पर वो चांटे क्यों नहीं रसीद कर सकता ? क्या खयाल है आपका ?

कार को बाहर सड़क पर खड़ा करके हम लोग बालू पर आकर बैठ रहे। सायंकाल होने में अभी देर थी। झूसी की ओर से एक माल गाड़ी आइबेटिंग को पार करती हुई दारागंज जा रही थी।

मैंने कह दिया— 'लालाजी आप मुझसे सब तरह से बड़े हैं। पर एक बात मैं आपसे अवश्य कहूंगा कि इतनी जल्दी अपना मत बदलते रहने से भी संसार की व्यवस्था स्थिर रह नहीं सकेगी। संक्रान्ति काल में सब कुछ जंजड़ में पड़ जाने की भांति अनिश्चित हो जाता है मानता हू। पर वह स्थिति ही दूसरी होती है। लेकिन युग-युग तक सदा यही कहते जाना कहा तक उचित हो सकता है कि हम एक महाक्रान्ति की तैयारी में लगे हैं। हमें तो विध्वंस करना है। सब पुराने महल पुरानी परम्पराएं पुरानी रूढ़िया और मान्यताएं हमको एकदम से नष्ट कर देनी हैं। हम इसमें समझौता नहीं कर सकते। हमें इसमें कोई विचार नहीं करना है। हम यह सोचना भी नहीं चाहते कि उसके पश्चात् क्या होगा ! — राय चन्द्रनाथ अगर जमना पर कोड़े ही बरसाते तो मैं कहता हूं आपकी आत्मा शान्त और शीतल न होती।

सौदा भी चौपट हो जायगा ! और यह तो आप जानते ही हैं कि आगे बढ़ने का सुअवसर जिन्दगी में एक ही बार मिलता है। इसका फल यह हुआ कि वे जमना को बम्बई जाने के लिए यहीं छोड़ गए। बतलाइये ऐसी दशा में हम क्या कर सकते हैं ! मुझे तो कुछ ऐसा भान पड़ता है कि इन राय चन्द्रनाथ को भी समय के नाम पर मोह हो गया है। वे जमना को पैसा पैदा करने की एक मशीन बनाना चाहते हैं। आप चाहते हैं सभ्यता आप चाहते हैं नैतिकता लेकिन आपने देखा दुनिया क्या चाहती है।

दूर से एक चिता जलती हुई दिखलाई पड़ रही थी। उसकी ओर देखते-देखते मैंने कह दिया—"मैं तो स्पष्ट देखता हूँ लालाजी कि सभ्यता की जितनी उन्नति होनी थी वह हो चुकी। अब हम आगे बढ़ने के बजाय पीछे हट रहे हैं भौतिक होते-होते हम बर्बर हो चले हैं। आप देखते हैं न कि एक चलता-फिरता संसार के मोह-पाश में निबद्ध मानव इस चिता के रूप में लेटा हुआ अपनी समस्त सुख-दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर चुका है। जो देह साबुन और इत्रों से सुवासित की जाती थी अगराग से जो शरीर महकाया जाता था उसका अणु-अणु जल-जल कर भस्म हो रहा है ! सी-सी कर जलता हुआ रक्त बोलता है चटट-चटट मज्जिकाएँ बोलती हैं धू-धू कर अग्नि-शिखाएं बोलती हुई अपना प्रज्वलन प्रकट कर रही हैं। लेकिन इसी शरीर की दाह-क्रिया की ओट में पता नहीं कितनी स्वार्थ-लिप्त जिह्वाएं लपलपा रही होंगी ! साला सोचता होगा कि इसकी जीवन भर की कमाई की रकम मेरे हाथ कैसे चढ़ और बहनोई चाल लगाये बैठा होगा कि यह कब साला से ओट हो और सारा काम-भार मेरे ऊपर आ पड़े। स्त्री सोचती होगी अब मेरे लिये उन गिनी कौड़ियों के सिवा और रक्खा ही क्या है जो वे मुझे छोड़ गये हैं। क्यों न ऐसे अवसर पर मैं कह दूं कि मेरे पास तो क्रिया-कर्म करने को छदाम भी नहीं है।

अपने बनावटी दांत पीसते हुए-से लालाजी बोले—"इस हरामजादे को खम्भे में बंधवा कर पिटवाऊंगा मैंने सोचा था। लेकिन राय चन्द्रनाथ को मुरली बाबू ने ऐसी पट्टी पढ़ा दी कि उनका स्वर ही बदल गया। आपने उस दिन देखा नहीं जब हम उसे गिरफ्तार करवाने पर तुले बैठे थे उसके बंटे भर बाद राय

तब गौरीदास बोले— 'एक बात कहना मैं कहीं भूल न जाऊं, इसलिए अभी आपको बतला देना चाहता हूं कि हमारे देश में भी धीरे-धीरे एक ऐसी नयी पौध पनप रही है जो अपने पिता की आज्ञा भी उस समय टाल सकती है जब उसकी समझ में आ जाय कि पिता हमें गलत रास्ते पर ले जा रहे हैं। अभी उस दिन मेरे एक मित्र बतला रहे थे कि भारत को स्वतन्त्र बनाने में अपने त्याग की बारम्बार दुहाई देनेवाले प्रायः वही लोग हैं जो पद और अधिकार के भूखे हैं और जो देशभक्ति को भी एक पेशा बनाये बैठे हैं।

उन्होंने नेताजी के जीवन की एक घटना की चर्चा करते हुए कहा—रात के दस बज थे। नेताजी उस दिन अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण कुछ थके-मांदे थे। इसलिए वे शयन करने को जाने ही वाले थे कि उसी समय उन्हें एक बात का ध्यान आ गया। तब वे बापूजी के एक तैल-चित्र के समक्ष जा खड़े हुए। उनके चरणों पर उन्होंने कुछ गुलाब के पुष्प चढ़ाये, धूप-बत्ती सुलगाई और उनकी आरती उतारी। फिर वे उनके चरणों पर गिर पड़े। तभी उनके एक बाल्य-बन्धु आ गये। उन्होंने कहा— 'क्यों सुभाष, तुम्हारे कर्म और भावना में इतना भेद ! जिसने तुम्हारी अक्षय कीर्ति को धूल में मिलाने की चेष्टा की आज तुम उसी की वन्दना कर रहे हो ! जिन्होंने तुम्हारी उचित महत्त्वाकांक्षा का विरोध किया उसी के चरणों पर तुम्हारा मस्तक झुक रहा है !'

नेताजी जब तक उठे तब तक उनके नेत्र आंसुओं से तर हो चुके थे। उन्होंने कहा— 'तुच्छ स्वार्थों के बीच से यह कोई प्रतिशोध लेने का प्रश्न नहीं है। यह तो हमारी व्यक्तिगत श्रद्धा, पूजा और भावना का प्रश्न है। तुम इसे क्या समझोगे !'

कहने का तात्पर्य यह है कि त्याग और तपस्या के बदले में अधिकार और अधिकारों का मद भोग करनेवाली जाति और नहीं अधिक होती है।'—बस यहीं उतार दीजिए। यहां मुझे अपने एक बन्धु से मिलना है।

जब वे कार से उतरने लगे तब मैंने उनसे कह दिया— 'सदा आप ही ग्रामलोक का समाचार दिया करते थे। आज मैं आपको यह समाचार देता हूं कि अबकी बार वे बीस हजार के गबन में स्थायी रूप से जेल की हवा खाने जाते हैं।

× × ×

हिलरोड पर गाड़ी पहुँचते ही मैंने ज्यों निर्दिष्ट स्थान पर उतरने के लिए गए तो लालाजी बोले—"थोड़ा ठहरो राजन्, जरा यहां एक बात का पता लगाना है।"

सुनकर मुझे कुतूहल हुआ कि यहां लालाजी को भला किस बात का पता लगाना है! अतः तुरन्त मैं भी उनके साथ हो गया। लालाजी ने किसी से कुछ पूछा नहीं, चुपचाप व जलपान-विभाग के एक ऐसे कमरे में जा बैठे जिसमें दूसरी ओर एक जोड़ा बैठा हुआ ड्रिंक कर रहा था। तुरन्त होटल के मैनेजर ने उनके पास आकर उनका अभिवादन किया।

इसी क्षण लालाजी ने पूछा—"कुछ मालूम हुआ?"

मैनेजर ने संकेत से ऐसा कुछ कह दिया जिससे इतना प्रकट हो गया कि हाँ मालूम हो गया है। तब लालाजी एक ओर उठते हुए बोले—'जरा एक बात सुनिएगा।' और फिर दोनों अलग जाकर परस्पर गुप्त वार्तालाप करने लगे।

इतने में लालाजी मेरे पास आये और बोले—'दस-पाँच मिनट मुझे लग जायें तो ऊब न उठना राजन।'

अब भी मैं समझ नहीं सका कि ऐसी कौनसी बात है जो मुझ से गुप्त रक्खी जा रही है। किन्तु अधिक समय न लगाकर लालाजी तुरन्त मेरे पास आकर बोले— चलो। लेकिन मैनेजर भी उनके साथ यह कहने लगा—"नामुमकिन। एक-एक चाय तो आपको पीनी ही पड़ेगी।

मुझे कह देना पड़ा— क्षमा कीजियेगा, अब चाय-वाय कुछ नहीं। घर पे मेहमान आये हुए हैं। और इनका काम है कि मैं आपके साथ मटरगश्ती कर रहा हूँ।

ऐसा भी होता है बाबूसाहब। यह तो जगह-जगह की वाकफियत की बात है। मैनेजर ने मुसकराते हुए कहा—'मगर और कोई बात नहीं। काम के वक्त रोजमर्रा की भी फारमैलिटी के लिए चाय ठीक नहीं है। अच्छा—।" और अभिवादन में उनके हाथ उठ गये।

लालाजी के साथ हम अभी पहले मजले की सीढ़ियां उतर ही रहे थे कि उसी समय निकट के एक कमरे से अट्टहास का स्वर सुनाई पड़ गया। फिर सब कुछ शान्त हो गया। मैं भी ठिठककर खड़ा रह गया।

लालाजी बोले— 'चलोगे भी या कुछ और इरादे हैं ?

'क्या करूं आदत से लाचार हूं' विवश होकर मुझ कहना ही पड़ा— 'अब या तो इस बगलवाले कमरे में बैठकर हम लोग भी चाय पियें या यहीं खड़े-खड़े इस दम्पति के वार्तालाप का अध्ययन करें।

तब लालाजी कहने लगे—"मगर मैं तो चोर की तरह छिप-छिपकर बातें सुनना पसन्द नहीं करता। 'तब हम लोग पास वाले कमरे में जा बैठ और चाय का आर्डर दे दिया गया। इसी समय वारुणी के भीगे कण्ठ से निकलते स्वरों में छरछराती ध्वनियों के साथ एक कथन मेरे कानों पर गुंजित हो उठा—"अच्छा और जो कुछ हुआ सो हुआ मगर तुमने अपने फादर को उल्लू खूब बनाया डार्लिंग !

कुछ ऐसा जान पड़ा जैसे यह स्वर विकृत होने पर भी है परिचित। तभी मैंने लालाजी की ओर देखा। कुछ ऐसा जान पड़ा कि उस समय उनका मुंह लाल होने के बजाय एकदम स्याह पड़ गया है !

किन्तु इतने में उपर्युक्त कथन का उत्तर भी सुनाई पड़ गया— 'तुम्हें मालूम होना चाहिये सिली डियर कि बात जिन्दगी की हो चाहे मौत की फिल्म-स्टार की दृष्टि में वह केवल एक सवाद है। उसका प्रभाव उस बात की सचाई का असर नहीं—अभिनय-कला का एक गुण है।

अब यह स्पष्ट हो गया था कि ये दोनों और कोई नहीं मुरलीबाबू और जमना हैं। लेकिन लालाजी ने सत्य-मुच्च कुछ नहीं कहा। मैंने भी सोचा—विष पान ही करना हो तो लालाजी के लिए शोर मचाने की तो कोई जरूरत नाम है नहीं। इसलिये मन चुप रहना ही उत्तम समझा।

इतने में ऐसा मालूम हुआ कि ब्वाय उस कमरे में पहुंच कर फिर कुछ ले आया। क्योंकि मुरलीबाबू बोले— फिफ्टी-फिफ्टी।

जमना ने कह दिया— 'नो-नो डियर मिल्क एंड टन एकार्डिंग्ली।

मैंने केवल उनका मन लेने की इच्छा से कह दिया— भाई साहब बड़ी भाभी बात तो ठीक ही कहती हैं । जब रामलाल के ऐसे-ऐसे जबरदस्त सहायक हैं कि वह कुछ भी करे उसका बाल बांका नहीं हो सकता तब आप कर ही क्या सकते हैं !

'बको मत राजेन्द्र ! मुझे उल्लू मत बनाओ ! मैं इन बातों को खूब समझता हूँ । भाई साहब कुरसी से उठकर कमरे में जरा इधर-उधर टहले और फिर पलंग पर आ गये । चंदिया ने आकर कहा— 'सरकार मां जी पूछ रही हैं खाना लगायें ?

इसी समय बिल्ली दरवाजे से निकली और कमरे के उस पार जाती-जाती रुकी बोली—म्याऊं ! और जीभ से मूंछें साफ कर मेरी तरफ देखा और फर्श पर से आगे बढ़ गयी । सड़क पर किसी मोटर का हार्न सुनायी पड़ा ।

भाई साहब बोले— 'खाना खाने को आज मेरी तबियत नहीं करती । जब से आया हूँ घर ही में घुसा हूं । चलो कहीं घूम आयें । और न सही तो सिनमा ही देख आयें । अच्छा जरा अपनी भाभी से पूछना चलेगी ?

चंदिया अब भी खड़ी थी । भाईसाहब बोले— अभी खाना नहीं खायेंगे चंदिया । अम्मा से कह दे—परेशान न हों मेरे पीछे उपवास न करें । प्रेम से खाना खायें—और जो कोई खाना चाहे उसे भी खिला दें और खाना ढक कर रख दें । मानता हूँ कि ये खाने हमारे लिए बनाये गये हैं । पर ऐसा तो नहीं होना चाहिये कि खाना खुद हमीं को खाना शुरू कर दे !

भाभी के पास जो मैं पहुंचा तो क्या देखता हूं कि वे सो रही हैं । रेशमी छींट की दुलाई से अपने कलेवर को उन्होंने आपाद ढक रक्खा है । केवल मुंह तकिया के ऊपर खुला हुआ है । सिन्दूर से सुशोभित मांग लाल-लाल चमक रही है । अपने सुवासित कुन्तल-राशि के संसार से पृथक् होकर एक लट मात्र पलक और कपोल पर डोरे डालती हुई ग्रीवा पर अलसाती मोह की जंजीर से लिपट रही है । चुपचाप मैं एक मिनट खड़ा हुआ उस सलोने चांद के मुंदे कमलनयनों को निरखता रहा । मन में आया—जगा दूं । फिर मन में आया —नहीं । कितने दिनों के बाद आज भाभी को अभी में मीठी नींद की एक झपकी लग पायी है । पता नहीं इसमें स्वामी के प्यार का अधिक भाग है या दिन भर के श्रम का । कौन जाने यह भाभी

सोंदनाओं की मांगलिक भूमिका है या विकसित अतीत की फलवती रचना की आत्मिक मस्क। नहीं जानता कितनी बाधा पारकर इस कमनीय गात में निधि के रूप में यह विश्राम-क्षण प्राप्त किया है। —नहीं जानता कच्ची नींद में क्या देना उन्हें मेरा बचपन लगता या दुर्लभ प्यार का आकस्मिक आघात। यही सोचता हुआ मैं जो चुपचाप लौटने लगा तो अकस्मात भाभी की आँख खुल गयी। झट से उठ बैठी। बोलीं—"अरे तुम हो।

मैंने पूछ लिया—"क्यों क्या तुम मुझे भाई साहब समझ रही थी?

सुनकर वे मुसकरा उठी। फिर बोली— केवल समझ लेने से क्या होता है इस दुनिया में। फिर दुलाई एक ओर समेट दी और आगे बढ़कर कहने लगीं—"काश इन के मानों में अगर इतनी शक्ति होती कि व जीवन के सामने डटकर खड़े हो जाते और इतना भर कह देते कि यथार्थ मैं हूं आवश्यकता मैं हूं विद्रोह मैं हूं प्राण मैं हू निश्चित भविष्य मैं हू तुम मेरे सामने से हट जाओ तुम दूर हो जाओ मरी नजरों से तुम अनाचारी हो वर्तमान के बन्धन हो भावना-कुंज के द्वार के पशु हो सभ्यता के और राक्षस हो अन्ध-विश्वास के—तो कितना सुन्दर होता यह संसार।

पास ही कुर्सी पड़ी थी। उसी पर बैठते-बैठते मेरे मुंह से निकल गया—"अगर भाभी मैं तो सोचता हूं तब भी शरीर और मन के कामों में एकता न होती। पुरातन संस्कारों और आधुनिक मन की स्वच्छन्द वृत्तियों में कोई साम्य न होता। जीवन के नाते मन के नातों से तब भी इसी तरह टकराया करते। अपनी वस्तुओं में रस न मिलता और दूसरे की वस्तुएं प्राप्त न हो सकतीं। तब उसकी प्रतिक्रिया का बुखार चढ़ा करता। प्राप्त भी हो जाती और बुखार भी उतर जाता तो व वस्तुएं स्वयं दूसर की उधार हो जाती। क्योंकि उन पर एकाधिकार नष्ट हो जाता। तब एक नया बुखार चढ़ता और बहुत दिनों तक तो वह चढ़ा ही रहता। फिर अगर उतरता भी तो नये पथ्य की मांग बराबर रहता। और सभ्यता की वृद्धि तो तब तक इतनी हो न पाती कि पथ्य के प्रकार बदले जा सकते। "क्या तुम समझती हो कि सीमाओं के बिना कभी तुम मेरी भाभी रह सकती थी?

"भाभी मैं न रहूं कुछ और बन जाऊं, तो क्या तुम मेरे राजेन्द्र न रहकर और हो जाओगे? या मैं ही जिन रक्त-मांस-अस्थि-मज्जा की भाभी हूँ वह न

रहकर कुछ कीचड़-मिट्टी-कंकड़-पत्थर और राख की बन जाऊँगी ! लेकिन क्या बन जाऊँगी और क्या नहीं बन सकूँगी इसका निश्चय बन या बनाये बिना केवल अनुमान से समझ लेने मात्र से जब काम चल जाता है तब और आगे बढ़ने की आवश्यकता ही क्या है ? क्योंकि तुम तो उस आदर्श के उपासक हो जो आज तक होता आया है। कैसे हुआ है यह बात दूसरी है। तुममें इतना साहस ही कहाँ है जो मुँह पर साफ़-साफ़ कह सको कि जो अब तक होता आया है वही सत्य और उपादेय नहीं है जो नहीं हुआ है लेकिन होना ही चाहिये वह भी उत्तम और उपयोगी है।

'उत्तम और उपयोगी समझकर जिन अतिसभ्य कहलानेवालों ने बड़े-बड़े प्रयोग किये हैं उनके भी चेहरे मैंने देखे हैं भाभी ! इसलिए कभी यह सोचने के भ्रम में मत पड़ना कि जो प्राप्त है वह विष ही विष है और जो दुर्लभ है वह अमृत का अगम रत्नाकर है। क्योंकि सुलभ भी प्राप्त होकर जब सुलभ नित्य और साधारण बन जाता है तब फिर अतीत के अमृत का वह बूँद भी विष बन जाता है जिसकी प्राप्ति के पीछे युगों की तपस्या और साधना त्याग तथा बलिदान का अनन्त इतिहास छिपे रहते हैं। अतृप्ति से जिस असन्तोष का जन्म होता है वह जीवन को आगे बढ़ाता है मानता हूँ। परन्तु आमंत्रित अतृप्ति का असन्तोष प्राय: निष्प्राण होता है। और काल्पनिक अतृप्ति का असन्तोष तो जीवन में क्रान्ति नहीं प्रमाद उत्पन्न करता है। कभी सोचकर देखा है भाभी कि बहुतेरी अतृप्तियों को हम अपनी अयोग्यता अथवा अहंकार से स्वयं ही बुला लेते हैं। हम उन कारणों अभावों और दुर्बलताओं को दूर करने की कभी चेष्टा ही नहीं करते जो हमें अतृप्ति और असन्तोष के निकट पहुँचाती हैं। लेकिन हम बेकार बहस बढ़ा बैठे। भाई साहब ने पूछा है सिनेमा देखने चलोगी ?

'तुम भी चल रहे हो ?

'मेरा क्या है चल भी सकता हूँ। यद्यपि चाहता तो नहीं हूँ कि टाल जाऊँ।

'क्या ?

'इसलिए कि मैंने तुम्हारे शान्त मानसरोवर में हंस की भाँति तैरने के जो नाना प्रयोग किये हैं अब मैं उन्हें वापस ले लेना चाहता हूँ भाभी। आह ! वे दिन

मन हम हँसने-बोलने में कोई कोर-कसर नहीं रखते थे ? लेकिन तब तुमको कभी मूर्छा नहीं आती थी। उस समय तुम्हारे जीवन में ऐसी कोई अशान्ति ही न थी जैसी अब मैं निरन्तर देखता हूँ। सच कहता हूँ मुझे तो आज यह स्पष्ट देख पड़ता है कि तुम्हारी इस दुरवस्था के मूल में मेरे बचपन का काफी बड़ा हाथ है।

"जानते हो डाक्टर साहब ने एक ऐसी दवा दी है जिसे यदि मैं मूर्छा आने की आशंका से आधे मिनट पूर्व ग्रहण कर लूँ, तो फिर मूर्छा अगर आती भी होगी तो न आवेगी। इसलिए मुझे वैसा कुछ डर नहीं है। अब तुम जो चाहो सो कह सकते हो। मगर एक बात कहो तो मैं भी कह डालूँ। तुम तो कभी उस तरह खामोश न थे। पेट के बचपन में जब तुम मुझ से अटल लगाया रहते थे तब याद है तुमने क्या कहा था ? और इतना कहते-कहते भाभी ने एक शीशी का कार्क निकाला मुँह खोला और शीशी उड़ेलकर गट-गट दो घूँट पी लिए।

मैंने कह दिया—"वह भी मेरा बचपन ही था भाभी।

"तो अपना वही बचपना तुम मुझे क्या नहीं दे देते ? याद है उस दिन जब मैं तुमको अपना हाथ दिखाने आयी थी तब तुमने मुझे अलमारी से थर्मामीटर निकाल कर दे दिया था। आखिर तुम मेरे प्राण क्यों लेना चाहते हो ?

"मुझे तुम्हारे प्राण लेने की जरूरत ही क्या है भाभी ? वे तो कभी के मेरे लिए प्राणदायक हो चुके हैं। इस कथन के साथ मैंने देखा कई दिनों के बाद आज फिर भाभी की आँखों में आँसू आ गए। रूमाल निकालकर मैंने झट से उनके आँसू पोंछ डाले। यद्यपि मैं जानता हूँ किसी भी तरह मैं उनके आँसू पोंछ न सकूँगा। फिर मैंने कह दिया— तो मैं भाई साहब से कहे देता हूँ कि भाभी सिनेमा देखने नहीं जावेंगी।

वे बोलीं— हाँ कह दो।

और तब मैं चुपचाप भाई साहब के पास चला आया। कमरे के अन्दर पहुँचने पर मैंने देखा गरम सूट पहने हुए भाई साहब शीशे में अपना मुँह देख रहे हैं। तब एकाएक मेरे मुँह से निकल गया—

देखने क्या हैं वे अपने को
मरने की चाह मेरे सपने को !

'क्या मतलब ?' उन्होंने पूछा।

प्रयत्न करके हँसते-हँसते मैंने कह दिया—"कुछ नहीं, यह और बात थी!"

भाई साहब के केश श्वेत हो चले हैं, मुख पर कुछ झुर्रियाँ भी झलकने लगी हैं। फिर भी वेश-भूषा से अपनी इस अवस्था को यथासम्भव प्रच्छन्न रखने की चेष्टा किया करते हैं, यह जानकर मुझे सचमुच प्रसन्नता हुई। लेकिन तभी उन्होंने कह दिया—'बात कह तो तुम मेरे लिए रहे थे। लेकिन पूछने पर क्यों टाल गये, यह मेरी समझ में नहीं आया।'

मैंने उनकी छड़ी उठा ली और किवाड़ के ऊपर उसे टिकाते हुए कह दिया—'एक बात आपसे मुझे कहनी है और मौके से याद भी आ गयी है। कहीं ऐसा न हो कि कहना ही भूल जाऊँ, इसलिए अभी कहे देता हूँ।—डाक्टर सिनहा आपको मालूम ही है, भाभी का इलाज कर रहे हैं। आप उनसे जरा मिल लेते तो अच्छा होता।'

भाई साहब बोले—'तो चलो, उधर होकर ही सिनेमा के लिए चल चलेंगे। तैयार हो गयी तुम्हारी भाभी ?'

मैंने कह दिया—'जब मैं पहुँचा, तब तो सो रही थीं। फिर जो जगीं तो बातें करने लगीं।'

'तो उन्हें साथ क्यों नहीं लिया ?' कहते-कहते भाई साहब ने सिर का एक सफेद बाल खींच ही लिया।

'चेष्टा तो मैंने ऐसी ही की थी। बल्कि चुपचाप लौट ही रहा था कि अकस्मात् उनकी खुलती आँखों ने मुझे लौटता हुआ देख लिया। धीरे से बोलीं—'सुनो-सुनो, यहाँ आओ।'

फिर जो मैं सामने आ गया तो बोलीं—'अरे तुम हो!' और शरमा गयीं।'

मैंने कह दिया—'यह गलती मेरी नहीं, भाई साहब की है।'

मुसकराते हुए भाईसाहब बोले—'तुम बड़े शैतान हो।—अच्छा फिर अन्त में तै क्या रहा ? तैयार हो रही है न ?'

तब मुझे कह देना पड़ा—'मैं तो सोचता हूँ उनको खाना-वाना खिलाकर आराम करने दिया जाय। तब तक हम लोग डाक्टर सिनहा के यहाँ हो लें।'

कि पैर फिसलें और तू मेरे ऊपर आ गिरे। मैं कमजोर आदमी ठहरा मर ही जाऊंगा।

यद्यपि भाभी ने मेरे इस कथन के उत्तर में केवल जरा-सा हंस दिया पर मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह कह रही हो—'हूं बस तुमसे कहते बनता है। जो मुझे जीवन देने के लिए पैदा हुए हैं वे इतने कमजोर कभी हो नहीं सकते।

अब हम भाई साहब के साथ सड़क पर आ गये। तांगा देख पड़ते ही हम लोग उस पर जम गये और मैंने सहसा पूछ दिया—'भाई साहब सच कहना आप कभी नदियों में तैरे हैं?

अनेक बार। बचपन में वर्षा ऋतु को छोड़कर बाकी हर मौसम में जंघाली को पार करना तो मेरे लिए बायें हाथ का खेल था।

'और किस नदी में तैरने का अवसर मिला?"

यों तो रिन्द नदी को वर्षा में भी कई बार तैर कर पार कर चुका हूं।

"अच्छा जब आप स्नान करने जाते थे तब रिन्द नदी को कितनी ही बार पार करते होंगे।

'इतना फालतू आदमी मैं नहीं हूं कि नदी में तैरने के सिवा मुझे और कोई काम ही न रहा हो। लेकिन काम पड़ गया है तो दो-दो घंटे भी तैरते बीत गये हैं। अभी गत वर्ष ही एक बरात को पार उतारने के लिए मुझे ही आगे बढ़ना पड़ा था।

तो आप वीर पुरुष हैं! कहकर मैं थोड़ा रुक गया। भाभी मुसकान दबाती हुई-सी मेरी ओर देखने लगी।

तब मैंने कह दिया—"लेकिन भाई साहब सच पूछिये तो इन नदियों का कोई भरोसा नहीं। ऋतु के अनुसार ये घटती-बढ़ती रहती हैं। इसलिए केवल पुरुषार्थ दिखलाने मात्र के लिए इनको अनेक बार पार करना मूर्खता है। और बरात में भी अपनी सवारी की घोड़ी को छोड़कर दूसरी गाड़ी को पार उतारने में आपके मन में शक्ति-प्रदर्शन का ही भाव प्रमुख रहा होगा यह मैं जानता हूं। पर संतुलन मनुष्य को कभी खोना नहीं चाहिये क्योंकि जिम्मेदारियां ही हमारी सफलता की सब से बड़ी कसौटी हैं।

तब भाई साहब यकायक बहुत गम्भीर हो उठे और बोले— 'तुम साथ चलोगे तो काम हो जायेगा ।'

मन-ही-मन प्रसन्न होकर मैंने सोचा—तीर ठीक मर्मस्थान पर लगा है ।

हम डाक्टर साहब के यहाँ पहुँच गये थे । जाते ही मैंने उनसे भाई साहब का परिचय करा दिया । वे एक इंजक्शन दे रहे थे । बोले— 'आपने बहुत इन्तजार करवाया । इनका मरज कभी का अच्छा हो गया होता अगर आपसे जल्दी भेंट हो जाती ।'

भाई साहब कुछ असमंजस में पड़ गये और तभी मैं मौका देखकर लेन से रास्ते थोड़ी देर के लिए वहाँ से चम्पत हो गया ।

डाक्टर सिन्हा के यहाँ जब हम लौट कर पहुँचे तो क्या देखते हैं—बेंच पर एक दुबली-पतली श्यामवर्ण की नारी बैठी है । अतिसाधारण वेश-भूषा है । हाथों में काँच की नीली-पीली चूड़ियाँ हैं । धोती दो-तीन दिन की पहनी हुई । कुर्ती मारकीन की सो भी साफ नहीं । केश रूखे-रूखे-से दृष्टि से तरस लेकिन इतनी स्थिरता कि जिस वस्तु को देखना एकदम टकटकी लगाकर देखना और देखते ही रहना कुछ कहना नहीं किसी से । मुख पर न प्रसन्नता न उदासीनता न क्षोभ न क्रोध । मुँह सूखा-सूखा-सा कोई आकांक्षा नहीं—कोई चाह नहीं ।

देखते ही मैंने समझ लिया—बीमार है कुछ दिनों से ।

इतने में भाभी ने पूछा—"कोई इसका धनी-धोरी नहीं है ?

दूसरी बेंच पर एक मुसलिम मजदूर बैठा था । बोला— 'दिमाग सही नहीं है ।

मैंने अनुभव किया—दुःख की घड़ियों में भी कितनी निर्ममता से प्रकृति की अठखेलियाँ चलती रहती हैं । प्रश्न कुछ है —उत्तर कुछ !

भाई साहब बोले— 'डाक्टर साहब अगर आपकी बात सच्ची निकली तो मैं आपको जीवन भर याद रखूँगा ।

उसी क्षण वह नारी कुछ ऐसा मुस्कुराने लगी कि मुझे मालूम हुआ मानो कह रही हो— मैं किसीको याद नहीं रखती । साथ ही मैंने देखा उसके दाँत टूटे हुए हैं । वह हँसी—सूखी भूखी हँसी—सूखी बड़ी प्यासी हँसी कि—।

डाक्टर साहब बोले— 'यह तो हमारा रोजाना का काम है जौहरी साहब। इसमें झूठी राम कितने दिन तक चल सकती है।

इतने में कम्पाउण्डर आकर उस नारी को दवा पिलाने लगा। लेकिन उसने दवा पीने से इनकार कर दिया। कम्पाउण्डर का हाथ पकड़ लिया उसने। बोली —'मुझे दवा मत पिलाओ मुझे दवा मत'—मुझे दवा मुझे!

तभी वह मजदूर बोला— 'इसका मायाम बच्चा जाता रहा है। तब से यही हाल है। न खाना न पीना न सोना। रात-दिन चुपचाप पड़ी-बैठी रहती है। दूध देखकर भाग खड़ी होती काँपने लगती और कुछ न जाने क्या बुदबुदा उठती है।

कम्पाउण्डर बोला— 'इसका हाथ तो पकड़ लेना जरा।

तभी उसका पति आ गया। बोला— 'ठहरिये मैं आ गया। हां क्या हाथ? —हाथ पकड़ना है? और उसने उसके दोनों हाथ पकड़ लिए। लेकिन उस नारी ने तो दांत बन्द कर रक्खे थे। फिर भी कम्पाउण्डर उसे दवा पिलाना ही चाहता था। उसने मिनटों से दांत खोलने की कोशिश की। एक दांत कुछ छोटा था समझा खोल ही लेंगे। लेकिन उसने दांत नहीं खोले और दवा उसकी कुरती पर फैल गयी।

उसने उसी समय कुरती ऊपर को खिसका दी तो उसके वक्ष-कन्दुक खुल गए। वर्ण के अनुरूप उसके श्याम नहीं छोटे-छोटे गोरे गोल-मास मुख प्यासे और उपवास-दग्ध।

तभी मुझे ध्यान आ गया। एक दिन काली को इसी रूप में देखा था आज इसको देख रहा हूं। काली श्यामा मैया है और यह दुबकी पतली बछिया!

उसका पति शिकायत करने लगा। बोला— 'इस कदर परेशान रहता हूं इसके मारे कि खाना-पीना ही नहीं काम पर जाना तक मुश्किल हो गया है। खाना नहीं खाती लेकिन मुन्ना का पाल रक्खा है उसकी जूठन जमीन पर गिर पड़ा करती है उसे चुनने लगती है। कहती है— मेरा सूरज का लेना था न?

और सूरज उसी बच्चे का नाम था।

फिर उसने अपनी उस भार्या से कहा— 'मैं अब चला जाऊंगा यहां से। तू अपनी बहिन के यहां रह सकती है—लेकिन मैं वहां कैसे रह सकता हूं! तू

पर इधर कुछ दिनों से मनुष्य की पूर्ण ऊँचाई के अन्दाज से मैंने भाभी के कक्ष मे एक दर्पण लगा रक्खा है। इसलिए नहीं कि मुझे अपना रूप देखने की बड़ी हौस है। इसलिए भी नहीं कि मैं शरीर को रंगा चुगा रखने को कोई बहुत उच्च कोटि की रुचि मानने वालों में हूं। वरन् केवल इसलिए कि अपनी वेश-भूषा के प्रति असावधानी मेरी प्रकृति का एक लक्षण बन गयी है वह किसी प्रकार संयत हो जाय।

पर उस दर्पण के सामने एक दिन भाभी कुछ नृत्य की-सी मुद्रा में खड़ी थी तब तक मैं वहां जा पहुंचा।

मुझे आता देख वे झट सम्हल गयीं। मैंने उनके नयनों की भाषा पढ़ने की जो चेष्टा की तो कहने लगीं— 'जाओ जाओ अपना काम देखो।

मैंने पूछा—"क्यों मैं तुम्हारी कोई चीज छीन तो रहा नहीं हूं जबरदस्ती जो तुमको मेरे निकट आ जाने से भय लगता हो।

भाभी कुछ नि श्वास को दबाती हुई-सी कहने लगीं— अब तुम मुझ से छीनोगे भी क्या ?

मैं उनकी इस बात का मर्म समझता हूं। मानता हूं कि हृदय दे देने के पश्चात् फिर कोई चीज देने को रह नहीं जाती। फिर भी कभी-कभी एक बचपन की-सी इच्छा अकस्मात् फूट पड़ने के कारण सहज भाव से मैंने कह दिया— 'क्यों तुम्हारे पास कमी किस बात की है ?

'कमी मेरा भी ऐसा ही विचार था। रूमाल से बहते पानी के अतिरेक को पोंछती हुई वे कहने लगीं— 'लो आज मैं अपने मन का चोर तुम्हें साफ-ही साफ बतलाये देती हूं। अब पर इस बात पर मेरा एक अटल दृढ़ विश्वास था वह कुछ मिट-सा गया है। देखती हूं सचमुच तुम मेरे लिए दुर्लभ हो। मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसके लिए कभी तुम्हारे मन में कोई लालच उत्पन्न हो सके।

कभी मैं रोता नहीं हूं। विशेष रूप से तब जब मुझे अतिशय क्लेश होता है। पर आज मुझे कुछ ऐसा क्लेश हुआ जिसे मैं संवरण न कर सका। पर ठीक ठीक शायद कह भी नहीं सकता कि क्लेश ही हुआ। क्योंकि कुछ ऐसा प्रतीत होता है मानो क्लेश उतना नहीं हुआ जितना सुख मिला या यों कह लीजिये मेरे अहम्

की तृप्ति मिली। जानता हूँ संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो भावना के सुख को केवल भावुकता कहकर उपेक्षा की हँसी हँस दिया करते हैं। पर संसार में ऐसे लोग भी तो हैं जो भगवान की सत्ता पर विश्वास नहीं करते। जो अवसर मिलने पर यह भी कहने को तत्पर हो सकते हैं कि समाज की दृष्टि में मैं जिनका पुत्र समझा जाता हूँ हो सकता है कि मैं उनके सिवा किसी अन्य पुरुष का पुत्र होऊँ। क्योंकि ऐसी भी माताएँ हैं जो स्वयं निश्चयपूर्वक ऐसा नहीं कह सकतीं कि मेरी यह संतान अमुक के ही संयोग की रचना है।

और भी एक बात है। कम-से-कम मैं ऐसा ही अनुभव करता हूँ दूसरों की बात मैं नहीं जानता। वह यह कि जिन्हें मैं अपने लिए दुर्लभ मानता हूँ वे जब स्वयं मुझे दुर्लभ मान लें तब दोनों ओर की इस दुर्लभता को मैं सुलभ कैसे मानूँ! प्रेम की पावन अमृत-गंगा के दोनों किनारे जब एक दूसरे को अपने लिए दुर्लभ मान बैठें तब उनके बीच में बहती यह जीवन-धारा अपने दोनों हाथ फैलाकर उन्हें जितना कुछ अपने में समेट लेती है उसमें सुलभ तो कुछ रह ही नहीं जाता।

तब कदाचित् यही सोचकर मेरी आँखें आप ही आप सजल हो उठीं। और मैंने कह दिया— 'भाभी दुर्लभ रहकर ही जब तुम मेरे लिए भाभी बनी हो तब सुलभ के लोभ में पड़कर मैं अपनी ऐसी भाभी को खो भी कैसे सकता हूँ! संसार मिट जाय लेकिन मेरी भाभी की वह भेंट अमिट बनी रहे। जरा सोचो भाभी इस भावना को मैं कैसे त्याग सकता हूँ!'

यों कहने में यह बात चाहे बहुत साधारण ही क्यों न हो किन्तु मुझे आज अनुभव हो रहा है कि सचमुच मन के ऊहापोह की कुछ घड़ियाँ बड़ी विचित्र हैं। ऐसे तो कभी-कभी कोई संयोग भी इतने अद्भुत हो जाते हैं कि न हम उन्हें क्लेश कह सकते हैं न आनन्द।

प्रेम के मार्ग में क्लेश और आनन्द दोनों एक ही स्थिति के दो रूप हैं।

उस दिन भाभी से एकान्त में बात करने का फिर अवसर ही नहीं मिला। दूसरी बार मौसी उनसे जब मिली भी तो उनके समक्ष मैं वह बात कह न सकता था। तभी मैंने मौसी की उलझन के सम्बन्ध का वह टुकड़ा उनके सामने पेश कर दिया था। पर आज कुछ ऐसा हुआ कि मैं बैंक से लौटते हुए अग्रवाल-स्टोर्स वालों के

सामने वाली सड़क में जो मुड़ा तो काली किताबें लिये अपने विद्यालय से लौट रही थी। तांगा जब उसके सामने पहुँचा तो मैंने कह दिया—"बस यहीं रोक दो। और हम वहां से काली के साथ हो गये।

पास आते ही काली बोली—'क्यों आपको तो मकान के सामने उतरना था!'

मैंने कहा—'आजकल बात करने का बिल्कुल अवसर नहीं मिलता। उस दिन आरती के समय बातें करने का निश्चय किया था सो उस चिट्ठी ने गड़बड़ कर दिया। फिर आ गये भाई साहब।

चौराहे पर पहुँचते ही काली ने सामने आते हुए ट्रक से बचाने के इरादे से मेरा हाथ थामकर मुझे रोकते हुए कह दिया—'ए बचियेगा।

तब वहीं एक स्थान पर रुककर मैंने एक निश्वास लेते-लेते पूछा—'सच सच बतलाओ काली आज तक मैं समझ नहीं सका न पूछने का ही अवसर मिला न स्वयं तुमने ही बतलाने की आवश्यकता समझी कि उस दिन ऐसी क्या बात थी जिसके कारण तुमने आत्मघात करना चाहा था।

बस मेरा इतना कहना था कि काली के नयन सजल हो आये।

परन्तु तुरन्त उसने आँसू पोंछ डाले। फिर इधर-उधर देखती हुई बोली—— बातें ही करनी हो तो फिर कहीं बैठकर की जाय। यहां तो—'।

'हां यह तुमने ठीक कहा। विद्यालय से लौट रही हो। कुछ थकी हुई भी हो। अच्छा चलो हम तुम्हें एक अच्छे-से रेस्तोरां में बैठकर चाय पिलायें। वहीं बातें भी हो जायगी। मेरे इस कथन पर काली ने ऐसी दृष्टि से मुझे देखा जिसमें चिरतृषातुर की एक मुखरी बल्कि अवमरी कामना का-सा भान हुआ। जान पड़ा जैसे वह अनुभव कर रही है—यही वह व्यक्ति है जिसने जहर पिला देने के बाद मेरे सिर पर प्यार का हाथ रक्खा है।—यही वह वधिक है जिसने छूरी मार देने के बाद सहायक कह दिया हो—अरे! माफ करना।—जिसने बहती नदी में नहाती हुई षोडशी की टांग पकड़ कर खींच लिया हो और मृत अवस्था में तट पर डालकर आभूषण आदि उतार लेने के बाद यह जानने की चेष्टा की हो कि जीवन यदि शेष रह ही गया हो तो उसे सीधा करके जिन्दा ही क्यों न [illegible] जाय!

के लिए माँ के पैसे मांगने को उसने अपना आंचल उठा दिया था। और मैं अपनी उन आंखों को क्या करूं जिन्होंने उस क्षण इसके निरावरण वक्ष को देख लिया था! एकबार मेरे मन में आया इस क्षण मैं क्यों न इससे साफ-ही-साफ कह दूं कि किसी भी अवस्था में अपने शरीर और मन के प्रति इतना असावधान न होना चाहिए कि उसके अन्तर्प्रान्त में झांकने का अनायास कोई अवसर पा जाय—फिर चाहे वह कोई भी हो। जैसे मन का धर्म है अस्थिरता एवं चंचलता वैसे ही शरीर का धर्म है नग्नता। और ये जो आवरण हम रखा करते हैं ये सब सभ्यता की देन हैं। विशेष अवस्थाओं की बात दूसरी है जब हम स्थिर और जड़ हो रहे मन की सुषुप्त गतियों में लहरें तरंग कम्पन और आलोडन उत्पन्न करने के लिए शरीर के साधारण धर्मों में स्पन्दन उत्पन्न करने की चेष्टा किया करते हैं।

श्याम चाय-पान की सब सामग्री ले आया। मैंने उठकर हाथ धोये। वाशिंग-बेसिन के ऊपर साफ तौलिया था उससे हाथ पोंछे। चाय ढालने के लिए मैं कुरसी पर बैठा ही था कि देखा—भाभी सर नीचा किये हुए स्वयं चाय ढाल रही है।

मैंने बिना सोच-विचार कह दिया—'तुम ब्याह करोगी भाभी?'

भाभी के हाथ रुक गये। एक बार स्थिर अपलक दृष्टि से उसने मेरी ओर देखा और उसके नयन फिर सजल हो आये। मैं उठकर खड़ा हो गया पीछे जाकर उसके सिर को मैंने अपने नग्न वक्ष से लगा लिया। रूमाल से उसके आंसू पोंछे और कह दिया—मैंने उस दिन तुमको बहुत बुरा-भला कहा था न? उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं तुमसे।

जान पड़ा वह मेरी सारी दुर्बलताओं से परिचित है। फिर भी सिर नीचा किये हुए वह बोली—'लेकिन अभी तुमको यह बात तो मुझे बतलानी ही है। मैं तुमसे सिर्फ यह कहने आयी थी कि मेरी माँ वह सारी-की-सारी रकम तो अपने साथ ले ही गयी जो मकान बेचकर—लालाजी के (रेहन वाले) रुपये चुका देने के बाद—बची थी। उसके साथ वे मेरे सारे-के-सारे गहने भी लेती गयीं! पर जब तुमसे भी मैं यह बात नहीं कह पायी तब फिर अपने दोनों भैया और भाभी से भी मैंने आज तक कुछ नहीं कहा।

यह प्रसंग भी कुछ ऐसा विचित्र था कि रक्त की नाड़ियों में गरम भाप उठने लगी थी। इसलिए मैंने कहा—"अच्छा पहले चाय पी लो। उसके बाद बातें होती रहेंगी।

भाभी की बात सुनकर यद्यपि मैं स्तब्ध रह गया था। पर एक सन्देह मेरे मन पर अब भी जमा हुआ था। चाय-पान के समय वह भी चुप रही और मैंने भी एक शब्द नहीं कहा। और कोई चीज उसने ग्रहण नहीं की। मैंने बहुत आग्रह किया फिर भी उसने कोई चीज छुई तक नहीं। बैरा आया और ट्रे उठा ले गया तब मैंने पूछा—"लेकिन उस दिन जिस वेश-भूषा में तुम मेरे पास आयी थीं वह तो कुछ और प्रकट कर रही थी।

वह बोली— 'हां मैंने भी सोचा है कि उसी से तुमको धोखा हुआ होगा। पर उस समय मैं अपनी एक सखी के यहां से लौटी थी जिसने मुझे एक विद्यालय में नौकरी दिलाने का वचन दिया था। और उसी दिन मुझे मालूम हुआ था कि योग्यता होने से कुछ नहीं होता। दुनिया तो सर्टिफिकेट चाहती है। हालांकि यह मैं जानती हूं कि सर्टिफिकेट-धारी बहुतेरे आदमियों के चेहरे जैसे चिकने और नाक-नुकरे होते हैं वैसे उनके कर्म नहीं होते। कभी-कभी तो यह मैंने साफ-साफ अनुभव किया है कि सर्टिफिकेट हीन आदमी अपनी योग्यता और प्रतिभा के दान में जितना प्रवीण होता है उतना सर्टिफिकेट-धारी अक्सर नहीं होता। और होता केवल इसलिये नहीं है कि सर्टिफिकेट प्राप्त करने का अभिमान प्रायः जीवनोपयोगी योग्यता और अनुभव प्राप्त करने के मार्ग को बीच ही में रोक देता है।

इस बातचीत से मुझे कुछ ऐसा जान पड़ा जैसे वह प्रकारान्तर से कह रही है कि विवाह का प्रमाण-पत्र भी कुछ ऐसा ही अर्थ रखता है। तब मुझे उसकी इस तर्क बुद्धि पर हंसी आ गयी।

लेकिन यह हंसी भी कितने दर्द—कितने क्रन्दन—की अपने वक्ष में उमड़ती-घिरती सांसों को अन्दर बांधे है कुछ ठिकाना है! तब उस रेस्तोरां से उठते उठते मेरे मुंह से निकल गया— अच्छा भाभी अभी तो मैं कुछ नहीं कहता लेकिन हो सकता है कि कभी मैं तुम्हारे इस आत्मदान के ऋण का ब्याज चुका सकूं।

× × ×

दोपहर ढल चुकी थी और भाई साहब की नींद अभी पूरी नहीं हो पाई थी। तब मैंने भाभी के कमरे में जाकर कहा—'कहो भाभी अब के बिछुड़े फिर हम कब मिलेंगे ?

उस समय व पलंग से उठकर दरवाजे की ओर पीठ किये हुए चप्पल पहन रही थी। मुझे आया जान एक बार मेरी ओर ताक कर रह गयी। अधर कुछ हिले भौंह एक उठकर बैठ गयी पलक कुछ ऊपर उठे और गिरे। निःश्वास भी आया और अन्तरिक्ष में मिल गया। एक कबूतर खुली खिड़की पर आकर बैठ गया। उसने गर्दन हिलाई मेरी ओर देखा भाभी की ओर ताका। फिर ज्योंही उसके पास उसका साथी आया त्योंही उसके साथ फर्र से उड़ गया। यहाँ तक कि उसके पंखों के समीर ने मेरे सिर के केशों में भी कम्पन उत्पन्न कर दिया।

भाभी बोली—'कोई कुछ नहीं कह सकता।

मैंने कह दिया—'लेकिन मैं इतना कह सकता हूँ—हम मिलेंगे और व बार मिलते रहेंगे।

व बोली—'इसी तरह मैं भी कह सकती हूँ—हम न कभी मिल पाये हैं न मिल पायेंगे। हमारी साँसें जो आती जाती हैं अधूरी हैं! हमारे प्राण जो एक दिन शरीर में पड़ते और एक दिन विदा लेकर अन्तरिक्ष में लीन हो जाते हैं अधूरे हैं! हमारी भूख-प्यास और चलना-फिरना रोना-गाना तृप्ति अतृप्ति सन्तोष आनन्द—सब अधूरा पड़ा है और पड़ा रहेगा! मैं अधूरी-की-अधूरी ही चली जाऊँगी। मेरे प्राण अधूरे छूटेंगे—केवल तुम केवल तुम्हारा आदर्श पूर्ण रहेगा!

सोचता हूँ अगर उस समय मेरा हृदय फट जाता तो कितना उत्तम होता!

मेरा हृदय भर आया मेरा कण्ठ भर आया मेरी आँखें भर आयीं। भाभी के चरणों की रज मस्तक से लगाते हुए मैंने कहा—'बस भाभी तुम्हारा ध्यान में कहा हुआ यही वाक्य भगवान करे, आशीर्वाद बनकर मुझ सदा जीवित रक्खे

सब कुछ मेरे और इस जगत् के लिए तभी तक प्यारी हूं जब तक तुम मेरी भाभी हो। और यह कितना सुन्दर अवसर है कि भाई साहब स्वयं तुम्हें लेने आय हूं। समाज यह देखने नहीं आता कि दोष किस का है। समाज तो परिणाम देखता है। रह गयी बड़ी भाभी की बात सो भाई साहब जब तुम्हार हैं तब व तुम्हें प्राणों की जगह रक्खेंगे ही।

'यह कुछ नहीं मैं सब समझती हूं। देखो खाना वक्त से ही खा लिया करना। और कभी रात को देर से न आना। जमींदारी का काम मैनेजर पर न छोड़ना। ब्याह होने पर जब मेरी देवरानी के साथ खाना खाने बैठना तो पहला कौर खाते समय उसका थोड़ा अंश मेरे नाम से धरती पर छोड़ देना मेरे गगन के देवता! और देखो जितना क्रोध तुम मुझ पर उतारते थे उतना कभी उस पर न दिखाना! तुम्हें मेरी सौगन्ध है। और पैंट के बकलस का बटन जिस तरह उस दिन तुमने मुझ से टकवाया था वैसे ही उससे भी—और फिर एक—'। कहती-कहती भाभी फिर रो पड़ी। फिर अपने आप ही आंसू पोंछ लिए। अच्छा जरा इधर आओ मेरे पास। आज तुम्हें ।

फिर भाभी मा के पास गयी और बोली —

'मा काकाकी दुलहिन जब आये तब मेरा यह पनहार तुम उसे पहना 'ना अम्मा! और ये इक्कीस साड़ियां इक्कीस ब्लाउज के लिये कपड़े मैं उसी के लिए छोड़ जाती हूं। कुछ दिनों तक वह हफ्तेवार जब तीन साड़ियां नित्य बदलेगी तब भौरैया बनकर मैं उसकी शोभा देखने आया करूंगी!

सुखराम आकर पूछने लगा— 'सरकार कह रहे हैं सामान सब ठीक कर लो।

भाभी ने कह दिया— 'सामान सब ठीक है। पर देख सुखराम चंदिया से कह दे खाना अब से लाय। और हां मौसी के पास से पनडब्बा भी इधर दे जाना।

पर सुखराम के जाते ही तुरन्त चंदिया आ पहुंची। बोली— 'मां जी आप को याद कर रही हैं सरकार।

मन पूछा— किसको चंदिया? सरकार तो तेरे लिए भाभी ही रही हैं इधर जब से आयी हैं।

चंदिया बाड़ा धरमा पड़ी। फिर भीचा करके बोली— 'सो तो आप ठीक कहते हैं। लेकिन मां जी ने आपको ही बुलाया है।

तुरन्त मैं मां के पास चला गया। मां बोली— 'बेटा मेरा मन बड़ा दुखिया है। और फूट-फूट कर रो पड़ी। मैंने पूछा— 'क्या बात है मा ? रोती क्यों हो ? तुम जब रोने लगती हो तो मेरे प्राण धरती पर लोटने लगते हैं।

मा ने आंसू पोंछ डाले। बोली—"मुझे रात-दिन सोते-जागते यही चिन्ता बनी रहती है कि अपनी भाभी के बिना तू कैसे जियेगा कैसे इस धरती पर चलेगा।

"क्या कहा! यह आज तुम कह क्या रही हो मां! भाभी को जब देखा नहीं था तब कैसे जी रहा था मैं ? मैंने तुरन्त कह दिया।

वे कहने लगीं— 'सो तो ठीक है। पर मैं अपने जी का पाप तुझ से कह रही थी।—उसकी याद भर आनी तब कोई डर की बात नहीं थी। देखा तो एक दुखिया मजदूरनी तक का दुख भी उससे देखा नहीं जाता! तू नहीं जानता भगवान ऐसे प्राणियों को अधिक दिना तक जीने नहीं देता बेटा!"

मैंने जब भाभी से जाकर यह बात कही तो मां के पास जाकर उन्होंने उनके चरणों पर अपना मस्तक टेक दिया। बोली— 'अब मैं मरूंगी नहीं मौसी। तुम्हारा यह भय मुझे जीवित रक्खेगा।

तब से मैं बराबर यही सोच रहा हूं—अपने को उत्सर्ग कर देने की अपेक्षा चिरदिन चिरजीवन तक स्वस्थ रखना तो और भी बड़ा और महान्—एक महान समर्पण है यद्यपि है बड़ा दुष्कर।

जब चाय आयी तो मैंने कह दिया—"मैंने अब चाय पीना छोड़ दिया है भाभी!" भाभी ने हाथ के पल्लू को बाईं ओर के कंधे पर सम्हालते हुए पूछा—"क्यों ?

"क्योंकि मैं उन कामों से भी अपना सम्बन्ध तोड़ देना चाहता हूं जो रह रहकर मेरे भीतर से मिल की चिमनी का-सा धुआं उठाने लगती हैं।

'तुम या तो मुझसे इस तरह की बातें ही मत करो। तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं। या तुम मुझ माफ कर लो। यद्यपि भाभी ने इतना ही कहा किन्तु मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे इतना और कह रही हैं—"आज मर कर भी मां की ओर से .

मर्यादा म रख बल्कि उसके हाथ दिये अपने समाज से और अपने भले-बुरे उन संस्कारों से जिनका मूह ही केवल तथाकथित पुरातन है पर खोम-खोम जिनका आज क औसत नागरिक की भांति भूखा प्यासा क्षुब्ध अतृप्त और नंगा है।

तब मुझे कहना पड़ा— 'अच्छा तब भाई साहब से क्या कहना होगा ?

व मुस्करा उठी और बोली—''यह भी मुझी को बताना होगा ! अच्छा तो सुनो। उनको मुझे छोड़ने मे रत्ती भर भी कष्ट न होगा। क्योंकि उनकी प्यास की परिभाषा म बहुत बड़ी गुंजायश है। तुमको विश्वास हो चाहे न हो पर वह अर्चना जो वहीं उन्हीं के निवास-स्थान की परिधि में कहीं रहती है उसकी ओर उनकी दृष्टि अब तक कभी की पड़ चुकी होगी। यह मत सोचना कि अर्चना कुन्ती-तारा-मन्दोदरी म से है। नारी किस जगह की कमजोर होती है यह मैं जानती हूं। किसी भी दिन तुम उसे भाभी कहने का अवसर प्राप्त कर लोगे। वही यह लाली जो इस घर म कभी-कभी उछलती-कूदती हरिणी सी झलक दे जाती है यह भी उनकी दृष्टि मे पड़ चुकी है।

'क्या मतलब ? आश्चर्य के साथ पूछा।

भाभी बोली— 'मतलब बिल्कुल साफ है। तुम बनाओ बन्धन जैसे कितने लगाते हो ! लेकिन प्रकृति के नाले को रोकोगे कब तक ? इसी मकान मे और तो सब ठीक है पर इसका शौचगृह तो नीचे ही है। रात को वे एक बार शौच गये थ। लगभग पाच बजे की बात होगी। जब माया घटा हो गया और वे नहीं लौटे तब मै शंका मे पड़ गयी। नीचे गयी तो मालूम हुआ कि नाटक तो समाप्त हो चुका है। यवनिका पतन ही शेष है। धीरे-धीरे कुछ बातें हो रही हैं। तुम्हारे भैया कह रहे थे— 'दिल्ली म एक मकान ठीक कर आया हूं। वहां तुम आ जाओगी तो ठीक रहेगा।

सुनकर अविश्वास की एक ऐसी कड़वाहट मेरे मन म समा गयी कि जान पड़ा दुनिया में कहीं कुछ ऐसा नहीं है जिसे मैं परम पावन कह सकूं। लाली को मैं कठोर बछिया समझता था। वह भी बधिक के पास जा पहुंची ! और भाई साहब का क्या कहूं ! समाज की इन भग्न महिमा अन्तर्वाहिनी स्रोतस्विनी नाना वृत्तियों की जितनी छानबीन करता हूं उनके प्रति उतनी ही घृणा बढ़ती जाती है। अच्छा क्या इस क्षुद्रता का कहीं अन्त नहीं है ?

मेरा भाग्यवाद तो तुम ही हो भाभी। मैं अब तक तो यही समझता आया हूँ।

भाभी ने मुसकराते हुए कह दिया—'डरो नहीं मैं तो यों ही कह रही थी।

इतने में भाई साहब एक साथ नई बूट कष्ट के नीचे उतारते हुए बोले—जिन्होंने कभी पी ही नहीं मुझे हंसी आती है जब वे कहते हैं—मुझे इसकी जरूरत नहीं पड़ती। हूं! अरे मैं पूछता हूं—भगवान् को मेरे जैसे पापी को पैदा करने की क्या जरूरत थी? ऐ! क्या कहते हो?

रात के साढ़े ग्यारह बजे हैं। गाड़ी ने सरकारी स्थान अभी-अभी पार किया है। भाई साहब ने यकायक करवट बदली है। वे कह रहे हैं—'लाइट आफ कर दो राजेन। मेरा स्वर्ग अब सोना चाहता है।

थोड़ी देर बाद मैं सोच रहा था भाई साहब का स्वर्ग क्या चाहता है यह तो मैं नहीं जानता पर यह मैं अवश्य देख रहा हूं कि मेरा स्वर्ग जो यह पड़ा हुआ कभी-कभी एक आध वाक्य बोल उठता है कह रहा है—

कम-से-कम बाथरूम की बत्ती जलने दो। क्योंकि अंधेरे में बातें करने में कोई रस नहीं मिल रहा है।

फिर कब मुझे नींद आ गयी यह मैं नहीं जान सका। किन्तु जब सवेरे साढ़े सात बजे और फीरोजाबाद स्टेशन आ गया तो यकायक दरवाजे पर किसी ने खट-खुट् किया। उठकर दरवाजा जो खोलता हूं तो क्या देखता हूं—चाय की ट्रे में टोस्ट-मक्खन और आमलेट लिये रेस्तोरां के ब्वाय के पीछे वाली सौराष्ट्रीय वेश-भूषा में उपस्थित है।

हे भगवान त्राहिमाम्!

तेईस

उस लाफ का असली नाम क्या है यह मैं थोड़ी देर के लिए भूल रहा हूं। लेकिन मैं अगर मालिक होता तो उसका नाम रखता—प्रस्था।

हां तो कभी-कभी छोटी-बड़ी भाभियों के साथ मैं प्रेक्षागृह में जा बैठता हूं। एक दिन की बात है जब मैं वहां से उठने लगा उस समय आठ बजे थे। एक स्त्री लगभग बारह वर्ष के बच्चे के साथ आयी। वह सिर से पैर तक पश्चिमी ड्रेस में थी और दूर से क्रिश्चियन मालूम पड़ती थी। उसकी चाल-ढाल सहसा मुझे परिचित जान पड़ी। बड़ी भाभी साथ में थीं। मैं जब उस स्त्री को देखने लगा तो बड़ी भाभी बोलीं— 'अरे ये तो श्रीमती पाण्डेय हैं। इसी कालेज की संचालिका। चलो, तुमसे परिचय करा दूं।'

मैं अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गया। एक तो यों ही मैं कम आश्चर्य में डूबा हुआ न था तिस पर उन्होंने परिचय में कह दिया—श्रीमती पाण्डेय! तब मैंने कह दिया— 'क्षमा करना भाभी। मैं चाहता हूं तुम इस समय चुपचाप गाड़ी में जा बैठो तो मैं स्वयं इनसे मिल लूं। क्योंकि जिनके होने की आशंका से मैं उन्हें देख रहा हूं यदि वे निकल आयीं तो इस समय मुझे उन्हीं के साथ चल देना पड़ेगा और फिर उस दशा में तुम्हें अपने स्थान पर अकेला ही जाना होगा।

मेरा इतना कहना था कि वे गाड़ी की ओर चल दीं। बोलीं—"अच्छी बात है। मैं दो मिनट तक प्रतीक्षा करूंगी। उसके बाद समझ लूंगी कि तुम्हारी आशंका ठीक निकली।

वह स्त्री तब तक कालेज के अन्दर वहां पहुंच चुकी थी जहां मैनेजर बैठता था। मैं भी वहीं चुपचाप चला गया। अभी मैं उसके पास— बिल्कुल पास—पहुंच भी न पाया था कि उस स्त्री ने पूछ दिया— आप क्या चाहते हैं? पर इतना कहने के बाद ही उसकी चेष्टाएं अपने आप बदल गयीं। सहसा मैंने देखा तो मुझे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ मैंने जो कुछ सुना उससे मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। लेकिन इस दुनिया की रचना ही कुछ ऐसी अद्भुत हुई है कि यहां सबका सरल स्वाभाविक और अत्यन्त अद्भुत बिल्कुल पास-ही-पास बैठना और रहना है। यहां कंटक पुष्प का बन्धु है सरिता पहाड़ की कन्या है पथ पवन का अनुचर है। तुरन्त वह अपने को सम्हालती और मुझ को निहारती निहारती हुई बोली— अरे यह तो मेरा नरेन्द्र है! आओ बेटा इधर निकल आओ। और मुझे जीने से ऊपर के अपने निजी कमरे में ले गयी।

गरम जैकेट थी ऊपर धोती और एक ऊनी रैपर। उस रैपर को मैंने अब तक सम्हाल कर रक्खा है। शौच के लिए मैं एक खेत के अन्दर गयी थी जिसके पास बांस के पेड़ थे। शौच से निपट कर ज्यों ही मैं घर को वापस होने लगी त्यों ही मुझे एक दबी-सी आवाज सुनायी पड़ी— 'कौन है यहां ?

मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

तब फिर वह स्वर फूटा— जो कोई भी हो वह इस गाड़ी के पास चुपचाप बिना किसी डर के चला आये।

मेरे मन में कुछ शंका हुई, कुछ भय का भी संचार हुआ लेकिन साथ ही मैंने यह भी अनुभव किया कि यह बोली तो कुछ-कुछ हमारे पांडेयजी की-सी है। इसलिए भय का कोई कारण न देख मैंने उसी आवाज की तरफ अपना पैर बढ़ा दिया।

तब वह स्वर और भी साफ होता चला गया— 'भगवान ने मुझे फिर जिला दिया है। मैं कोई भूत-प्रेत नहीं हूं। म बिल्कुल सही-सलामत आदमी हूं। मेरे बन्धन खोल दो। मैंने नया जीवन पाया है और मैं तो सदा नये जीवन की तलाश में रहा हूं।

अब मुझे निश्चय हो गया—ये तो मेरे हृदय के धन का स्वर है।

मैं जब उस शव के पास गयी तब एक बार फिर मुझे भय लगा। पर सब से पहले मैंने उनका मुंह जो खोला तो मेरा सारा भय जाता रहा। उन्होंने भी मुझे पहचान लिया। उनके साथ मेरा क्या सम्बन्ध था इस विषय में मुझे तुम से यद्यपि कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि तुम मेरे बच्चे हो। लेकिन मझे अब इस बात पर किसी तरह का फेर नहीं है। क्योंकि हम लोगों ने अपनी तबियत का एक नया संसार बसा लिया है। यहां मुंह बनाकर हमसे कोई यह कहने वाला नहीं है कि यह तुमने क्या किया ? हां तो उस अवसर पर सबसे पहले उन्होंने जो बात कही वह यह थी कि अपने जीवन-काल में तो मैं तुम्हें पूरी तरह न पा सका लेकिन मृत्युकाल में अचानक पाकर अब मैं तुम्हें छोड़ गा नहीं।

कई लोग उनके शव की तलाश में इधर-उधर भटक रहे थे दुःख और विषाद में डूबे वे 'हाय-हाय' शब्द करते जंगल की ओर दौड़े चले आ रहे थे तब मैं आग जलाकर पांडेयजी के बदन की कंपकंपी मिटा रही थी।

मैं उस समय सोचने लगा—यह कैसी बात है प्रभु कि चालीस-पचास वर्ष की अवस्था के बाद भी कंपकंपी मिटाने को इस तरह चल उठती है।

वे हंसती-हंसती बोलीं—"मैं जानती हूं जैसा तुम्हारा स्वभाव है उसको देखते हुए तुमको यह बात पसन्द न आयेगी। लेकिन जब उनके मन को सोचने वालों का एक इतना दुःखी और परेशान था तब पांडेयजी आग की लपटों में शरीर और हाथ-पैर सेंकते हुए कह रहे थे—भटकने दो सब को। जब ईश्वर की यह रचना ही जिन्दगी के साथ ऐसा मजाक करती है जिसका जोड़ नहीं तब मैं क्या कर सकता हूं।

इतनी देर बाद अब मुझे ख्याल आया भाई साहब जब सुनेंगे कि मैं एक ऐसी वृद्ध महिला के साथ चला गया हूं जो इस कस्बे की मलका है तब पता नहीं वे इस बात के अन्दर कैसे-कैसे अर्थों और मन्तव्यों की कल्पना करने लगेंगे!

चाची बोलीं—"उसके बाद पांडेयजी ने अपनी पुरानी दुनिया त्याग दी और मैं भी उनकी नयी दुनिया को यहां तक खींच ले आयी।

इसी क्षण चाची के साथ कुछ खाद्य पदार्थ आ गये। चाची बोलीं—"लो खाओ।

मेरे मुंह से निकल गया—"इस समय तो क्षमा चाहता हूं चाची।

"मैं जानती थी ऐसी दशा में तुमको यह रुचेगा नहीं। चाची मुस्कराती हुई बोलीं—"और कुछ खाने की इच्छा नहीं है तो न सही पर काफी तो पी ही लो। गरम-गरम ठंडी पड़ जायगी।

पर इसी समय अन्दर से पिताजी आ गये। देखा अब वे काफी वृद्ध हो गए हैं। शरीर भी दुर्बल है मुख-कान्ति में भी वह बात नहीं है। जैसा समझ पड़ गया हूं। पर जिस वेश-भूषा की मैं कल्पना भी नहीं करता था वही वेस्टर और पैंट उन्हें पहने देख मैं आश्चर्य में डूब गया। लेकिन इस आश्चर्य को भी नगण्य कर उनको देखते ही मैं उनके चरणों पर सिर रख कर फर्श पर गिरकर रो पड़ा!

उन्होंने मुझे उठाया और छाती से लगा लिया। मेरे आंसू पोंछे सिर और पीठ पर बराबर वे हाथ फेर-फेरकर कहने लगे—"रोओ मत राजन् रोने का कोई अवसर नहीं है। जब मैंने देखा मैंने नया जीवन प्राप्त किया है तब मेरा मन ही बदल गया। मैं सोचने लगा अब सामाजिक बन्धन मर्यादा प्रतिष्ठा क्या—

उस रात मैंने भोजन नहीं किया और यह बात मुझे बाद में मालूम हुई कि पिताजी ने भी भोजन नहीं किया था। हमारे पलंग पास-ही-पास बिछे थे और उपेन्द्र उस दिन चाची के पास दूसरे कमरे में सोया था।

हमारी यह बातचीत कभी बन्द हो जाती कभी फिर प्रारम्भ हो उठती। एक बार कुछ ऐसा हुआ कि पिताजी ने पूछा— तेरी मां अच्छी तरह तो है रे राजेन्द्र ?

मेरे मन में आया कह दूं—'आपको इस सूचना से प्रयोजन ? आपको यदि उनके प्रति कोई ममता होती तो आप बीच भर न जाते। लेकिन नहीं मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा। बल्कि उनको और बसान की इच्छा से कह दिया—"हां आजकल तो उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। मकान भी अपना निज का हो गया है। चाची ने बतलाया ही होगा। जमींदारी कारबार तो अब समाप्त ही-सा है। फिर भी बीर की जो पचासी बीघा जमीन है उसमें खेती होती है। मैनेजर वरे पर ही रहता है। अभी पिछले महीने हफ्ते भर के लिए मैं गया भी था।

सुनकर वे कुछ नहीं बोले। एक नि श्वास लिया और कम्बल से अपना सिर ढक लिया। थोड़ी देर तक चुप रहे। मोडियन के चौराहे से किसी कार का हार्न सुनाई पड़ा और एक मोटरबाइक की फट-फट की आवाज हुई। कमरे में मन्द मन्द नीली रोशनी हो रही थी। आलमारी के ऊपर से बिल्ली ऐसी कूदी कि मेरे पलंग की पैतानेवाली पटिया पर आ गिरी। फिर एक सन्नाटा छा गया। फिर ऐसा मालूम हुआ कि पिताजी ने करवट ली है। फिर उनकी दबी हुई सिसकियां भी स्पष्ट जान पड़ीं। मैं उठकर बैठ गया और मैंने कहा— 'पिताजी !

वे भरे हुए कण्ठ से बोले— 'हां बेटा।

'रो रहे हो ?"

'नहीं तो। यों ही जरा-सा !

अब मैंने कह दिया— अभी तो आप कह रहे थे कि कोई बात नहीं है। मैंने जो कुछ किया है बहुत सोच-समझकर किया है—एक नयी दुनिया बसाई है। फिर रोने का क्या कारण है भला ?"

वे बोले—"हां कहने को बहुत-सी बातें हैं। आदमी हर काम के पीछे कोई-न-कोई कारण तो रखता ही है। मेरे पीछे भी कारण रहा ही है। पर आज

मुझे कुछ ऐसा अनुभव हो रहा है राजेन्द्र जैसे तेरी मा के साथ अन्याय मुझसे ही जरूर हुआ है। और मधू तो तब बिल्कुल छोटी थी—! और इसके बाद वे रो पड़े।

मैं चुप रह गया। केवल इस विचार से कि अच्छा है अगर कुछ आंसू इसी बहाने निकल जायें। कम-से-कम मा से इतना तो कह ही सकूंगा कि एक तुम्हीं नहीं रोती हो उनके लिए, पिताजी भी रोते हैं तुम्हारे लिए। ऐसा है इस नयी दुनिया का सुनहरा स्वप्न !

✓इस अवसर पर एक विचार और मेरे अन्दर-ही-अन्दर उत्पन्न हो आया था। यह मन की विचित्र गतिमा है। किसी भी दशा में उसे पूर्ण सन्तोष नहीं होता। एक दिन था जब पिताजी को अपना पुराना समाज चारों ओर और वर्षों विचारों से नुकीले-बरछी भाले की नोक की भांति छिदता हुआ प्रतीत होता था। पर आज उन्हें उसी की याद सता रही है। एक दिन उन्होंने मां को त्याज्य समझा था आज वे अनुभव करते हैं कि उनके साथ मुझसे अन्याय हो गया है। मीठा-ही-मीठा भोजन करने के अनन्तर कुछ खट्टा और नमकीन खाने की इच्छा होती है। तात्पर्य यह कि उस समय पिताजी को अभाव असंतृप्ति और असन्तोष उस जीवन में दिखाई देता था अब इस जीवन में दिखाई देता है। तो जीवन की प्रत्येक स्थिति अपूर्ण है। कहीं गति नहीं है—कहीं तृप्ति नहीं है। सब अधूरा है।

घड़ी ने टन-टन करके चार बजाये। रामदास ने टीप लगायी—"भैया बड़े पशमी !

फिर एक लम्बा सन्नाटा। इसी क्षण पिताजी बोले—"मैं अपने में सुखी था। मैं अपने में पूर्ण था। तुम बेकार आये राजेन्द्र मेरे पूर्व जीवन के अधूरे स्वप्न लेकर। मैंने सोचा था मैं उस समाज से अपने आपको छिपाये ही रक्खूंगा। मैं भला हूं बुरा हूं जैसा कुछ हूं—हूं अपने लिए हूं। लेकिन अगर मैं हूं तो अपने सभी प्रकार के सामूहिक समाज के लिए हूं। मैंने बुरा काम किया है तो समाज को उसके प्रभाव से मैं कैसे बचा सकता हूं। मैंने अच्छा काम किया है तो समाज को उसके लाभ से वंचित रखने का मुझे क्या अधिकार है? कितने दिन से मैं उस समाज से मिलने को व्याकुल हूं जिससे मुझे घृणा हो गयी थी ! जितने दिन से मैं अपने उन मित्रों से नहीं मिला जो सुख में दुःख में सदा मेरे सहायक

रहे हैं। मेरी यह पूजा अपनी जगह पर सही थी या मेरी यह व्याकुलता ही आज सत्य है—मैं नहीं जानता। मैं सत्य-असत्य का शोधक नहीं हूं। इसीलिए मैं अपने समाज से मिलूंगा और वह जो कुछ कहेगा उसको चुपचाप सहन भी करूंगा।

"तुम नहीं सहन कर पाओगे पिताजी। हमारे पुरातन समाज में काफ़ी बुराइयां हैं पर सात्विक वृत्तियों के प्रति मत्कुल श्रद्धा उसमें अब तक स्थिर है। मानता हूं कि आपने पुनर्जीवन प्राप्त किया है। यह भी मानता हूं कि नयी दुनिया में आपकी अपनी एक सामाजिक मर्यादा भी हो गयी है। यद्यपि कोई स्थायी और अचल सम्पत्ति आपने अर्जित की है कि नहीं मैं नहीं जानता। लेकिन यदि की भी हो तो वह भी सही। पर इतने से ही समाज में एक आदर्श महापुरुष के रूप में आपकी प्रतिष्ठा हो जायगी इसकी आप कल्पना भी न कीजियेगा।

"समाज में आदर्श महापुरुष कहलाने का मुझ कोई मोह नहीं है बेटा।" पिताजी ने एक अधजले सिगार को दियासलाई जलाकर सुलगाते हुए कहा—"मैं तो अपनी पुरानी दुनिया को एक बार देखना भर चाहता हूं। उसका उत्साह, उल्लास उसके उन्नतिमूलक परिवर्तन उसकी आवभगत की दुनिया उसके आधुनिक कर्म धर्मों और भविष्य के कल्पना-मन्दिरों का मैं एक बार परिचय मात्र चाहता हूं।

इस स्थल पर मैं मौन चुप रह गया। जो मेरे जनक हैं जिन्होंने मुझे जन्म दिया है उनके प्रति अविनयशील हो उठने की उत्तेजना का निरोध तो मैं कर सकता हूं। किन्तु जहां विचारों की स्पष्ट विषमता है वहां केवल श्रद्धा-भार से दबकर मैं चुप रह जाऊं यह मेरी प्रकृति के विरुद्ध है। एक बार तो मन में आया भी कि कोई ऐसी बात न कहूं जो पिता जी को बुरी लगे। क्योंकि रात का समय है। चाची सम्भव है सो रही हों और बात करते करते उत्तेजनावश स्वर में प्रखरता आ जाना सर्वथा स्वाभाविक है। निद्रा भंग होने समय जब उन्हें इस बात का परिचय मिलेगा कि पुत्र पिता से कह रहा है तब मूल बात का औचित्य तो पीछे पड़ जायगा वार्तालाप की अशिष्ट प्रखरता ही स्पष्ट मुखरित हो उठेगी। उपक्रम मेरा अशुभ है। उसको भी मेरे प्रथम परिचय में जिस बात का बोध होगा वह होगी मेरी यह ग्रामीणता कि सन्ध्‍या में मैं समय-कुसमय तक का विचार नहीं करता।

परन्तु इसी समय घड़ी ने टन-टन करके बजाये थे। और काफ की एक माली ने तुरन्त आकर कहा—"काफी तैयार है फादर, ले आऊं ?

पिताजी बोले—"ले आ। लेकिन देख एलन यह यंगमैन जो इस पलंग पर बैठा है शायद तुम्हारे हाथ की बनायी कोई चीज छूना भी स्वीकार न करेगा। इसके सिवा तुम्हारे यहां मुर्गी के बच्चे और सूअर चाहे बिल्कुल पड़ोसी की तरह रहते हों पर इनके पुराने जगत् में न आपस में पशु-पक्ष के प्रतिनिधि हैं। तू समझ रही है कि नहीं एलन ?

एलन क्रिश्चियन लड़की है। इतना तो मैं उसी समय जान गया था। बाद में पता चला कि वह निवासी भी गोआ की है। खैर, वह बोली—"बस् फादर। इनके लिए काफी मैं रामदास से बनवा दूंगी।

तभी पिताजी के होंठों पर थोड़ा हास फूट पड़ा। बोले— 'लेकिन उसके हाथ की बनी काफी भी इसकी कुलीनता स्वीकार न करेगी। जानती हो क्यों ? —क्योंकि चमार जाति का वह हिन्दू भी बहुत निम्न कोटि का है।

ऐसा क्यों है फादर ? अपने को रामदास कहलाने पर भी कोई हिन्दू निम्न कोटि का ही बना रहता है !

"हां एलन हमारा हिन्दू-धर्म ऐसा ही विचित्र है। खैर, इस सम्बन्ध में विस्तार से मैं फिर कभी समझाऊंगा। इस समय तो तुम उपेन्द्र की मां से ही इसके लिए काफी बनवा दो तो ठीक होगा। पिताजी के इतना कह देने के बाद मैं बोल उठा— 'क्षमा कीजियेगा पिताजी आपने मुझे समझने में भूल की है। मैं एलन के हाथ की बनी काफी सहर्ष पीने को तैयार हूं।

इस पर मुसकराती एलन जब चली गयी तब मैंने कह दिया— 'पिताजी आप सदा यही सोचते होंगे कि पुरानी दुनिया के लोग आपको मृत समझते हैं। और यह सोचते-सोचते आप उस समाज को शोचनीय भी समझने लगे होंगे।

सिगार की राख को ऐश-ट्रे में झाड़ते हुए पिताजी बोले—"हां बेटा। यह बात अक्सर मेरे मन में आया करती थी।

इस अवसर पर मैं जान-बूझकर ऐसे प्रश्न करना चाहता था जिनसे पुरानी स्मृतियों की चर्चा पिताजी के मन में एकदम से जग उठे। इस लिए जब मैंने

कह दिया—"आप सोचते होंगे पिताजी कि जिस समाज के अन्दर मेरी कामनाएं अपूर्ण रह गयीं उसी में बा मिलने में अब कोई रस नहीं है।

'जान पड़ता है तूने मेरे मन की ग्रंथि को ही देख लिया बेटा। कहकर पलंग से उठकर छड़ी के सहारे वे दरवाजे पर आकर नवीन दिवस के प्रभात का उजाला देखने लगे।

और पिताजी किसी व्यक्ति के साथ समाज का यह कितना बड़ा अन्याय है कि वह उसकी प्यास तक को सीमाओं में घेरकर रखना चाहता है!

मैंने पुनः जान-बूझकर ऐसी बात कही जो पिताजी के विचारों का मूल स्रोत थी। इसलिए पिताजी उस समय पहले तो विस्मय से इकटक मेरी ओर देख रह गये। फिर बोले—'मैं तो कभी सोच भी न सकता था राजेन्द्र कि एक दिन तुम्हारे जैसे पुत्र से मुझे इस भांति अपने गौरव का अनुभव होगा। क्योंकि कुछ ऐसी बात है कि जीवन-भर मैंने केवल समाज के इसी अन्याय का अनुभव किया है।

इस क्षण कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि मन एक मानो मैं पिताजी के इसी कथन की प्रतीक्षा कर रहा था। इसलिए मुझे इसी अवसर पर कह देना पड़ा—'परन्तु क्षमा कीजियेगा पिताजी पुत्र होकर मैं आप से ऐसा कह रहा हूं। क्या आपने कभी यह भी सोचा कि समाज अगर आपको मृत समझता है तो उसका तो एक आधार भी है। किन्तु आपने उसी समाज को जो मृत समझ लिया उसका क्या आधार है? हृदय पर हाथ धरकर सच-सच बतलाइये पिताजी आपने मुझ को ही नहीं मेरी मां और मेरी छोटी बहन मधू को भी जो मृत समझ लिया उसका आधार क्या था। ब्याह के अवसर पर आपकी याद कर-कर के वह कैसी रोई थी अगर आप सुन पाते तो आप का यह पत्थर-हृदय मोम की तरह पिघल उठता! लेकिन क्या मैं आपसे स्पष्ट कहूं कि आप को तो समाज के धर्म की अपेक्षा व्यक्ति का धर्म अधिक प्यारा था! मन की छोटी-बड़ी अनन्त तरह राशि की अपेक्षा शरीर के स्थूल धर्म की मांग का महत्व आपके लिए बड़ा था!

अचानक पिताजी की भृकुटियां तन गयीं और एक कड़कीले स्वर में वे बोल उठे—'अब तुम बहुत आगे बढ़ रहे हो राजन! पिता की दुर्बलताओं पर

आक्षेप करने का अधिकार पुत्र को उसकी अन्त्येष्टि क्रिया के बाद भी नहीं होता।

जैसे प्रेम के नयन नहीं होते कल्पना के पैर नहीं होते सौन्दर्य के जाति नहीं होती कला के आकार नहीं होता—वैसे ही आलोचक के शील नहीं होता। इसलिये बिना किसी हिचक के मैंने कह दिया—"मेरे मुह पर थप्पड़ मार दीजिये पिता जी लेकिन सत्य बोलने का मेरा मानवी अधिकार मुझ से मत छीनिये।

'साधारण मानवी धर्म-पालन से पहले तुम को पिता के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये बेटा।

"उस पिता के प्रति जिसने अपनी संतान के हिताहितों तक की परवा नहीं की जिसने उसके सुख को अपना सुख नहीं समझा और उसके दुखों की तो कभी कल्पना भी नहीं की।

मेरे इस कथन पर पिताजी मौन रह गये। एक शब्द उनके मुह से नहीं निकला।

इस स्थल पर मैं यह स्पष्ट कर दू कि किसी व्यक्ति को यह सोचने का अधिकार नहीं है कि मैं ही अपना कर्त्तव्य-पालन क्यों करूं जब और लोग नहीं करते। क्योंकि कर्त्तव्य का स्थान जीवन में उस व्यापारिक सौदे का-सा नहीं जो लेन-देन में अनिवार्य होता है। कर्त्तव्य किसी भावना का प्रतिदान नहीं वह तो व्यक्ति का अपना धर्म होता है। लेकिन मुझे तो अपनी बात कहनी थी।

इसी समय चाची आकर बोल उठी—"ऐसा मत कहो बेटा राजेन्द्र। तुम नहीं जानते व तुम को कितना प्यार करते हैं।

इस समय कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई गुप्त संकेत कर के बता रहा है—अब साफ-ही-साफ सुना दो राजेन्द्र। जानते हो सत्य के आँख नहीं होती।

"हाँ चाची यह तुमने ठीक कहा। मैंने परिणाम की ओर जरा भी ध्यान न देकर कह दिया—'राम को वन-गमन के लिये विवश कर के माता कैकेई ने उनके प्रति जैसे प्यार का परिचय दिया था तुम शायद उसी तरह के प्यार की बात कह रही हो। क्योंकि उस दिन काकी भी तुम्हारे इसी तरह के प्यार की एक कथा मुझ से कह रही थी।

पिताजी इसी समय बोल उठे—"जान दो राजेन्द्र। इनसे क्या बात करते हो ! मेरी बात सुनो। मैं पूछता हूं तुम से। बोलो क्या सभ्यता के भवन निर्माण में प्रत्येक ईंट उन्हीं लोगों की लगाई हुई है जिनका जीवन सीमा मर्यादा और प्रतिष्ठा से बंध आदर्श ! आदर्श ! प्राणहीन जर्जर, खोखले आदर्श और दम्भ पाखंड मिथ्याडंबर के कीड़ों के यह बच्चे की तरह भीतर ही-भीतर सड़े गले और ऊपर से चिकने उजले और कोमल आदर्श से परिपूर्ण रहा है।

'नहीं पिताजी सभ्यता के भवन-निर्माण की समस्त ईंट शायद उन्हीं लोगों के शरीर के मस्थि चूर्ण रक्त-मास की देन है जिन्होंने आज तो कह दिया—तुम मेरे प्राणों की प्राण हो मेरी सांस-सांस में बोलती हो। तुम मेरे अतीत की साधना वर्तमान की सफलता और भविष्य की कल्पना हो। केवल आज की नहीं युग युग की मेरी रंगनीग मा-सी सहचरी देहलता हो और कल उनकी ओर से पीठ फेर ली केवल इस आधार पर कि रात को जब मुझे प्यास लगी तब पानी यदि नहीं था तो तुमने अपने हृदय का रक्त मुझे क्यों नहीं पिला दिया ! हम ठहरे आवारा पंछी एक पेड़ की डाल-डाल और टहनी-टहनी पर कब तक निर्भर रह सकते हैं ! हमारी कोई शर्त नहीं हम कोई बन्धन नहीं मानते। तुम जाओ चूल्हे भाड़-बन्धन में हमारी बला से ! हम ये चले ये गए—अलविदा ! इस स्पष्ट शब्द-जाल प्रवंचना छल-छद्म और विश्वासघात में कितनी आजादी है !—कितना गौरव है ! और शायद आज की यह सभ्यता इसी गौरव की देन है ! क्यों पिताजी ? कहां गयी वे चाची जो इस नयी दुनिया की रचना करने में अपनी नव-विधवा कन्या साथी के सारे स्वर्णाभरण लेकर सम्पन्न हो गयी थी और एक दिन जब उसे डबल निमोनिया हुआ था तब उसकी हत्या करने में जिन्होंने कोई बात नहीं उठा रक्खी थी !

ज्वालामुखी का विस्फोट-सा ही उठा उसी क्षण। पिता जी बोल उठे—'बको मत राजेन्द्र ! मानो इतना कहना बाकी रह गया—निकल जाओ हमारे घर से। अब हम तुम्हारी सूरत नहीं देखना चाहते !

इसी समय एलम ट्रे में काफी और टोस्ट लेकर आ पहुंची। चाची बोली—'अच्छा पहले काफी पी लो। फिर और जो कुछ कहना हो उसे भी कह लेना।

मैं तत्काल उठकर खड़ा हो गया और मैंने कह दिया—'क्षमा कीजिए माँ! मैं उस प्यार पर विश्वास नहीं करता जो इतने छल-छद्म के बीच में पनपता है। काफी जहर पी चुका हूं। अब यह अमृत मेरे लिए काफी न होगा।

और इन्हीं शब्दों के साथ मैं उस कक्ष से बाहर हो गया। पिताजी के शब्द लगातार मेरे कानों में पड़ रहे थे—"सुनो राजेन्द्र मेरी बात सुनते जाओ बेटा। लौट आओ राजन। राजेन्द्र—राजेन्द्र—राज—।"

पिता की पुकार का स्वर धीरे-धीरे मन्द पड़ता जाता था। लेकिन गति के मेरे कदम उत्तरोत्तर आगे बढ़ते जाते थे।

चौबीस

इधर मुझे कई दिन से आत्म-निरीक्षण का अवसर कम मिला है। निरन्तर मैं काम में ही लगा रहा हूं। कभी यह सोचने का भी अवकाश मैंने नहीं पाया कि कब कहां मुझसे भूल हुई है। मैं उन व्यक्तियों में नहीं हूं जो सदा यह सोचकर चलते रहते हैं कि मेरा कदम कभी गलत पड़ ही नहीं सकता। गलतियां मैं नित्य करता हूं। यह बात दूसरी है कि गलतियों के बीच में पड़ कर भी मुझे सही रास्ता मिल जाता है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि दो-चार गलतियां एक सही रास्ते को जन्म दिया करती हैं!

मैं पहले तो अपने को देखता हूं। मैं सोचा करता हूं कि जिन लोगों की जीविका का मुझसे घनिष्ठ सम्बन्ध है उनकी शान्ति, रक्षा और उन्नति का ध्यान मुझे निरन्तर रहता है। मुझ से सम्बन्धित किसी व्यक्ति को आज कोई यह शिकायत तो नहीं है कि मैं उसकी बात नहीं सुनता?

यद्यपि आज मैंने पिताजी की आलोचना कर दी इसका मुझे कोई दुःख नहीं है। केवल एक उमेश की ओर मेरी दृष्टि जाती है। वह मेरा छोटा भाई है। उसके मन में कभी ऐसी बात नहीं उठनी चाहिये कि वह अकेला है। लेकिन अभी तो वह विद्यार्थी है। इसके सिवा उसे इतने आधुनिक माता-पिता की छत्रछाया भी प्राप्त है। लेकिन मेरा कोई अपना यदि अस्वस्थ रहता है तो उसकी ओर

दृष्टि तो सूक्ष्म रखनी ही होगी। और दृष्टि मैं उसको मानता हूँ जो उस प्रकाश को भी ग्रहण करने से नहीं चूकती जो अन्धकार से फूटता है।—अच्छा यह एकन नाम की अति भोली लड़की कौन है जो पिताजी को 'फादर' कह रही थी और बजन देने पर भी जिसके हाथ की काफी पिये बिना मैं चला आया हूँ!—होगी कोई। रेस्तोराँ में काम करती है। इतना जान लेना काफी है।

तिनके जो हवा में उड़ते हैं मैं उनको कैसे पकड़ सकता हूँ!

उस दिन मैंने बमना की बड़ी प्रशंसा की थी जब उसने अपनी आचार-सम्बन्धी पवित्रता और आदर्श-निर्वाह की बात अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से व्यक्त की थी। लेकिन यह भी खूब रहा कि वह तो उसका अभिनय मात्र था। तो मैं अभी तक इतना भोला बना हूँ कि कोई अभिनय करके मुझे ठग सकता है।

ठीक तो है। हमारा यह आज का जीवन भी अभिनय मात्र रह गया है!

यह कामी भाई साहब के साथ क्यों चली आयी? भाभी उसके सम्बन्ध में जो कुछ कह रही थी क्या वह सब सत्य था? क्या कामी भाई साहब के जाल में फँस चुकी है? उन्होंने उससे साथ चलने को कहा होगा। उन्हीं के संकेत पर वह यहाँ चली आयी है। उन्हीं के आदेशानुसार वह जनाने में बैठकर आयी थी। प्रसन्न भी वह यथेष्ट है। तो इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि पंछी के दाना चुगने का प्रबन्ध हो गया है।

वाह भाई साहब क्या कहने हैं!

बड़ी भाभी की बड़ी-बड़ी बातें हैं। मैंने जब उनके चरण छुए, तो सिर पर हाथ रखती हुई बोलीं—"प्रसन्न रहो। फिर मेरे सिर उठाते ही—'कहो कैसी रही? आखिर बुला ही लिया न तुम को सिर्फ एक चिट्ठी डाल कर।

बचपन में व्यायाम के सिलसिले में ड्रिल मास्टर साहब एक संकेतारम्भ दिया करते थे—'राइट एबाउट टर्न'। उसी का ध्यान आ गया।

मैं उनकी ओर एकटक देखता रह गया। वह नैनों में काजल खूब भरे हैं। और ब्लेस्टर के भीतर से झाँकती हुई साड़ी की यह आसमानी-काली-सफेद किनारी अनामिका में नीलम की अंगूठी पैरों में दो-दो चोंके वाली पीन नम्बर पर सुनहले काम की जूतियाँ उनकी रुचि से खूब मिलती जुलती हैं। पान मुँह

में इतना ज्यादा था है कि कहना पड़ता है—पान काल—पान की पीक काल—पीक की लीक काल !

खैर यह सब तो हुआ। भाभी के इस कथन पर मैंने कुछ नहीं कहा। तब उन्होंने झट से मेरा हाथ पकड़ लिया। बोलीं—"इधर आओ चलो पहले गाजर का हलवा खा लो।"—क्या कहा ? मैया के साथ नाश्ता ? जैसे तुम्हारे भैया वैसे तुम। अच्छा यह गहर बंबिया कहाँ से पटकार दी ! 'गहर बंबिया ! कहती क्या हो ! अरे विधवा है बेचारी। अपने घर में जो किरायेदार रहते हैं उनकी बहन है। पढ़ी-लिखी है। नहीं एक अच्छी-सी सरविस लगा देने के विचार में शायद—!

"पुराना तरीका है।—और, तो चिट्ठी तो पढ़ी ही होगी। अच्छा बातें उनमें जो लिखी थी उनमें माना कि थी कटुता। पर—यह हमारी बिल्कुल निजी बात है—उसमें उसमें असत्य बात क्या थी ?—अरे हटो हम से उड़ते हो ! हमने तुम्हारे ऐसे बहुतेरे महात्मा पुरुष देखे हैं। तुम्हारे ये भाई साहब भी तो जब मेरा ब्याह हुआ था दोनों वक्त सन्ध्या किया करते थे ! और साथ ही दोनों वक्त दंड-बैठक भी चला करती थी। एक बार नित्य तैल मर्दन होता था। सूर्योदय गंगाजी के स्नान में होता था। नित्य नियम से नौ बजे को जाना और पाँच बजे उठना। मगर अब पूछो कुछ विश्वास भर पियोगे तो कहेंगे—कुछ भी कोई चीज की चीज है !

स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ कि भाभी आज उस पत्र के जहर को साफ करने पर तुल गयी हैं।

छोटी भाभी से जब मिली तब तो अभिनय की हद हो गयी। बोलीं—"आ गयी रानी। चलो अच्छा हुआ। मुझे तो नींद ही न आती थी तुम्हारे बिना। अच्छा गाजर पर यह हरे रूमाल की पट्टी भी खूब तेज दे रही है। और कण्ठ पर उसके ये लाल-लाल रतन के छींटे ! मार डालो हम को। अरे छवि मुस्कराना और मुस्कराना में मेरे लिये भी कुछ छोड़ दिया करो जाने मन—। स्वास्थ्य तो अब पहले से जान पड़ता है ठीक है। मौसी के यहाँ खाने-पीने में कभी कोई खास कमी नहीं रहती। जाओ जाओ अभी पानी आ रहा है। लेकिन ठहरो मैं पानी गरम करवाये देती हूँ। हाँ यह भी ठीक है। पहले चाय पीलो। जाओ फिर

चलें।—इस मिश्री की डली का क्या नाम बताया ?—ओ सालों। अच्छा तो है। आओ साली तुम्हारा भी साथ हमारे यहां मिल जायगा। यहां किसी चीज की कमी नहीं है। बस उनको एक बात से चिढ़ है। जरा उसी का खयाल रखना। किसी काम के लिये कभी ना न करना। बाकी फिर डोंट फिकर। आओ आओ शरमाओ मत।

अब रह गये भाई साहब। सो उनसे भी वही मान। कहने लगीं—"मैं जानती थी तुम अब रानी को साथ बिना न मानोगे। मगर रामलाल कहता था—दो साल तक की जमानत भी अगर मांगी जाती तो वह भी दिलवायी जा सकती थी। साठ हजार क्या चीज है! —केस फौजदारी चल ही नहीं सकता मैंने पहले ही कह दिया था। —थके हुए बहुत होंगे वह तो चेहरे से मालूम पड़ता है। मगर चाय बनाने में इतनी देर क्यों? और आयी तो। लल्ला तुम्हीं बना दो एक कप मेरे लिए। चीनी जरा कम छोड़ना मगर। ज्यादा मिठास मेरे लिए कड़वाहट हो जाती है! —वा रानी मुसकरा रही है। अरे मैं कहती हूं मिठाई-मिठाई क्या चीज है! जो स्वाद नमकीन में है वह। चटनी रानी को थोड़ी और परोसना। पसन्द आयेगी। —पराठा बिल्कुल कच्चा है। —तुम यह ऐ को मुझ से खूब जरा सिका है—कुरकुरा-मुरमुरा।

चित्त ऊब गया इस प्रदर्शन से। ऐसा मालूम होने लगा जैसे उस घर का मेजने वाला कोई अन्य व्यक्ति था। अधिक ठहरने की गुंजाइश तो थी नहीं। दूसरे अभी हम को मधू वैसाली और अर्चना से भी मिलना था। इसलिए जब कभी इधर-उधर से घूम-घाम कर हम वहां पहुंचते तभी सर्वत्र बड़ी मामी की छाप दिखलायी देती।

अर्चना के सम्बन्ध में छोटी मामी का कथन अभी तक सही नहीं उतरा। जब-जब मैं उनके यहां गया वह गुम अध्ययन में लीन मिलीं। गप लड़ाते या ताश कैरम में वक्त काटते मैंने उस कभी नहीं देखा। परन्तु पता नहीं क्यों वह मुझे अधिक प्रसन्न कभी देख पड़ी नहीं। प्रायः कुछ ऐसा हुआ कि मेरे अचानक आ जाने पर गम्भीरता का स्थान प्रसन्नता की झलक ने अवश्य ले लिया। बात करते समय उल्लास की अनन्य मुद्राएं और बात समाप्त हो जाने पर पुनः गम्भीर चिन्तन।

एक दिन की बात है वह कपड़ों पर लोहा कर रही थी। मैंने पूछा—"मुरली बाबू का कोई पत्र-वत्र आता है ?

वह पहले तो चौंक पड़ी। फिर हँसने का उपक्रम कर कहने लगी—"हम दोनों में पत्र-व्यवहार की कभी नौबत ही नहीं आयी।—और अब तो बात ही दूसरी है। अब तो जो स्मृतियाँ हैं भी चाहती हूँ उन्हें भूल जाऊँ। और इतना कहते-कहते उसका कण्ठ भर आया। जी में आया अब चलना चाहिए। पर इधर मुरली बाबू का कोई समाचार नहीं मिला था। तभी पूछा—"आजकल हैं कहाँ कुछ पता नहीं दिया ?

जाकेट की तह बनाती-बनाती वह हँस पड़ी। कहने लगी—"भाग उनका क्या तो तब मिलता है जब कहीं से पुलिस की इन्क्वायरी आती है।

अब भी मन को सन्तोष नहीं मिला। बार-बार कुछ असंगति-सी खटकने लगती थी। शरीर की ओर ध्यान गया तो ऐसा जान पड़ा मानो चाँदनी अवश्य है लेकिन बदली में घिरी हुई!—पर जब कोई जान-बूझकर अपनी व्यथा छिपाना चाहता हो, तब उसके पीछे पड़ जाने में मुझे अपने प्रति कुछ हल्केपन का भान होने लगता है। इसलिये बस दो-चार मिनट की भेंट के पश्चात् मैं चल पड़ा हुआ।

मैं अभी उसके क्वार्टर से बाहर हुआ ही था कि वह झट से मेरे पास आ गयी। बोली—"सम्भव है अब की बार मैं आपको यहाँ न मिलूँ। स्थान बदलने की चिन्ता में हूँ। शीघ्र ही कहीं-न-कहीं चला जाना है।"

आश्चर्य के साथ मैंने पूछा—"क्यों ?"

अर्चना ने अपनी दृष्टि नीची कर ली। बोली—"मैं अब यहाँ रह नहीं सकती।

अब मुझे पूछना पड़ा—"क्यों ? ऐसी क्या बात है ?"

अर्चना मेरे पास आ गयी। एक बार माई साहब के बंगले की पोर्टिको की ओर दृष्टि डाल कहने लगी—"चौधरी साहब से दूर रहने में ही कुशल है।

अब मुझे छोटी भाभी के कथन का स्मरण हो आया। अतएव मैंने कह दिया—"अर्चना तुम वस्तुतः मेरी बहन हो। इसलिये अगर तुम को कभी थोड़ा-सा भी कष्ट हो तो तुम [illegible]"

आंसुओं की भाषा में अर्चना बोली—"मैं अपने भैया को पहचानती हूं।

तब से मैं बराबर यही सोचता रहा—"अर्चना तो भाई साहब के माया-जाल से बच जायगी। लेकिन इस भाभी की रक्षा कौन करेगा ?

अब जलपान की सामग्री प्रायः भाभी ही लेकर आती हैं। मैं तभी उसके मुख पर उसके मनोभावों की भाषा पढ़ने की चेष्टा करने लगता हूं। लेकिन अब तक मैं यही समझ रहा हूं कि भाभी को कोई शिकायत नहीं है। न अपने आप से—न जीवन से।

कल कुछ ऐसा हुआ कि छोटी भाभी को जुकाम के साथ-साथ ज्वर भी आ गया। दिन भर हो गया न व देख पड़ीं न मैं ही उनके कमरे में गया। इसलिए नहीं कि उनके साथ अपनी आत्मीय घनिष्ठता की बात छिपाना अब मेरे लिए अनिवार्य हो गया है। इसलिए भी नहीं कि अपने अहंकार की तृप्ति मैं इसमें देखता हूं कि मले ही कोई मुझ सोचता रहे पर मैं कभी कहीं किसी की प्रतीक्षा नहीं करूं। वरन् इसलिए कि अब धीरे-धीरे बड़ी भाभी मुझे पुनः अपना विश्वास-पात्र समझने लगी हैं। उनका यह पक्का विश्वास हो गया है कि अवसर आने पर मोम की भांति पिघल जाने पर भी क्षण भर का मौका पाकर मैं पुनः लोहा बन सकता हूं।

इसके अतिरिक्त और भी एक बात है। एक दिन बड़ी भाभी ने कहा था—'तुम्हारी और सब बातें तो मेरी समझ में आती हैं पर यह मैं नहीं समझ पाती कि तुम आखिर चाहते क्या हो ? मैं पूछती हूं तुम शादी क्यों नहीं कर लेते ? तुम एक सद्गृहस्थ का जीवन क्यों नहीं व्यतीत करते ? तुम समाज के साथ साथ अपने आप को भी धोखा क्यों देते हो ?

इसी समय छोटी भाभी आ पहुंचीं और दरवाजे पर पैर रखते ही एक छींक के साथ प्रवेश करती हुई बोलीं—"मौसी ने चलते समय कुछ कहा था तुम से ?"

मैंने मुसकराते हुए कह दिया—'मुझे तो इतना ही ख्याल है कि उन्होंने कहा था—अगर कोई जरूरी बात कहनी हो तो उसी वक्त कहना ठीक होगा जब यकायक छींक आ जाय'!

बड़ी मामी हंस पड़ी। और गम्भीर होने पर भी छोटी मामी के अरुणारे अधर विकसित हो उठे।

किन्तु तत्काल छोटी मामी हंसी पर नियमन करती हुई बोली—'मजाक छोड़ो। अच्छा क्या समझोगे यह स्पष्ट नहीं कहा था कि साथ तो मैं जा रही हूँ लेकिन उस मेल देना दो दिन बाद ही।"

मैं जानता था—ऐसी कोई बात माँ ने नहीं कही। फिर भी मैंने कह दिया —"हाँ याद पड़ता है—कहा तो था ऐसा कुछ। बल्कि साथ में इतना और जोड़ दिया था कि अगर छोटी बहू की तबियत यहाँ गड़बड़ हो जाय तो उन्हें साथ ही लिए आना। हम लोग यहाँ इस समय इसी विषय पर गुप्त मन्त्रणा कर रहे थे। नाहक तुमने बीच में आकर विघ्न डाल दिया।

बड़ी मामी न मालूम नहीं किस अभिप्राय से मेरी इस मजाक का समर्थन कर दिया। तीन्कम की अंगूठी को अनामिका के ऊपर घुमाती हुई व बोल उठी— "हाँ हाँ ठीक तो है। तुम यहीं तो देखने आयी थी कि मैं कुछ ज्यादा नाराज तो नहीं हो गयी हूँ। सो तुमने देख ही लिया कि 'यहाँ न व्यापहि राउर माया'। इसलिये अगर तुम जाना चाहो तो बिना किसी संकोच के जा भी सकती हो। क्योंकि जब तक तुम्हारी तबियत बिल्कुल सुधर नहीं जाती तब तक—। बड़ी मामी इसके आगे कुछ कहें कि छोटी मामी बोल उठी—मेरी तबियत तो अब सुधरने से रही।

दासी इसी क्षण आकर बोल उठी—"मेहमानी नहीं है। आपको बुला रही है बड़ी मामी।

'मुझ को बुला रही है?' बड़ी मामी बोली।

'हाँ।

तब बड़ी मामी कमरे से बाहर चली गयी। दासी भी उनके पीछे हो गयी। मेरा मन नहीं माना। मैंने छोटी मामी से कह दिया—"क्यों क्या मेरे यहाँ रहने से तुमको कुछ कष्ट होता है?

"तुम आज ही यहाँ से चले जाओ। अब कदाचित् तुम से मिलना न होगा। बस यही अन्तिम भेंट समझो। कहते-कहते छोटी मामी बिल्कुल मेरे पास आकर कहने लगी—मैंने आज बैंक से अपना सब रुपया निकलवा लिया है।

मेरी निजी सम्पत्ति है। इसके अधिकारी इस जगत में एक मात्र तुम हो ले लो चुपचाप। नहीं लोगे तो मैं जहर खाकर सो रहूंगी।

मैंने पूछा— ड्राफ्ट है या क्या ?

'ड्राफ्ट है इम्पीरियल बैंक का।

'कितने का ?

'पचास हजार का।

'प्रलोभन तो बुरा नहीं है। मेरे मुह से निकल गया।

तुम इसे प्रलोभन कहते हो ? शर्म नहीं आती ! देखो क्या नहीं है। आठ बजे हैं। नौ-दस की गाड़ी तुम को मिल जायगी। साढ़े नौ बहुत आराम से इलाहाबाद पहुच जाओगे। मधु से मिल नहीं पाये। मैं साथ भी अन्याय हो रहा है। लेकिन जाओ तुम छोड़ो दिल्ली। यह मेरा है। इतना कहकर वह ड्राफ्ट उन्होंने मेरे कोट के जेब मे छोड़ दिया और पान मुझ खिला दिये।

आज तक कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि मेरे वक्ष प्रान्त तक यह कोमल हाथ पहुचा हो। आज तक मैंने उनकी कोर्निश भी रहते नहीं की। पर आज भी मेरा मन मारी है बात से दबा हुआ। अन्त में सोचकर इसे स्वीकार किय लेता हूँ कि एक तो यह आत्मदान है। इसको का अधिकार मुझ नहीं है। दूसरे यह ऐसी सम्पत्ति है जिसका उपयोग है मेरे द्वारा कुछ अच्छा हो जाय तथापि एक हीन भावना मन से हट नहीं छोटी भाभी इतनी ऊंची है कि उन्होंने मुझे कैसा बना दिया है। और म भावना भी कैसी तीव्र और पैनी है कि सर्वस्व-समर्पण की इस पावन म कहती है— मेरे सामने से हट जाओ !

आसुओं के प्यार भरन चुपचाप अश्रु कोष में पड़ रहा। संभ चाहता कि चिर-विदा की इस पवित्र बेला में म तुम्हारा अवलम्ब करूं !

सब कुछ समाप्त हो जाना चाहता है। भाई साहब से विदा ले आ कहते हैं—रात को दो बजे आय थे। उसके बाद सबेरे नौ बजे उठकर कुछ

और इसी समय मेरे मुंह से निकल गया—"हमारे साथ चलो जमना। हम तुम्हारी दवा करवायेंगे और तब तुम्हारी तबियत बिल्कुल सुधर जायगी।"

मेरा इतना कहना था कि जमना ने मेरी तरफ घूर कर कुछ इस तरह देखा कि मैं सहम गया। ऐसा जान पड़ा जैसे उसके रूप में मेरी समस्त आत्म गरिमा ही क्षत-विक्षत होकर मेरा परीक्षण कर रही है! वह मेरे अन्दर प्रविष्ट होकर मुझे पूरी तरह पढ़ लेना चाहती है।

इतने में जमना फिर हँसी। बोली— हूं! तुम हो कौन? तुम्हारा विश्वास क्या? आज की दुनिया में विश्वास है कहां? तुम मुझे अपना विश्वास दे सकते हो? जिस-जिस का तुमने विश्वास किया उसका फिर क्या परिणाम हुआ? वाह रे वाह विश्वास के! तुम मुझे अपने साथ ले जाना चाहते हो जब मैं यह जानती हूं कि साथ चलते चलते तुम मुझे ऐसी जगह छोड़ दोगे जहां मैं अन्धे कुएं में जा गिरूंगी! तुमने अन्धा कुआं देखा है? ना भई, मैं तुम्हारे साथ वहां नहीं जाऊंगी जहां प्रेम की जगह पाखंड है और प्यार के नाम पर धोखा छल कपट माफ पू! तुम मुझे उनके पास ले जाओगे जो कहते—मैं खून हो गयी हूं! मुझ में खून लग गयी है! मैंने पाप किया है! मैं घृणा—घृणा—घृणा के योग्य हूं! मैंने अपना धर्म खो दिया है। पर वहां कौन बतलायेगा कि मुझ पर क्या बीती है! कौन कहेगा कि मुझ पर डाका डाला गया है—मैं लूटी गई हूं! मेरी लूट हुई है। कौन इस बात पर यकीन करेगा कि नशे के वक्त में मार डाली गयी थी। मैं होश में नहीं थी—मैं होश में नहीं थी। आप यकीन करेंगे? वह यकीन करेगा? तुम उसको जानते हो, जिसका अच्छा सा नाम है। मगर नाम से तुम्हें मतलब? समझ लो—यस्म-आई-आर। लेकिन तुम तुम नहीं जानते मैं क्या थी! तुम अब भी नहीं जानते मैं क्या हूं! मगर मैं इतना जानती हूं कि मैं क्या हूं। मैंने अपने को खो दिया मगर विश्वास कभी नहीं खोया! क्या तुम मेरा विश्वास छीन जाओगे? कभी मैंने अपना कुछ नहीं छिपाया। तुम मेरा कलेजा देखोगे? देखोगे मेरा कलेजा? यह लो देखो!

और बस इतना कहते ही जमना ने दोनों हाथों के पूरे पंजों को कुर्ती की दोनों सिमाओं में लगाकर उसे बीच से फाड़ते हुए कह दिया—"देखो! देखो!

मेरी निजी सम्पत्ति है। इसके अधिकारी इस जगत में एक मात्र तुम हो। तुम इसे ले लो चुपचाप। नहीं लोग तो मैं बाहर जाकर सो रहूंगी !

मैंने पूछा— ड्राफ्ट है या कैश ?

'ड्राफ्ट है इम्पीरियल बैंक का।"

कितने का ?

'पचास हजार का।

'प्रलोभन तो बुरा नहीं है। मेरे मुह से निकल गया।

तुम इसे प्रलोभन कहते हो ? शर्म नहीं आती ! देखो ज्यादा समय नहीं है। आठ बज रहे हैं। नौ-दस की गाड़ी तुम को मिल जायगी। सात-नौ बजे सवेरे बहुत आराम से इलाहाबाद पहुंच जाओगे। मधु से मिल नहीं पाया। वैशाली के साथ भी अन्याय हो रहा है। लेकिन जाओ तुम थोड़ा दिल्ली। यह मेरा आग्रह है। इतना कहकर वह ड्राफ्ट उन्होंने मेरे कोट के जेब में छोड़ दिया और दो बीड़ पान मुझे खिला दिये।

आज तक कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि मेरे बस प्राप्त तक उनका वह कोमल हाथ पहुंचा हो ! आज तक मैंने उनकी कोई भेंट बस रहते स्वीकार नहीं की। पर आज भी मेरा मन भारी है बोझ से दबा हुआ। लेकिन केवल यह सोचकर इसे स्वीकार किये लेता हूं कि एक तो यह आत्मदान है। इसको ठुकराने का अधिकार मुझे नहीं है। दूसरे यह ऐसी सम्पत्ति है जिसका उपयोग सम्भव है मेरे द्वारा कुछ अच्छा हो जाय तथापि एक हीन भावना मन से दूर नहीं रही है। भाभी भाभी इतनी ऊंची है कि उन्होंने मुझे बौना बना दिया है ! और यह विडम्बना भी कैसी तीव्र और पैनी है कि सर्वस्व-समर्पण की इस पावन घड़ी में मैं कहती हूं—"मेरे सामने से हट जाओ !

आंसुओं के प्यारे झरने चुपचाप अश्रु कोष में पड़ रहो ! मनार नहीं चाहता कि चिर-विदा की इस पवित्र बेला में मैं तुम्हारा अवलम्बन ग्रहण करूं !

सब कुछ समाप्त हो जाना चाहता है। भाई साहब से विदा ले आया हूं। कहते हैं—रात को दो बजे आये थे। इसके बाद सवेरे नौ बजे उठकर कुछ मालूम

है ? क्या उसका छोटी मामी और दादी आदि पर विश्वास नहीं रह गया ? और अवसर पाते ही अब भी न छोटी मामी को वापस भेजने को क्या तत्पर हो गयी ! भगवान जाने क्या होनहार है !—उस दिन काकाजी उस रेस्तोरां में मुझ से जो कुछ किया रहे थे उसी का यह परिणाम जमना की इस दुर्गति के रूप में तो नहीं हुआ है ?—लेकिन यह मैंने क्या किया कि जमना को छोड़ दिया। उस गाड़ी पर बैठाकर पागलखाने में तो कर ही देना चाहिए था। काकाजी की लाडली बेटी है वह।—"ए ड्राइवर। गाड़ी रोकना। मैं आजकल गलती बहुत कर रहा हूं। वहीं पीछे जहां वह पगली मिली थी। वह हमारे एक आदरणीय मित्र की लड़की है। उसे ठिकाने लगाना ही होगा मुझे। चाहे इसके लिए मुझ रात की यह गाड़ी छोड़ भले ही देनी पड़े।

"मगर अब वह मिलती भी बाबूजी !

'कोशिश से मिल सकती है ड्राइवर।

हम चले जा रहे हैं—चल जा रहे हैं। क्योंकि हम किसी की तलाश कर रहे हैं। हम खोजने गए हैं लक्ष्मी को धन को खोये हुए मन को बिछड़े हुए प्राण को छूट साथी को बहन और बराती को। दूल्हा की दुल्हिन को।—ठहरो यह भीड़ कैसी लगी है यहां ? —ओ ! जादूगर का खेल हो रहा है ! अच्छा चलो। जादूगर तेरे सब खेल अनोखे हैं। बाल-बाल पत्ती-पत्ती में अनोखापन है !—देखो जरा सम्हलकर गाड़ी निकालना। कोई बेचारा—बहुत अच्छा ड्राइव करते हो ड्राइवर इन कुत्ते को कितना बाल-बाल बचाया है तुमने।—लेकिन हम जमना को इस दुर्गति से नहीं बचा पाये। मुन्नी बाबू जैसे सांपों के विषैले दांतों से हम उसकी रक्षा नहीं कर सके क्योंकि काकाजी ने जमना की शादी में सम्पत्ति की ओर अधिक देखा—यह नहीं देखा कि वर चरित्र की सम्पन्नता कैसी है ?—ठहरो ड्राइवर इस मकानों में कहीं जमना तो नहीं बैठी है ?

बाबूजी मैंने तो कहा था अब उसका मिलना कठिन है। वहीं तो वह मिली थी। इसने हमको गाड़ी समय पर पहुंचानी है। इधर उस पगली का पता लगाना भी बहुत कठिन है। आप नहीं जानते बाबूजी इन लोगों का कुछ ठीक नहीं रहता। फिर अगर उसका नजदीक आदमी न होती तो आप उसको उसी वक्त छोड़ ही क्यों देते !

'यह तुम ठीक कहते हो ड्राइवर। मैंने अनेक बार यह अनुभव किया है कि मनुष्य का विवेक भी उसी समय चेतन रहता है जब भगवान की इच्छा होती है। ऐसा न होता तो आज संसार की उन्नति का इतिहास कुछ दूसरा होता। अच्छा तो तुमको जाना है।...ठहरो हमको इसी जगह उतार दो। मगर किसी से यह मत कहना कि हमने गाड़ी छोड़ दी है पर अभी दिल्ली नहीं छोड़ी। ये लो दो रुपये पान खाने का ।

× × ×

अरे यह तो वही कोठी है जहां मेरे पूज्य पिताजी निवास करते हैं!

उपेन्द्र पहले मिला। हाथ जोड़कर मुझे नमस्ते किया। नौकर को भेजकर मेरा बेडिंग ट्रंक और सूटकेस गाड़ी से निकलवा कर अन्दर रखवाया।

मैंने पूछा—"पिताजी हैं घर पर ?

वह बोला—"हैं तो। मगर इस वक्त मिलना न होगा।"

मेरे मुंह से निकल गया—"और भाभी क्या कर रही हैं ?

" भी उन्हीं के पास बैठी हैं। बहुत संयत वाणी में उसने कह दिया—"मगर इससे क्या ? आपको मैं अभी काफी नाश्ता भोजन... भोजन आज तो करेंगे न ?

मैंने अभी सायंकाल का भोजन किया नहीं था। इसलिये मुझे कहना पड़ा—"हां भोजन आज मैं नहीं करूंगा। मगर नाश्ता-वाश्ता कुछ नहीं। समझे! अच्छा ऐसा करो ऐस्प्रो की गोलियां मंगवा लो चार। मेरे सर में जरा दर्द है। ये लो पैसे।

"पैसे आपके आशीर्वाद से मेरे जेब में भी रहते हैं। एरी एलम एस्प्रो की गोलियां ला दो। वह एलन के पास जाकर बोला जो उस समय पाव रोटी पर जाम चला रही थी। इसके बाद उपेन्द्र ने मेरे पास आकर कहा—"उस दिन जब आप फादर और मदर से बिगड़ कर बिना काफी का एक घूंट पिये यहां से चले गये थे तब फादर बहुत रोये थे।

"अगर बहुत रोये न ! अच्छा ! कहकर मैं सोचने लगा—"मैं मानता था यह मेरी ज्यादती थी उनके साथ । पर अब यह सिद्ध हो गया कि दूर तक कोमल भावना के पीछे कठोरता का हाथ अवश्य रहता है ।

हम कमरे के अन्दर बैठे हों। दरवाजे पर चिक पड़ी हुई हो। कमरे के अन्दर छाया हो जिसे हम थोड़ा अंधेरा भी कह सकते हैं। बाहर तो दिन का प्रकाश है ही। कमरे के अन्दर से सड़क पर चलने फिरने वाले आदमियों को हम बराबर पहचान लेंगे। पर वे आदमी हमको नहीं देख पायेंगे। अर्थात् प्रकाश छाया का भेद नहीं पा सकता परन्तु छाया प्रकाश का सारा भेद जान लेती है। अर्थात् अन्धकार तो प्रकाश को पूर्ण रूप से देख पाता है—पर प्रकाश उसके हृदय-भेद को देख नहीं पाता ।

मैंने पूछा—"और चाची क्या कहती थी ?

"वे क्या कहेंगी ! उपेन्द्र कहने लगा—"आप तो जानते हैं, वे मेरी मां हैं ! कहते-कहते उपेन्द्र ने अपना सिर नीचा कर लिया।

"देखो उपेन्द्र !

"हां दद्दा !

'मालूम है तुम्हारा असली घर कहां है ?

'इलाहाबाद सुना करता हूं ।

"वहां तुम्हारा कौन-कौन रहता है यह भी मालूम है ?

"सुनता हूं बहन है एक जो विधवा है । और सुनता हूं एक भाई भी है आपके सिवा ।

'लेकिन तुम्हारे एक मां भी और है उपेन्द्र । पर्दा था कि अगर एक बार देख भर लेते तो तुम उनके करुण हृदय का प्यार पाकर धन्य हो जाओगे।"

"अच्छा ! तो वे मुझ मेरी इन मां से भी अधिक प्यार करेंगी ! —लेकिन मां मुझे यहां से ही कहां जाने देंगी ! वे तो सोचा करती हैं कि अब उनको इलाहाबाद कभी जाना ही नहीं है ।

'कदाचित् तुम नहीं जानते उपेन्द्र कि एक आदमी ही नहीं हमारे पूज्य पिताजी भी एसा सोचने के लिये विवश हैं । पर उनका यह सोचना तुम्हारे जन्म अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता और फिर। तुमको मालूम

चाहिये कि इलाहाबाद में तुम्हारा घर ही नहीं पचीस-तीस हजार रुपये वार्षिक आय की जमींदारी भी है।"

'लेकिन दद्दा इन लोगों का कहना तो यह है कि उस जायदाद में मुझ एक पाई भर भी हिस्सा नहीं मिल सकता।

'न्याय-विधान से नहीं मिल सकता। यह बात सही है। लेकिन इस न्याय-विधान से परे जो एक नैतिक विधान है उसमें तुम्हारे लिये बहुत जगह है छोटे भैया।

अब समझ में आ रहा है दद्दा कि तुम्हारे चले जाने के बाद काका क्यों बहुत दुखी हुए थे। बार-बार आंसुओं से भीगी आंखों से वे मुसकरा उठते और कहते—'एक मेरे राजेन्द्र की वाणी ही अमर होकर रहेगी। हम सब मिट्टी के पुतले एक दिन इसी मिट्टी में मिल जायेंगे। बार-बार वे तुम्हारे इन शब्दों को दोहराते-दोहराते पलंग पर लेटे-लेटे छटपटाया करते थे—'मेरे मुंह पर थप्पड़ मार दीजिये पिताजी मगर सच्ची बात कहने का मेरा मानवी अधिकार मुझ से मत छीनिये।

"सोचता हूं तुम ठीक कह रहे हो छोटे भैया। तभी चाची ने कहा था—तुम नहीं जानते राजेन्द्र वे तुम को कितना प्यार करते हैं।

'मैं झूठ बोलना नहीं जानता दद्दा।

मैं अपनी नयी पीढ़ी के सम्बन्ध में यही स्वप्न देखा करता हूं उपेन्द्र।

फिर मैंने उपेन्द्र को छाती से लगा लिया। मैंने उसे समझाया कि तुम मुझ से जरा भी दूर नहीं हो। न्याय-विधान से बाहर चले जाने के बाद भी पिता जी मेरे पिता के स्थान पर ज्यों-के-त्यों विराजमान हैं। और उनकी जीवन-संगिनी होने के अनन्तर चाची जी भी मेरी मां के समान हैं।

'लेकिन उन्होंने तुम्हारा जैसा तिरस्कार किया है उसे तो मैं जीवन भर भूल नहीं सकूंगा दद्दा! उस दिन से अनेक बार मेरे मन में आया है—पिताजी इतने कामी हैं कि अब उनके साथ मेरा रहना मुश्किल हो गया है। जो व्यक्ति आप जैसे देवता की इतनी उपेक्षा कर सकता है वह फिर कौन-सा पाप नहीं कर सकता!

"ऐसा मत कहो उमेश। पिता का तिरस्कार भी प्यार का ही एक रूपान्तर होता है। मेरा इतना कहना था कि उसी समय एकाएक आकर ऐम्पो की टमिछेद्स देती हुई कहने लगी—"काका बुला रहे हैं।"

मैं तुरन्त ऊपर जाकर आगे बढ़ा और पिताजी के चरणों पर गिर पड़ा। उनके आगे मैं आंसुओं के रूप में अपना आत्म-रस उंडेल रहा हूं मैंने उनको कष्ट दिया है मैंने उनको भी दुखाया है यही सोचकर मैं अपनी आत्म वेदना के उद्दाम वेग को किसी तरह रोक नहीं सका। उस अवस्था में मेरे मुंह से निकल गया—"मैं उस दिन अनायास आ गया था। यह तो मैं जानता था कि आप इसी संसार में हैं। पर भेंट आप से नहीं हो रही थी। भगवान ने कुछ ऐसा संयोग उपस्थित कर दिया कि भेंट भी हो गयी। मेरे अन्दर ज्वालामुखी के विषम विस्फोट प्रस्फुट हो रहे थे आंधियों के विषम हाहाकार उठ रहे थे बिना किसी भय और संकोच के मैंने उन्हें आपके समक्ष रख दिया। आपने तो मुझे बुलाया नहीं था फिर भी मैं आ गया था। आपने मुझे बोलने से मना कर दिया फिर भी मैं बोला। मैं केवल यही देखना चाहता था कि आपके ऊपर मेरे कथन की कैसी प्रतिक्रिया होती है। उससे मुझे इस बात के अनुमान करने का अवसर मिला कि आदर्श के प्रति आपके अन्दर कितनी आस्था है। हम गाली उसी समय देते हैं जब हमारे पास सत्यासत्यों का कोई उपयुक्त तर्क रह नहीं जाता और हमारा दुर्बल रूप हो जाता है। आपने मुझे अपमानित किया तभी मैं समझ गया कि मैंने आपके अहम् को विचलित कर दिया है। पर आपने सोचा भी न होगा कि पुत्र का धर्म पालन उस समय मेरा उद्देश्य ही नहीं था समाज के साधारण मानव की-सी एक आलोचक दृष्टि-मात्र मैं आपके समक्ष रखना चाहता था। इस परीक्षा में किसी स्पष्ट दृष्टिकोण की अपेक्षा केवल अपमान पाकर मैंने समझ लिया समाज का मुंह बन्द कर सकने योग्य कोई बात आपके पास नहीं है। पर अब मैं सोचता हूं कि नहीं—बस इतना ही—मान लेना और तब आपके भावी जीवन-मात्र के सम्बन्ध में कुछ न कहने की बात मानना मेरे उस व्यक्तित्व का ही धर्म है जिसे आपके पुत्र होने का गौरव प्राप्त है। इसीलिए मैं उमेश को समझा रहा था कि पिता का तिरस्कार भी प्रकारान्तर से उसका प्यार ही होता है।

पिताजी बोल उठे— 'एक जमींदार हैं राजेन्द्र का मौसेरा भाई। अच्छा पैसे वाला है। मगर ।

'उसको आज ही वहां से ले जाना है जैसे भी हो वैसे। और मुझे तुरन्त इलाहाबाद चला जाना है। पर उससे पहले एक और काम करना है उपेन्द्र। तुम्हें मेरे साथ चलना होगा ममी।

काफी का कप खाली करते हुए मैंने जब ऐसा कह दिया तो पिताजी बोले— अब इतनी रात को कहां जाओगे ? कल चले जाना।"

आज के काम को कल पर छोड़ देने में मुझे नींद नहीं आती पिता जी। आपको मालूम होगा काका सांवरे की एक लड़की थी जमना। वह पागल हो गयी है। उसी को खोजना है। कहीं-न-कहीं सड़क पर मिल ही जायगी। मुझे अभी रास्ते में मिली थी जब मैं स्टेशन आ रहा था। पर उस समय मैं इतना आत्मरत था कि मुझे अपने कर्तव्य का ध्यान ही न रहा। काकाजी को अभी फोन पर बुलाना है और इसी सम्बन्ध में आवश्यक बातें करनी हैं।

बिना किसी अन्य आपत्ति के पिताजी बोले— 'फोन तो अभी कर लो। उपेन्द्र इनको मिस्टर पिल्ले के फोन पर ले जाओ। पर जमना का पता कल लगाओ तो कैसा हो। सरदी के दिन ठहरे। रात को कहां भटकते फिरोगे।

'पिताजी आप तो जानते हैं—कर्तव्य दुर्घटना की भांति समय-कुसमय का विचार नहीं करता। मुझे जाना ही होगा।

"लेकिन तुम दोनों एक पगली को पकड़कर लाओगे कैसे ! फिर उसका विश्वास क्या ? कौन-सा ऐसा दुष्कर्म है जिसको ये पागल नहीं कर सकते !

तभी चाची बोल उठीं— 'ना राजेन्द्र इस तरह खोजना ठीक नहीं। मेरी राय में तो जब काकाजी आ जायं तभी जाना ठीक होगा। क्योंकि मान लो वह मिल भी गयी तो उसको इस कोठरी में तो रक्खा जा सकेगा नहीं।

"हां यह भी एक सवाल है जिसकी ओर मेरा ध्यान नहीं गया था। कहता हुआ मैं कुरसी से उठा और सोचने लगा—मनुष्य के प्रत्येक निश्चय के प्रकृति का विरोधी कार्य चला करता है।...पर जमना मिल जाय तो हम उसे मधु के यहां तो रख ही सकते हैं। फिर ध्यान आया लेकिन काली को अब कैसे

यहां छाया काम। ऐसा जान पड़ता है चारों ओर नैतिक पतन की आग लगी हुई है और मैं अपने आत्मीय स्वजनों को उससे बचाता हुआ मारा-मारा फिर रहा हूं।—पर उपेन्द्र के साथ जब मैं पड़ोस के मिस्टर पिल्ले के यहां फोन करने जा रहा था तभी फाटक के आगे एक गाड़ी खड़ी थी और उससे बड़ी मामी जानकी को साथ लिये उतर रही थी।

× × ×

इधर कई दिनों से कुछ विचित्र मनोदशा चल रही है। स्पष्ट जान पड़ता है कि मैं नहीं मेरा स्थान भर चल रहा है। अर्थात् मैं स्वयं तो नहीं चल रहा हूं पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर मैं पहुंच अवश्य जाता हूं। यद्यपि मुझ में कोई गति नहीं है किन्तु गति के साथ लटका या जुटा हुआ मैं अवश्य गतिमय हूं। ज्यों लोग अपनी गाड़ी के पीछे एक खिलौना लटका लेते हैं। गति में आकर जब गाड़ी उछलती है तब वह खिलौना भी उछलने लगता है। जब गाड़ी दौड़ती है तब उसके अन्दर लटका हुआ वह खिलौना भी यत्र-तत्र-सर्वत्र चक्कर लगा आता है।

आजकल बिल्कुल यही स्थिति मेरी भी हो गयी है। माँ ने कह दिया—"तुम्हें दिल्ली जाना है।" और मैं दिल्ली चला आया। यहां आने पर दो-तीन दिन बाद छोटी मामी ने कह दिया—"तुमको इलाहाबाद आज ही लौट जाना है।" और फलतः मैं इलाहाबाद लौटा जा रहा था। पर बीच में मिल गयी यह जमना। फिर इसी कारण मुझे यहां रुक जाना पड़ा। यद्यपि दुनिया को इस बात की चिन्ता नहीं है कि लोग पागल क्यों हो जाते हैं किन्तु मुझे तो यह सोचना ही पड़ेगा कि जमना क्यों पागल हुई! और हो ही गयी तो अब वह कैसे स्वस्थ हो सकती है!

मैंने जब फोन पर लालाजी से कहा—"जमना पागल हो गयी। वह मुझे मिली भी थी। पर जब तक मैं अपनी साधारण चेतना में लौटूं तब तक वह स्थानान्तरित हो गयी। खोजने पर वह मिल तो जायगी ही। उसे तुरन्त या तो पागलखाने में दाखिल करवा देना है या उसका घर पर ही इलाज कराना है। पर यह तो तभी न होगा जब आप आयेंगे।"

मैंने एक सांस में लालाजी से यह सब कह दिया। मैं फोन पर उनकी प्रतिक्रिया नहीं सुनना चाहता था। मैं तो केवल उनका निश्चित कार्यक्रम जानना

चाहता था। मैं इसीलिये उनका उत्तर सुनने को अधीर था। पर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब उन्होंने एक क्षण रुके बिना जवाब दे दिया—"चलो यह बहुत अच्छा हुआ राघवेन्द्र। पतित होकर कुटुम्ब की सारी प्रतिष्ठा को देने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि जमना पागल हो जाय या मर जाय।

तभी मैं सोचने लगा यह भी तो हो सकता है कि लालाजी ऐसा समाचार सुनने के लिये पहले से तैयार बैठे हों। जो हिंसा पर विश्वास करते हैं उनसे सब हो सकता है।

लाली को मैंने ज्यों ही एकान्त में बुलाया त्यों ही मुझे सामने आता देखकर वह झट चेस्टर का बटन लगाकर आश्चर्य से बोली— 'भैया तुम इलाहाबाद गये नहीं!

और बड़ी भाभी बोलीं—"हमारे साथ यह छल-विद्या कब से सीख ली लल्ला ?"

तब अत्यन्त संकोच से दबकर मैंने कह दिया— 'छल-विद्या मैं क्या करूंगा भाभी। और करनी भी होगी तो उसके लिए तुम न होगी कभी। विश्वास रक्खो। अकस्मात् एक घटना के जाल में पड़ जाने के कारण मुझे यहां रुक जाना पड़ा है।"

तब मैंने जमना की सोचने की बात उन्हें विस्तार-पूर्वक समझा दी।

सोचता हूं मुझे दुःख इस बात का नहीं है कि जमना क्यों पागल हो गयी। क्योंकि यही या इसी तरह की दुर्गति उसके लिए निश्चित थी। कदाचित् इसीलिए मैं यह भूल ही गया कि लालाजी की लड़की होने के कारण उसके साथ मेरा निजी कर्तव्य हो जाता है कि मैं तत्काल उसके नीरोग होने की कोई उचित व्यवस्था करूं। अधिक दुःख तो मुझे इस बात का है कि आज भी व्यक्ति का मूल्य ही मेरे लिए अधिक निकट बना है। जमना की इस दुर्दशा पर मैं ध्यान इसीलिए तो दे रहा हूं कि वह लालाजी की लड़की है। पर यदि वह किसी अन्य व्यक्ति की लड़की होती, तो मैं अपनी यह यात्रा कदापि स्थगित न करता। मैं नहीं जानता वह कौन सा दिन होगा जब जमना की स्थिति में मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए मेरा मन प्राण एसा ही व्याकुल हो उठेगा!

फिर मैंने लालीकी ओर ध्यान देते हुए कहा— 'अरे लाली चाची भी तो नहीं हैं!

"कहां भैया ?

वे ही इस काफ की मक्का हैं। और मेरे पिताजी भी सदेह-सप्राण उन्हीं के साथ हैं।

"तुम झूठ तो कभी बोलते नहीं और मजाक मुझ से कर नहीं सकते। तब सचमुच—?

"चलो न मैं उनसे तुमको अभी मिलाये देता हूं।

बड़ी भाभी से मैंने कह दिया—'इसको ऊपर भेजकर मैं अभी आया।"

अब आगे-आगे मैं और आगे-पीछे काली। हंसती-सी काली कह रही थी—"यह तो मैं नहीं जानती थी कि वे बाबाजी के साथ रहती हैं। पर उनकी इसी तरह की किसी-न-किसी रचना की बात हम लोग सोचते जरूर रहते थे। लेकिन भाग्य की बात तो देखो भैया कि उन्हें बाबाजी मिल गये। कौन जानता था कि उनकी मृत्यु भी इस रचना की भूमिका बन जायगी।

बड़ी भाभी के आ जाने से बड़ा काम बन गया। काली अपनी मां के पास रह गयी और मैं बड़ी भाभी के साथ चला आया। किन्तु जब बंगले के अन्दर न जाकर मैंने भाभी से कह दिया—'जमना को लाना ही पड़ेगा बड़ी भाभी। इसलिये मुझे थोड़ी देरी होगी एक-आध घंटे के लिए।

वे सड़क पर गाड़ी से उतर कर जब अन्दर जाने लगीं तब मैंने उनसे यह भी कह दिया—"छोटी भाभी को मेरा यह भेद न बतलाइयेगा।"

इस पर वे हंस पड़ीं। बोलीं—"रानी को ड्राइवर पहले ही सब कुछ बतला चुका है।

अब मैं लज्जित हो उठा। मेरे मन में आया—क्या इसका यह अभिप्राय नहीं कि मैं यदि कोई बात छिपाना भी चाहूं तो छिपा नहीं सकता?

—अच्छा तो यह बात है। हर बात का मूल्य होता है। इस बात को छिपाने के लिये भी मुझे ड्राइवर को दस-पांच रुपये देने चाहिये थे।

तो मनुष्य का विश्वास आज कोई वस्तु नहीं रह गयी। आज उसको भी हम पैसे से खरीद लिया है। जो भी हो, मैं छोटी भाभी से बिना मिले जमना को लाने निकल पड़ा। —पर मैं भी खूब हूं। संसार आदमी को खोजता है पर मैं आजकल एक पगली को खोजता हूं।

और इसी समय मेरे मुंह से निकल गया—"हमारे साथ चलो जमना। हम तुम्हारी दवा करवायेंगे और तब तुम्हारी तबियत बिल्कुल सुधर जायगी।

मेरा इतना कहना था कि जमना ने मेरी तरफ घूर कर कुछ इस तरह देखा कि मैं सहम गया। ऐसा जान पड़ा जैसे उसके रूप में मेरी समस्त आत्म गरिमा ही क्षत-विक्षत होकर मेरा परीक्षण कर रही है। वह मेरे अन्दर प्रविष्ट होकर मुझे पूरी तरह पढ़ लेना चाहती है।

इतने में जमना फिर हंसी। बोली—"हुं ! तुम हो कौन? तुम्हारा विश्वास क्या? आज की दुनिया में विश्वास है कहां? तुम मुझे अपना विश्वास दे सकते हो? जिस-जिस को तुमने विश्वास दिया उसका फिर क्या परिणाम हुआ? बड़े वैन वाले विश्वास के ! तुम मुझ अपने साथ ले जाना चाहते हो जब मैं यह जानती हूं कि साथ चलते-चलते तुम मुझे ऐसी जगह छोड़ दोगे जहां मैं अन्ध कुएं में जा गिरूंगी ! तुमने मेरा कुआ देखा है? ना भई मैं तुम्हारे साथ वहां नहीं जाऊंगी जहां प्रेम की जगह पाखंड है और प्यार के नाम पर धोखा छल कपट वाक्-चु ! तुम मुझे उनके पास ले जाओगे जो कहेंगे—यह जूठन हो गयी है। मुझ में घुन लग गयी है ! मैंने पाप किया है ! मैं घृणा—घृणा—घृणा के योग्य हूं ! मैंने अपना धर्म खो दिया है। पर वहां कौन बतलायेगा कि मुझ पर क्या बीती है ! कौन कहेगा कि मुझ पर डाका डाला गया है—मैं लूटी गई हूं ! मेरी लूट हुई है। कौन इस बात पर यकीन करेगा कि लूट के वक्त मैं मार डाली गयी थी। मैं होश में नहीं थी—मैं होश में नहीं थी। आप यकीन करते ? वह यकीन करेगा? तुम उसको जानते हो जिसका अच्छा सा नाम है। मगर नाम से तुम से मतलब? मतलब तो—यस-आई-वाह। लेकिन —हाय तुम नहीं जानते मैं क्या थी ! तुम अब भी नहीं जानते मैं क्या हूं ! मगर मैं इतना जानती हूं कि मैं क्या हूं। मैंने अपने को खो दिया मगर विश्वास कभी नहीं खाया ! क्या तुम मेरा विश्वास लौटा लाओगे? कभी मैंने अपना कुछ नहीं छिपाया। तुम मेरा कलेजा देखोगे? देखोगे मेरा कलेजा? यह ला देखा !

और बस इतना कहते ही जमना ने दोनों हाथों से पूरे पत्रों को कुरती की दोनों बांहों में लगाकर उस बीच में फाड़ते हुए कह दिया—"देखो ! देखो !

हे प्रभु पता नही मम ऐसे दृश्य दिखलाने मे तेरा क्या प्रयोजन है ? अब मैं कहां जाऊं इस समय ! मैंने तो कभी सोचा नही था कि मेरे एक नन्हे-से प्रश्न का यह परिणाम होगा । क्या अब मैं किसी से बात भी न करूं ? क्या मैं उससे भी बात न करूं जिस से आज कोई बात करना पसन्द नहीं करता ! क्या मैं अब आँखें बन्द करके चला करूं ! मैं मैं क्या करूं—क्या न करूं ! नयनहीन को राह दिखा प्रभु !

वह ठट्ठा मार कर हंस रही है यद्यपि मैं नही जानता यह कैसी हंसी है। ये गोल-गोल सुनहले मांसल कन्दुक जिन पर नखों की खरोच से रक्तिम रेखाएं बना दी हैं ! ये नीले-काले चिन्ह जिन्होंने पशु-वृत्तियों का पोषण किया है ! कोई बतलाये मुझे क्या आज की सभ्यता ने इन्ही दृश्यों के नाम पर तृप्ति की डकार लेना नही स्वीकार किया है ?

सर पर एक सफेद साफा बांधे ब्राउन गरम कोट और सफेद जीन का पैंट धारण किए एक साहब बोल उठे— 'पागल जरूर है मगर क्या बदन बना है साहब जिसका जवाब नही !

क्या कहने हैं ! एक क्षत-विक्षत नारी-वक्ष के सम्बन्ध में आपकी इस गम्भ ग्राहकता ने अपनी जिस बर्बर पशु-प्रकृति का परिचय दिया है उसे हमारी संस्कृति सदा याद रक्खेगी ! यकायक चौराहे पर पुलिस के सिपाही की ओर दृष्टि जा पड़ी । मैंने उसके निकट जाकर कहा— 'आपको मेरी थोड़ी-सी मदद करनी होगी ।

आश्चर्य्य से उसने पूछा— 'क्या ?

मेरे मुंह से निकल गया— 'एक खानदानी लड़की पागल हो गयी है। आपने उसे देखा भी होगा। वह खड़ी-खड़ी बक रही है। उसे अपनी गाड़ी पर ले जाना है। दो-एक तगड़ी स्त्रियां साथ के लिए चाहिए जो मौका पड़ने पर उसे सम्हाल सकें। आप इस गाड़ी का नम्बर नोट कर लीजिये। हम उन स्त्रियों को यहीं भेज जायेंगे।

सिपाही पहले तो सोच-विचार में पड़ गया। फिर बोला— 'मैं इस मामले में आपकी कोई मदद नहीं कर सकता। पता नही असली वाकया क्या है ! माफ कीजियेगा आजकल किसी पर भरोसा करना एक परेशानी मोल लेना है।"

सिपाही को क्या दोष दूँ! जब हमारा ढाँचा ही ऐसा है जिससे हम बाल पापों में छिप रह जाना स्वाभाविक है तब आजाद हिन्दुस्तान की पुलिस को पहला पाठ यही क्यों न पढ़ाया जाय कि हर एक आदमी पर सन्देह करो। समझ लो कि वह झूठ बोलता है—और तुम्हें जानबूझ कर धोखा देना चाहता है। हर सभ्य नागरिक को आवारा समझो। जो अपनी धर्मपत्नी को साथ लिये जा रहा हो उसका चलना रोक दो। उससे कहो—"ठहरो! मुझे तुम पर शक है। तुम इस औरत को कहीं से भगा लाये हो। पहले सबूत दो कि यह स्त्री वाकई तुम्हारी है!

पर जब वास्तविक जगत् में आ पहुँचा तो लाचार होकर मुझे—पुलिस स्टेशन जाना ही पड़ा। पहले तो सब-इन्स्पेक्टर साहब ने भी टालना चाहा—मगर साहब जान भी दीजिए। इन बातों में क्या रक्खा है! बैठे-ठाले बेकार में आप एक परेशानी मोल ले रहे हैं।

सेवा के क्षेत्र में इस प्रकार के उपदेश और परामर्श प्रायः मनोरंजक बन जाते हैं। हँसते हुए उत्तर में मैंने कह दिया—"पर वह मेरे एक बहुत करीब की बेटी है। उसको इस हालत में छोड़ा नहीं जा सकता।

तब उन्होंने दो सिपाही मेरे साथ कर दिये। उनको लेकर मैं फिर जमना के पास जा पहुँचा। संयोग से वह उस समय चुप थी। मैंने कहा—'चलो मेरे साथ चलो जमना।

'कौन? तू मुझे अपने साथ ले जायगा! तू!' कहते-कहते दाँत पीसते हुए जमना ने आव देखा न ताव मेरी कनपटी पर तानकर एक ऐसा तमाचा जड़ दिया कि मुझे चक्कर आ गया!

तत्काल मैंने मन-ही-मन कह लिया—'प्रभु, तेरी इच्छा पूर्ण हो।'

दो में से एक सिपाही बोला—'बतलाइए, अब क्या करना होगा?'

मेरे मुँह से निकल गया—"दोनों हाथों पर उठा लीजिए और गाड़ी पर बैठालकर रस्सी से जकड़कर बाँध दीजिए।

पाँच मिनट में इन सिपाहियों की सहायता से मैंने परिस्थिति पर पूरा नियंत्रण कर लिया।

यद्यपि हम जमना को गाड़ी में कसकर बाप मधू के यहाँ लिए जा रहे हैं मेरी कनपटी अब भी दर्द कर रही है। उसमें थोड़ी सूजन भी आ गयी है। उधर गाड़ी पर जबरदस्ती बैठाते समय जमना ने मेरे हाथ पर काट भी खाया है। खून तो नहीं आया लेकिन दाँतों के निशान अब भी बने हैं। सोचता हूँ मेरी इस कनपटी पर जो थप्पड़ लगा है—और मेरे हाथ पर ये जो दांत लगे हैं वे भी—आज की सभ्यता की देन हैं।

बारम्बार मेरे अन्दर का शैतान मुझ से कह रहा है— और सुधारक *बनोगे ? दीन-दुखियों के साथ और सहानुभूति रक्खोगे ?*

पर मुझे शैतान के इस बचपन पर *हंसी आ रही है।* वह सोचता है जब आदमी पर संकट आये तब उसे अपमानित किया जाय उसके समस्त स्वाभिमान को लातों से कुचलकर उसका मिजाज दुरुस्त कर दिया जाय!

लेकिन मैं आदमी कुछ अन्य धातु का बना हूँ। मेरा मूल्य तो तभी लग सकता है जब मुझ पर विपत्ति आये। आज यद्यपि ऐसा कुछ नहीं है फिर भी *सोचता हूँ—हमारे राष्ट्रपिता बापू ने जिस भावना से अपनी छाती* पर गोली सही क्या उन भावनाओं के पोषण के लिए मैं अपने मुंह पर एक थप्पड़ भी नहीं खा सकता!

कुछ नहीं। तुमने बहुत उत्तम पुरस्कार दिया है जमना! जब इस थप्पड़ के लिए तुम्हारा हाथ उठा तब मेरा मस्तक भी गौरव से थोड़ा बहुत ऊंचा उठ ही गया। संसार मुझे चाहे जो समझे।

अजीब पहेली है। दुनिया समझती है—थप्पड़ अपमान का चिन्ह है। किन्तु मैं समझता हूं वह मेरी सेवा का एक प्रमाण है।

अपमान और सम्मान एक ही भावना के दो रूप हैं। भेद केवल दृष्टिकोण का है।

जमना को सिपाहियों के साथ गाड़ी पर छोड़कर हमने पहले सब लोगों से मिल लेना ही उत्तम समझा।

आशीर्वादोपरान्त दीक्षितजी बोले—"तुम्हारे आने की खबर तो मुझे लग गयी थी। यही सोच रहा था यहां आने की फुरसत नहीं मिली होगी। यद्यपि मुझ में भी अक्सर ऐसा हो जाता है फिर भी बुरा तो लगता ही है।"

मैंने जमना की बात संक्षेप में उपस्थित कर उसके लिए एक कमरा खाली कर देने का अनुरोध किया तो उन्होंने उसी समय एक कमरा खाली किया और साथ ही सारी व्यवस्था अपने हाथ में ले ली।

मधु हंसते उलाहने के साथ कहने लगी—"अब फुरसत मिली है भैया को! और आप कुछ न कहें, इसलिए मैंने तत्काल पास जाकर कह दिया—"धीरे से बात करो। साथ में लालाजी की बड़ी लड़की जमना भी आयी है। बेचारी पागल हो गयी है। रात किसी तरह कट जाय तो सबेरे ही आगरे भेज दूं। लालाजी भी कल आ जायेंगे।

इसी समय हमने जमना को उस खाली कमरे में ठहरा दिया। उसमें एक पलंग बिछा था। जमना ने उस पर पड़े सारे वस्त्रों को एक ओर फेंक दिया। खुली चारपायी पर वह बैठ गयी और खिड़की के उस पार देखने लगी। तब विशेष व्यवस्था के लिए कमरा बाहर से बन्द कर हम अन्दर चले आये।

चरण छूने पर मां ने सिर पर वृद्ध-दुर्बल हाथ रखकर कहा—"सुखी रहो। लेकिन बेटा यह झंझट यहां क्यों ले आये। कौन रात-भर रखवाली करेगा!

"रखवाली मैं कर लूंगा मां। आप बेकार परेशान हो रही हैं।

"हां तुम तो खूब कर लोगे और मैं तुमको उसके पास छोड़ भी दूंगी! — देखती हूं कर क्या रही है।

कहकर वे जमना को देखने के लिए चल दीं।

इसी क्षण 'कोई न करे, मैं कर लूंगी।' कहती-कहती चेस्टर के भीतर से [illegible] के दो दुर्बल हाथ निकालती हुई शैफाली आ पहुंची। बोली—"ओह अच्छा हुआ है!

"पगली नहीं थी। अरे यह हमारे लालाजी की बड़ी लड़की जमना है, महारदे के राय चन्द्रनाथ की विवाहिता पत्नी।

"तो उसकी यहीं क्यों नहीं टल जाय!" उत्तर के साथ शैफाली अब भी हंस रही थी।

मैंने कह दिया—"मन मौजी बंगाली के लिए एक ऐसा उदाहरण इस बार मैं चलना चाहिए जिसे वार्तालाप में उदाहरण के समय सजीव रूप में पेश

किया जा सके। क्योंकि एक-न-एक दिन उनकी भी यही मति होगी यह निश्चित है।"

वैशाली सर हिलाती अपलक आँखें घुमाती और फिर भी जैसे अपने को छिपाती हुई-सी कहने लगी—"अब आप ऐसा नहीं कह सकते। इतने दिन हो गये मैंने आपको एक भी पत्र लिखा ?

'लेकिन वैशाली मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ कि अपनी इस तीव्र इच्छा को रोकने का पहले तो निरन्तर ध्यान रखना फिर अवसर आने पर उसे अपने निर्मोह का अस्त्र बनाने की चेष्टा करना—ये दोनों ही बातें अपने विषय में पत्र लिखने से कहीं अधिक महत्त्व रखती हैं। मुझे कह ही देना पड़ा।

'मैं समझ गयी। अच्छा तब कुछ ऐसा उपाय कीजिए भाई साहब जिससे ऐसी जितनी भी छोटी-बड़ी इच्छाएँ हम मन में उत्पन्न करते हैं उनका अस्तित्व ही मिट जाय। केवल समाज की पुरातन प्रतिमा स्थिर बनी रहे। नित्य वेद ध्वनियों के साथ बाजे-गाजे के रूप में हम ऐसे प्रेम-रागियों की अर्थी प्रभात-फेरी के आगे-आगे ले जाकर राजघाट में विसर्जित कर आया करें। आत्मघात पर प्रतिबन्ध उठा लिया जाय। जहाँ सुरा-पान वर्जित है वहाँ विष-पान प्रचलित हो जाय। जैसे मनुष्य अपनी इच्छा से जीता है वैसे ही वह अपनी इच्छा से मर भी सके'!

'तुम कुछ भी कहो वैशाली सभ्यता की किसी भी स्थिति में ऐसा सम्भव नहीं होगा। इच्छाएँ हम नियमित करनी ही होंगी। कोई हमें चाहे जितना प्यार करे पर यह सदा हमारे ऊपर ही निर्भर रहेगा कि हम उसके प्यार को स्वीकार कर या न करें। और उन लोगों की यह भावना सदा दूषित ही मानी जायगी जो यह कहा करते हैं कि या तो मेरा जीवन मेरे प्राण स्वीकार करो या मेरा मरण। क्योंकि यदि प्रेम की नव-नव ज्योति-रश्मियाँ सदा हमारे चिर-निश्चित सम्बन्धों को क्षीण हीन विवश और विषम बनाने में समर्थ होंगी तो उनसे शाश्वत-चिरन्तन सम्बन्धों की होने वाली हिंसा समाज के लिए एक भयानक अभिशाप और अमानुषिक व्यापार बन जायगी।

हम अभी ये बातें कर ही रहे थे कि दीक्षित जी आ गये। बोले—'कोई ऐसी दवा फर्स्ट एड के रूप में अम्मा को दी जानी चाहिए, जिससे उस नींद आ

जाय। फोन कर दिया है मैंने डाक्टर शर्मा को। अभी थोड़ी देर में आये जाते हैं।

—कैलाशी जा रही थी कि—इतने में एक पुड़िया निकालकर उसमें से चुटकी भर मैनपुरी मुँह में डालती हुई माँ आ पहुँची। बोली—'पहले खाना खा लो फिर और बातों में लगना। सब लोग खा चुके। सिर्फ मैं बची हूँ सो तुम्हारे साथ बैठ के खाऊँगी। यह तो बड़ी गनीमत हुई कि तुम एन वक्त पर आ गये। नहीं तो रसोई उठा ही दी गयी होती।

जी में तो आया माँ से स्पष्ट कह दूँ कि मेरे सोये हुए भाग्य अब यहीं जग पड़े हैं—एक युग के बाद मेरे खोये हुए पूज्य पिता मिल गये हैं। और प्रसन्नता की बात यह है कि उन्होंने मेरी एक छोटी माँ भी बना ली है। इतना ही नहीं उनसे उत्पन्न बारह-तेरह साल का मेरा एक भाई भी है। इसलिए मुझे आज वहीं भोजन करना है। देर जरूर हो गयी है पर अब वहीं खाना खाने के लिए मैं यहाँ आया हूँ तब यहाँ खाने के लिए मुझे मजबूर मत करो। अब दीक्षितजी भी चले गये।

फिर मैं इस विचार में पड़ गया कि जिस जीवन को पिताजी ने स्वयम् इतना छिपाकर रक्खा उसको इस तरह प्रकट करके उसका रागात्मक साहस और सुयश चारों ओर फैला देना मेरे लिए उचित न होगा। इस लिए फिर इस विचार की बाग मोड़कर मैंने कह दिया—"तुम्हारे चरणों के पुण्य प्रताप से कुछ ऐसी मंगल-भूमि में पैदा हुआ हूँ कि रसोई अगर उठा भी दी गयी होती तो इस अन्नपूर्णा-भंडार में लड्डू-मठे दूध-रबड़ी और मिठाई-नमकीन की कोई कमी न होती। और इन सब चीजों के एक एक कौर से ही मेरा भोजन बन जाता!

मेरे इस उत्तर से माँ प्रसन्नता के मारे गद्गद् हो उठी। बोली—'तुम जब ऐसे बातें करते हो बेटा तो तुम्हारी यह बात मैं कभी नहीं भूल पाती। मैं अगर आज जनम में तुम्हारी भाभी मिथ्या भी पैदा कर पाती तो सच कहती हूँ एक-न-एक दिन भगवान को भी वश में कर लेती।' और चलो माँ भी काफी देर हो चुकी।

देर तो वास्तव में हो ही गयी है। लेकिन फिर सोचता हूँ अगर मैं यहाँ खाना खा सका तो उपेन्द्र क्या कहेगा? कहीं वह मेरी प्रतीक्षा में बिना खाये ही

बैठा रह गया तो ? धीरे-धीरे कुछ ऐसा हो रहा है कि कभी-कभी मैं स्वयं अपना विरोधी तत्त्व इकट्ठा कर लेता हूं। मैं स्वयं अपने वचन का मोल घटा देता हूं। दौड़ में पड़कर मैं ऐसी बात कह देता हूं जिसका पालन आग चलकर मेरे ही लिए दुष्कर हो जाता है। गलतियों से बचते-बचते भी मैं अक्सर गलती कर बैठता हूं। ऐसा भी होता है कि जिसको मैं पहले बहुत सही समझता हूं बाद में उसी को गलत समझ लेता हूं। और ऐसा भी होता है कि जो पहले गलत जान पड़ता था बाद में फिर वही मेरे लिए सही बन जाता है। समझ में नहीं आता यह कैसा चक्कर है! कहीं ऐसा तो नहीं कि विचारों की अस्थिरता मेरे लिये स्वाभाविक बन गयी है?....पर सड़क पर जो यह आदमी जा रहा है इसकी खांसी की आवाज खतरे की घंटी बजाती चल रही है। और इसके पीछे वह गुर्राता हुआ कुत्ता! दोनों अस्वस्थ हैं। मैं अस्वस्थ नहीं बनूंगा। इसलिए मैंने कह दिया—"पर आज तो खाने की मुझे ऐसी कोई जरूरत नहीं जान पड़ती मां। बल्कि टाल ही जाऊं तो ज्यादा अच्छा रहेगा।

'नहीं-नहीं खाना खाने के मामले में मुझे टाल-मटूल नहीं सुहाती।' मां ने कहा ही था कि अन्दर से फर्श पर कप और प्लेट्स गिरकर चूर चूर हो जाने की आवाज सुन पड़ी। तब — 'वैशाली को मैं अभी भेजती हूं' कहती हुई मां अन्दर चली गयी।

अच्छा छोटी मामी ने यह बात जो उस समय कह डाली थी कि अब भेंट नहीं होगी और यह रकम तुम्हें लेनी ही पड़ेगी। इन दोनों विषयों पर मैंने तत्काल विचार क्यों नहीं किया? और मामी से अब भेंट नहीं होगी क्या यह कोई साधारण बात है!

यदि कहीं ऐसा हो गया तो मैं जिऊंगा कैसे? उस दिन मां तक ने इस बात का अनुभव किया था! — ऐसा जान पड़ता है मैं भी हार्ट फेल्यार से ही मरूंगा। रुपये तो मैं भाभी की याद में बम्बई जाकर जुहू के समुद्र-तट पर आकाश के तारों की भांति बिखरा दूंगा और सवेरे वहां मेरी काया पड़ी मिलेगी! इस दुनिया की असल तो कुछ आदमी जिसने उन्हें भाई साहब ने अपनी आन के अहम् को सन्तुष्ट करने के लिए उनके अकेलापन में डाल दिया है!

पर अब मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि इस दुनिया की शक्ल कभी नहीं बदलेगी। व्यक्ति की अपनी स्वतंत्रता के नाम पर समाज से सदा खिलाफत बनी रहेगी।—ब्रिटेन में जो पन्द्रह लाख स्त्रियाँ अविवाहित हैं क्या उनकी यह इच्छा न होती होगी कि वे एक सद्गृहस्थ का-सा जीवन व्यतीत करें? पर वहाँ एक पत्नी की उपस्थिति में दूसरा विवाह वर्जित है। इसी का परिणाम यह हुआ है कि स्त्रियों की यह सेना निर्भय होकर सभ्यता की श्रीवृद्धि करती रहती है!—लेकिन लंदन में चोरियों की संख्या तो नहीं के बराबर है। मकान खुले पड़े रहने का अर्थ होता है गृहस्वामी बाहर घूमने गये हैं और फिर कोई उस खुले मकान के अन्दर प्रवेश करने का साहस नहीं करता। इसके विपरीत हमारे इस नव स्वतंत्र देश के नैतिक स्तर का यह हाल है कि डिप्टी-कमिश्नर साहब के यहाँ भी उस अवस्था में चोरी हो जाती है जब घर पूर्णरूप से बन्द रहता है और सब लोग आराम से पड़े सोया करते हैं! और कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि सबूत के अभाव में असली अपराधी विरपत में या जान पर भी छोड़ दिये जाते हैं!

अच्छा अगर भाभी को लेकर मैं अपना एक अलग प्रमदवन बनाऊँ, तो कैसा हो! नीचे सरिता बह रही हो जैसी प्रयाग में यमुना बहती है। उसी के तट पर अपना घर हो जैसा यहाँ अकबर का बनवाया किला है। उसी के अन्दर अपना एक ऐसा उद्यान हो जिसे नन्दन-कानन कहा जा सके। फिर उसी में एक पारिजात की सृष्टि की जाय!

स्वप्न कितने अच्छे हम देख लेते हैं! काश उनको जीवन में चरितार्थ भी कर पाते!

कहीं से समीर-रव आ रहा है। खूब रहो प्यारे! तुम्हारी इस तबियत की हम हृदय से सराहना करते हैं। अपरिचित से काल्पनिक परिचय प्राप्त कर लेना कितना सरल है!

और कल्पना का नन्दन-कानन?

क्या बात है उसकी!

लो लम्बे उछालती हुई पैमाकी आ पहुँची। यह जो साटन जैसा चमकदार होता है न इसी का मध्य मुलायम बेस्टर है। साड़ी नफ़ीस है जिसके गुच्छ के बोल हैं—अलक की अलसता में उठते हुए। चमकदार हरी ज़मीन पर लाल पट्टी वाले।

मासी गलों पर चमकती और ओठों पर बिहुलती हुई। अंगुलियां पतली ककड़ियों के बचपन की शोखी लिए। यह सब मास की बनावट का ५ मेरी एक-एक रुचि को तृष्णा और लोभ की लपक को मोह और उसकी तरंग-राशि को उत्तेजित करने का अनुष्ठान है।

नृत्य करती हुई-सी आ रही है वैशाली। पर मुझ एसी बनाय है मैं देख नहीं पा रहा हूं। फिर निकट आते ही यकायक चौंक पड़ती है।

— ओ भाई साहब! कहकर मुसकराती है। फिर जिस भ० भाभी हैं उसी की भाषा में बोल उठती है— 'चल्मिये भाई साहब आता न और कुछ सुना आपने ? अम्मा न भाई साहब मुझ को और भाभी को सामने खड़े-खड़े जमना को कुए के पानी से नहलान के लिए नियुक्त कर सच कहती ह भाई साहब उस बक्त ठंड के मारे मैं काप गयी। बल्कि । कपकपी मेरे बदन म अब भी आपको मिल रही होगी। अच्छा मिल रही नहीं सच-सच बतलाओ।

और इतना कहते-कहते वैशाली सचमुच थर-थर कापने लगी।। आप-ही-आप मुसकराई और बोली— 'नहान-धोने सिर मे मौलश्री का मक्खन कभी करन और कपड़े बदलने के बाद—सच कहती हूं भाई साहब—र बिल्कुल परी बन गयी हैं। जान पड़ता है मैं तो उसके सामने बिल्कुल हूं! और भाई साहब मेरा यह कुछ-कुछ ढीला-सा जाकेट जा न इसके ममट। का यह उसके उभरे बक्ष पर इतना फिट बैठ गया कि कुछ न पूछिये। र तो उसके ऊपर एसा बन गया जैसे उसी के लिए बना हो।

'इस सारे काम-व्यवहार म भाई साहब जमना न बिल्कुल इनकार किया। पर ज्यों ही कभी चोटी में लिम्प धीशा उसके सामने कर दिया गया ५। वह धीरे-धीरे बड़बड़ाने लगी

'मैंन जब उनस कुछ कहा नहीं तब उन्होंने मुझ से सब कुछ कह डाला पर मैंन जब उनस कुछ कह दिया तो व बिगड़ खड़े हुए। बिगड़ जाओ मेरी म। एक युग दो युग दस युग। अरे कभी तो मिलोगे! —भाई साहब र ०। कर रहे ह कि नहीं ?—और फिर वह चुप रह गयी। मयोग से मेरा हरा रूमाल उनकी तकिया पर पड़ा रह गया। आप जानते ही हैं उसमें हिना ।

जितना छिपाऊ, पर उस माँ से कैसे छिपा सकूंगा जो मेरी क्षण-क्षण की आन्तरिक प्रेरणाओं तक को केवल मेरा मुख देख कर सहज ही जान लेती है।

सोचता हूँ—ऐसी संकटापन्न परिस्थितियों की उत्पत्ति का मूल कारण है सब को सन्तुष्ट रखने की कुमसुम नीति। अक्सर हम इसी लिए चारों ओर के उलाहनों से इतने अधिक घिर जाया करते हैं कि एक अप्रिय सत्य को छिपाने के लिए दस बार असत्य के चरणों पर नाक रगड़ते हैं। और तारीफ यह है कि मन ही-मन अपने आपको परम बौद्धिक मानकर—मूछें तो रह नहीं गयीं—क्लीन शेव्ड होंठों पर ही हाथ फेरकर तथाकथित त्याग-वीर पुरुषों की तरह फूल उठते हैं।

इसलिए थोड़ा साहसकर मैंने इतना कह दिया— 'कुछ ऐसी ही बात है मधू उसे समय आने पर बतलाऊंगा। पर इस सिलसिले में इतना जान लो कि इस समय तो मैं यहां खाना न खाऊंगा दूसरे आज रात को मेरा यहां ठहरना भी न हो सकेगा।'

इसी समय पार्टिको में किसी गाड़ी के आने की आवाज हुई। पर उसकी ओर जरा भी ध्यान न देकर मधू आश्चर्य और चिन्ता के मिश्रित स्वर में बोल उठी—"पर ऐसी क्या बात है भैया जो तुम रात को ऐसे जाड़े में किसी दूसरे के घर खाना खाने जाओगे और फिर वहीं ठहरोगे भी!'

'वह दूसरा घर नहीं है मधू। वह भी अपना ही घर है। लेकिन अभी मैं कुछ और अधिक तुम्हें बतलाऊंगा नहीं।' मैंने कह दिया।

जान पड़ा मधू को इस बात पर दूसरी तरह का सन्देह हो रहा है। वह सोच रही है जैसे मैंने अपने लिए कहीं एक घोंसला बना लिया है। इसलिए वह प्रसन्नता से उछल पड़ी और बोली— 'यह तुमने बड़ी अच्छी बात सुनाई भैया। अब मैं माँ से कह दूंगी कि भैया अपने किसी दोस्त के यहां ठहरे हैं। इसलिए ज्यों ही डाक्टर साहब आकर अमला की व्यवस्था कर जायेंगे त्यों ही वे वहां चले जायेंगे।'

यही हमारे जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है कि एक सत्य पर परदा डालने के लिए हम निरन्तर कुटिल से कुटिल और प्रवञ्च असत्य के जाल जाल

कथन कितना मादक है इस पर और ध्यान न देकर मैंने कह दिया—"भाई को इतना अधिक तूफान की आवश्यकता नहीं पड़ा करती बेचारी !"

डाक्टर साहब एकदम नये नहीं है। फ्रेंच कट छोटी-सी दाढ़ी के कुछ-कुछ श्वेत हो रहे केश उनकी प्रौढ़ता का परिचय देने के लिये यथेष्ट है। मुझे देखते ही बोले— मेरा खयाल है आप इसके पति नहीं है।

मर्म भाव सोचते हुए मेरे मुह से निकल गया— 'भगवान न करे कि मेरे जीवन में ऐसी कोई घटना हो !

तब डाक्टर साहब मुसकराते हुए बोले— 'खैर जो-कोई भी हो उनको हमेशा इसके साथ रहने की जरूरत है। आप तो पढ़-लिखे आदमी है। इतना ही कहना काफी होगा कि 'कान्स्टान्ट्यूलस सेक्सुअल डिस्टरबेंसेज विद आइडियलिस्टिक डिफरेंसेज' से ही इसकी यह दशा हुई है। क्योंकि जब मैं यहा आया तब यह बुदबुदा रही थी— मन कितनी ही बार कहा यह सब मन से मत होगा। मैं विवाहिता नारी हू। मेरे पति मुझे बहुत चाहते हैं—कम-से-कम कहते यही है।" और इसके बाद यह ठट्ठामार कर हस पड़ी। खैर चिन्ता की कोई बात नहीं है। आप जानते हैं पागलो को नीद नहीं आती। पर इस दवा से इसे नीद आ जायगी। लेकिन हर हालत में दो आदमी इसके पास मौजूद रहने चाहिये क्योंकि अप राधियो की दुनिया में पागल का स्थान सब से बड़ा और भयानक माना गया है। इस विषय में एक घटना ही बतला देना काफी होगा।

अब दूसरी चारपाई पर इतमीनान से बैठकर दीक्षितजी मैं,आली और हम डॉक्टर साहब की ओर ध्यानस्थ होकर देखने लगे।

डाक्टर साहब बोले— 'एक बार ऐसा हुआ कि उत्तर प्रदेश के असनी ग्राम में अमरत नाम का एक नवयुवक पागल हो गया। कहावत प्रसिद्ध है कि मार से भूत भागता है। इसलिये जब अमरत का पागलपन कष्टकारक और चिन्ताजनक हो उठा तो उसके बड़े भाई ने निश्चय किया कि किसी बलवान पहलवान की देख-रेख में उसको छोड़ दिया जाय। लाजन पर ठाकुर जयमोहनसिंह एक ऐसे ही व्यक्ति मिल गये। उन्होंने बड़ी शान के साथ कह दिया— 'कैसा भी पागल क्यों न हो मेरी डाट के आगे भीगी बिल्ली बन जायगा। आप अब बेफिकर हो जाइये।"

स्वस्थ दशा में दूध के साथ भात खाना अधरन बहुत पसन्द करते थे। परन्तु इस अवस्था में जब उन्हें दूध के साथ भात दिया जाता तब वे दूध-दूध तो पी जाते और भात को निचोड़कर गोली बनाकर उसके चावलों को मुंह में रख रहते और जब कोई उनके आगे से निकलने लगता या सामने पड़ जाता तब उसके मुंह पर सारे-के-सारे चावल बिखेर देते और कहने लगते— पुष्पस्थाने अक्षतम् समर्पयामि। जो समझदार होते वे बिचारे चुपचाप सहन कर लेते। पर कुछ लोग ऐसे भी होते जो उन्हें गाली दे बैठते और कोई-कोई तो ईंट-पत्थर तक का प्रयोग करने को तत्पर हो जाते। इसका परिणाम यह होता कि अधरन की डांट के साथ साथ ठाकुर साहब के बत भी मुलायम सहन पड़ते।

अपनी परिहास-कल्पना को चरितार्थ कर लेने पर अधरन को हंसने का जितना अवसर मिलता उससे कहीं अधिक अन्त में उन्हें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से रोना पड़ता। इस तरह अधरन ठाकुर साहब से बहुत डरने लगे। जब-जब वे कोई ऐसा उपद्रव करते तब-तब मार तो उन्हें खानी ही पड़ती। पर इसके साथ उनका खाना भी बन्द कर दिया जाता! प्यास लगने पर पूरे गिलास भर पानी की जगह उन्हें सिर्फ दो घूंट पानी पीने दिया जाता और गिलास छीनकर बाकी पानी उनके सामने ही गिरा दिया जाता। अपनी यह हालत देखकर अधरन की आंखों में खून उतर आता। पर जब इसकी प्रतिक्रिया में कुछ भी करते न बन पड़ता तो वे दांत किटकिटा कर या भीतर-ही-भीतर उन्हें पीसकर रह जाते और कभी अपने सिर के बाल नोचने लगते।

अधरन जिस घर में रहते थे उसकी बाहरी दालान में कुछ तख्ते खूंटों के ऊपर बिछा दिए गए थे। इस तरह वे खूंटे ही तख्त के पाये बन गए थे। परन्तु कुछ खूंटे इन तख्तों के बीच एक भी रह गए थे जो तख्त की दरार से नीचे पड़ते थे और इस कारण बेकार हो गए थे। पागल के सामने जब कोई काम नहीं होता तब वह अपनी सीमाओं के अन्दर ही कोई-न-कोई काम खोज निकालता है। अतएव गरमी में खाली रहने पर भी अधरन ने इन तख्तों के नीचे से वो खूंटे हिला हिलाकर धीमे-धीमे उखाड़ लिए।

जेठ मास के दिन थे और समीप की बात कि उस दोपहर के
समय की ओर ...

खोलकर सोया करते हैं। उधर अबरन ने इस परिस्थिति से लाभ उठाने की कल्पना उसी समय कर ली थी जब उन्होंने खूटे उखाड़े थे।

फिर क्या था अबरन के सिर पर शैतान सवार हो गया।

कहते हैं प्रकृति की ममता बड़ी विलक्षण होती है। तभी तो बच्चे को जन्म देने के बाद मा की छाती दूध से फूट पड़ती है! लेकिन यही प्रकृति कभी-कभी इतनी निर्मम भी हो जाती है कि बच्चे को जन्म देते ही मां के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं! स्वस्थ और धनी-मानी माता-पिता की उपस्थिति में एक धूम क्या पालन पोषण के सभी साधन रहते पर भी हमारे देश में निरन्तर नित्य लाखों बच्चे समाप्त होते रहते हैं। पर मा का दूध न पाने पर भी गरीब अहीर-गडरियों के बच्चे भी अक्सर पनप जाते हैं। तात्पर्य यह कि

प्रकृति जहां ममता में मां से भी अधिक सदय है वहां कठोरता में वह पाषाण से भी अधिक जड़ और निर्मम भी है।

अब अबरन को वह क्षण याद आ गया जब बाल्य काल के बाद उसने अपनी घी चुपड़ी रोटियां कुत्ते को डाल दीं तब इसी व्यक्ति ने उसकी नंगी पीठ पर—सड़ासड़!—एक-दो नहीं पांच-सात बेंत मारे थे जिनके नील निशान अब तक उसकी पीठ पर बने थे। पीड़ा के मारे उस दिन वह दिन-रात किलमा छटपटाता रहा था और उसके उस क्रन्दन पर इस आदमी के मुंह से सान्त्वना का एक शब्द भी नहीं निकला था।

तब उस दृश्य की याद करके अबरन ने क्रोध से अपने होंठ इतनी जोर से काट लिए कि खून छलछला आया।

उसी समय अबरन ने दाना लूट डाल में ले लिए।

जब अबरन को वह दाना भी याद आ गया जब उसने अपनी थाली के पास से चावल कौओं को चुगाने को छोड़ दिए तो इसी बात पर ठाकुर साहब उसके गालों पर तड़ातड़ तमाचे-पर-तमाचे जड़ते चले गए और साथ में यह भी पूछते रहे— मुटाई सूझी है?

उस पहलवानी जड़ हाथों के तमाचों से उसका मुंह इतना सूज गया था कि कई दिन तक उससे खाना भी न खाया गया था! और जिस समय उसकी कनपटी पर वे तमाचे पड़ रहे थे उस समय—उफ!

तब अबरन ने एक छूरा खोले हुए ठाकुर साहब के उस खुले मुंह के कंठ में इतमीनान से खोंस दिया ! और जब उन्होंने आंखें खोलकर हाथ हिलाने की चेष्टा की तभी दूसरे को भी उस पर ही तीन बार बिल्कुल उस तरह ठोंक दिया जिस तरह कोई बढ़ई लकड़ी पर सूराख करने के लिए बसूला ठोंकता है ! रक्तार्थ ठाकुर साहब के उठे हुए बज्र जैसे दोनों हाथ तख्त पर गिर पड़े। उनकी खुली हुई आंखें सदा के लिए खुली रह गयी ! तख्त पर बहता हुआ खून धार बांधकर धरती पर गिरने लगा और अबरन इतने जोर से अट्टहास कर उठा कि मुहल्ले भर के लोग दौड़ पड़े।

लेकिन अफसोस कि तब तक खेल समाप्त हो चुका था !

यवनिका-पतन के समय अबरन उस लाश से पूछ रहा था—

मुराई मूसी हूं !

मुराई मूसी हूं !

मुराई मूसी हूं !!

पास पड़ी जमना को एक झपकी-सी लग गयी। डॉक्टर साहब उठकर जब चलने लगे तब मैं भी दीक्षितजी से विदा लेकर उपेन्द्र के पास चल दिया।

भाई साहब की गाड़ी मैंने उसी समय वापस कर दी थी। इसलिए थोड़ी दूर तक फिर डाक्टर साहब के साथ जाना पड़ा। रास्ते में उन्होंने यह भी बतलाया कि इस घटना के बाद अबरन जीवित रह नहीं पाया। कहते हैं गांव भर के लोगों ने ही पानी में डुबोकर इस संसार से विदा कर दिया था।

पच्चीस

फाटक बन्द हो चुका था। द्वार पर केवल एक पहाड़ी फौजी पोशाक में ठहर-ठहर कर भारी कदम रखता और बीड़ी सुलगाता हुआ पहरा दे रहा था। नीम का पेड़ चुपचाप खड़ा था लेकिन उसकी पत्तियां पवन-झकोरों से डोलती हुई साथ-साथ बोल रही थीं। उनमें एक अति शीतल अमन्द-मर्मर स्वर निकल रहा था कुछ ऐसी अभिप्सा के साथ कि कौन इसकी परवा करता है ! वह सब

थे कि जल्दी ही लौट आयेंगे। इसलिए दस-ग्यारह बजे तक इन्तजार कर लिया। इतना काफी है। सरदी के दिन हैं कौन बैठा रहे! बस इसके आगे यही तो कहना रह गया कि जाओ चुपचाप अपना रास्ता पकड़ो। तुम्हारे जैसे सनकी आदमी के लिए अब यहां कोई उठने वाला नहीं है!

जान पड़ा—इस स्वर में पिता का सदय हृदय नहीं उनकी स्पष्ट उपेक्षा है। जान पड़ा—इस मूक जड़ स्तब्ध अर्धरात्रि के सम्राट म प्रतीक्षा की भूली दृष्टि वाली मां की ममता भी नहीं एक अप्रासंगिक बाधा जैसी मुखरित हो उठने वाली बड़बड़ाहट है। स्वर भले ही उसका मूक हो पर मूक भाव तो स्पष्ट लक्षित हो रहा है।

तभी कोठ़ की एक पतली जंजीर के साथ नीम की जड़ से एक कुत्ता बंधा हुआ था जिसके ऊपर किसी पुराने कम्बल का एक टुकड़ा पड़ा था। उसके घने काले बालों वाले कान इतने बड़े थे कि उस मन्द प्रकाश में भी वे बड़े सुन्दर लग रहे थे।

तांगे से उतरकर कोठे के द्वार के समीप पहुंचते ही जब इस कुत्ते ने नाक-मुंह उठा पूंछ हिलानी शुरू की तभी वह पहाड़ी पहरेदार बोला—"सब सन्द हो चुका। आजकल सरदी ज्यादा पड़ता।

'स' के स्थान पर 'श' का प्रयोग पहाड़ी उच्चारण की विशेषता समझ लेने पर उतना बुरा नहीं लगा।

मैंने पूछा—"तुम से किसी ने मेरे आने पर दरवाजा खोल देने को नहीं कहा?

बीड़ी फेंकता हुआ वह बोला— 'हम कहने का काम नहीं करता। हमारा रात का ड्यूटी। बस।

चुपचाप लौटकर तांगे पर जा बैठा और कह दिया— करौल बाग।

घड़ी पर दृष्टि डाली तो देखता हूं—बारह बज गये हैं। ठंडी हवा के झकोरे खाकर पेड़ों की पत्तियों से एक मर्मर संगीत-सा फूट रहा है। मन शिथिल विस्मयमय मानव रुई की मुलायम फुहियों से भरी रजाई के भीतर नींद की कोमल प्यारी बांह अपनी ग्रीवा के नीचे लगाये विश्व के शून्य मूक पारावार में पलक झपकाए चुपचाप पड़ा सो रहा है। एक मैं हूं कि समय पर न जाने का ध्यान

हूँ न विश्राम के क्षणों का आकर्षण। एक मात्र अपना उत्तरदायित्व देखता और निभाता हुआ मारा-मारा फिर रहा हूँ! कुछ ऐसा प्रतीत हुआ है कि सच्चे और कर्त्तव्यनिष्ठ आदमी ही अधिक कष्ट पाते हैं और अति गम्भीर, सरल और ईमानदार आदमी का मुंह कुत्ते चाटते हैं!

तब चेस्टर के कालर से कान ढकते हुए मेरे मुंह से निकल गया—'चलो चलो ताँगे वाले। मुझे अभी बहुत भागना है—बड़ी दूर जाना है।"

× × ×

"यह भी अच्छा हुआ कि बचन का मोल चुकाने के लिए स्नेह के अत्यधिक आग्रह और अनुरोध का भोजन जब स्वीकार नहीं किया तब अन्त में रात भर निराहार रहना पड़ा। पर इस सम्बन्ध में सब से अधिक स्मरणीय रहेगी यह बात कि उस समय भी तू जग रही थी बैसाखी।

"एक क्षण की रात ही नहीं मैं तुम्हारे लिए अनन्त युगों तक इसी तरह अपलक जगती रहूँगी भाई साहब। फिर कुछ ठहरकर दस्तानों के मुलायम रोओं से अपने अरुण कपोलों का शीत निवारण करने की विफल चेष्टा करती हुई बैसाखी बोल उठी—"पर यह खूब हुआ कि कल रात तुम्हारा भोजन ही गोल हो गया! लेकिन तुम मानोगे नहीं भाई साहब तुम्हारे जाते समय मेरा मन बार बार यही कह रहा था—'ये जहां जा रहे हैं वहां इनके लिए इतनी रात तक प्रतीक्षा में कोई बैठा तो रहेगा नहीं। इसीलिए इनका लौट आना ही निश्चित है'।

'कर्त्तव्य का प्यार ऐसा ही कठोर होता है बैसाखी।

'और प्यार का कर्त्तव्य?' बैसाखी ने जब पूछा तब मुझे छोटी भाभी का ध्यान आ गया। सोचा—ऐसा न हो कि वे किसी दिन—! फिर तत्काल सम्हलकर कह दिया—"प्यार का कर्त्तव्य असमय में भी भाई की आवाज पहचान कर अपने कक्ष से लेकर मुख्य फाटक तक के कपाट खोल देना है।"

"विवाह होने से पूर्व जो व्यक्ति भाई होता है वही विवाह के बाद पति बन जाता है। इस तरह कभी भाई और कभी पति बनने वाला व्यक्ति,

बदलता उसका मनोभाव मात्र बदलता है। अर्थात् प्रत्येक भाई पति हो सकता है और प्रत्येक पति भाई।

'सभ्यता की आखें फूट जायेंगी बैसाखी यदि मनुष्य की भावना मर जायगी। तर्क उस समय अन्ध साधु की सी लकड़ी टेक-टेक कर चलेगा। अनुभव की आंखों से देखो तो तुम्हें पता चलेगा कि हमारे सामाजिक संस्कार सहोदर भाई को ही नहीं अन्य भाइयों को भी जीवनभर भाई ही बनाये रखते हैं। पति बन जाने वाले भाई उनकी छाया भी नहीं पा सकते। क्योंकि अन्धे व्यक्ति की दृष्टि छाया और प्रकाश के भेदाभेद से परे होती है।

इतने में चाय आ गयी और लिहाफ की गरमाहट का मोह त्यागकर मुझे उठना ही पड़ा। दीक्षितजी से रात को उस समय भेंट नहीं हो पायी थी। इसलिए उन्होंने निकट आते ही सम्यक विस्मय से पूछा— अरे! तुम कब आ गये ?

मैंने कह दिया— 'रात को ही।

इसी समय मा आ गयी। हाथ दुशाले के भीतर ढके हुए थे और आगे का दांत भाग गायब था! कुछ गम्भीरता के साथ यकायक बोलीं— पिताजी के यहां हो आये ? अब मुझे ध्यान आया—'पिताजी के सम्बन्ध की बात अभी किसी से कहना नहीं' मधु से यह बात कहना तो मैं भूल ही गया था। शिव-शिव! कितना अनर्थ हो गया मुझ से ?

दीक्षित जी अधीर आश्चर्य के साथ बोले— क्या कहा! पिता जी के यहां!!

'हां बात चाहे जितनी आश्चर्यजनक हो पर है सही। कहते-कहते अब मुझे पिताजी के सम्बन्ध की सारी कथा उनको भी बतलानी पड़ी जिसे सुनकर वे मा की ओर देखकर स्तब्ध रह गये।

बैसाखी इसी समय टोस्ट के ऊपर लिपटे मक्खन की तह पर दांत जमाता और फिर दो-तीन बार मुंह चलाती हुई बोली—"मुझे तो इस समाचार को सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। लगभग और मर्यो पौधे को रात-दिन कोसने वाले लोगों को एक बार यह सोचने का अवसर तो मिलेगा कि जहां तक जीवन की आधारभूत आवश्यकता और भूख-प्यास का प्रश्न है मनुष्य न कभी नया है न पुराना।

साश्चर्य के साथ मैंने पूछा— 'अच्छा तो जमना अंग्रेजी बोल रही थी !

इसी समय कमरे के दरवाजे के सामने श्रवण आ पहुंचा। सीम एक आध इंच और अधिक बढ़ गये हैं—यद्यपि ऊंचाई में विशेष अन्तर नहीं जान पड़ा। पहले मुंह सामने किये था फिर बायीं ओर रक्खे गमले की पत्ती घुमने लगा। ---उधर मां कह रही थी— 'मगर मिलने को तो मैं मना करती नहीं।

तत्काल मेरा ध्यान दीक्षित जी की ओर चला गया। कान कनपटी और सिर को ऊनी मफलर के बन्धन से मुक्त करके उसे गले और कन्धे पर डालते हुए वे कहने लगे— 'तुम जिस बात के लिए मना कर रही हो मां उसके दिन अब लद गये। मैं और सब कुछ कर सकता हूं पर समय की गति और युग के धर्म को दांतों से दबाकर बदा नहीं सकता ! उन्होंने अपराध किया है तो केवल इतना कि हम सब को भुला दिया ! लेकिन कामी की मां के साथ यह नाता क्यों जोड़ लिया— अथवा यह कि वे उनके हाथ का बना खाना खाने लगे—इन बातों में कुछ दम नहीं। मैं सम्पूर्ण मनुष्य जाति की एक संस्कृति मानता हूं। मैं मानता हूं कि संसार में यदि कोई भी धर्म श्रेष्ठ है तो वह मानव धर्म है।

मां से बेटे की यह बात भी सहन नहीं हुई। उनका चेहरा इतना तमतमा उठा कि उनके होंठ तक फड़कने लगे। दुशाले को कन्धे पर डालकर उससे दोनों हाथ बाहर निकालती हुई वे बोली— 'तुम्हारी भली चलाई। अपने धर्म-कर्म तक का तो तुम्हें ज्ञान नहीं संसार भर का धर्म तुम क्या निभाओगे ! मैं पूछती हूं राजेन्द्र की मां और अपनी संतान से उनकी क्या दुश्मनी थी जो कभी उनसे मिलने और उनको देखने तक की इच्छा उन्होंने नहीं की ? ऐसी सीधी सच्ची करुणामयी देवी के रहते हुए, जो आदमी अपनी जाति-पांति का ध्यान न रखकर, एक विधवा अधेड़ स्त्री बैठा लेता है मैं उसे आदमी नहीं जानवर समझती हूं।"

दीक्षितजी मां का क्रोध देखकर कुछ ढीले पड़ गये। कुरसी से उठते हुए बोले— 'तुम कुछ समझो मां लेकिन इस मामले में सारी मनुष्य जाति एक है। मैंने पहले ही कहा था कि अपने परिवार को बिल्कुल ही भूल जाने के मामले में उन्होंने सचमुच असाधारण कठोरता का परिचय दिया। लेकिन उन्होंने अगर एक अन्य स्त्री के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ ही लिया तो यह कोई ऐसा अमान-

नीच अपराध नहीं है जैसा तुम समझती हो। आँखें पसार कर देखो तो तुम को पता चलेगा कि हमारे राजनीतिक प्रमुखों में अनेक इसी तरह के आज़ाद पंछी हैं!

तब माँ ने तर्जनी उठाते हुए अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा—

"भले न हो नहीं सारी दुनिया वैसी ही हो जाय लेकिन इस घर में बात मेरी ही चलेगी। हमारा कोई आत्मीय साथ बैठकर खाना तो दूर रहा उससे मिलने भी नहीं जायगा। अगर मेरी इस आज्ञा का पालन न हुआ तो उसी दिन मैं नहीं मेरी लाश इसी जगह पर पड़ी मिलेगी! और इसके बाद तुरन्त वे कमरे से बाहर हो गयी।

कमरे में सन्नाटा छा गया। सब एक दूसरे की ओर देखने लगे। मधु फूटकर रो पड़ी। दीक्षितजी वहाँ से चल गये और वैशाली बोली— देखा भाई साहब आपने! एक इसी घर में नहीं सभी घरों में इसी तरह का एक-न-एक नाटक नित्य होता रहता है।

तब मधु का हाथ पकड़ कर मैंने कह दिया— 'रोने का कोई प्रयोजन नहीं है मधु। आज यहाँ तो बस कल यहाँ तो परसों कोई-न-कोई रास्ता निकलेगा ही।

'रास्ता तो निकला-निकलाया है। हम सब ने मिलकर उस पर चलना भर अभी नहीं प्रारम्भ किया है। वैशाली ने जब कहा तब मदन सामने पूँछ उठाकर हम लोगों की ओर साभिप्राय देख रहा था।

× × ×

मेरे सामने यह देहली जंक्शन है। दिन के ढाई बज रहे हैं। सियालकोट-देहली एक्सप्रेस के आने का समय है एवं चालिस सेकिण्ड पहले आयी है अब। मैं गेट के पास खड़े हुए आदमी के मुख पर लालाजी के चेहरे की छाप देख रहा हूँ। ज्यों ज्यों आदमी आते जाते हैं त्यों-त्यों मेरी उत्सुकता चिन्ता और अधीरता में परिवर्तित होती जाती है। अन्त में लालाजी और राय साहब एक साथ मिल गये। यह भी मालूम हुआ कि लालाजी ने रायसाहब को तार से सब कुछ सूचित कर दिया था।

रामसाहब चेष्टा से बहुत चिन्तित से जान पड़ते थे। उनका चेहरा पड़ गया था और उनके नयन होंठ और भृकुटियों में फैलाव कम्पन और उतार-चढ़ाव आ-जा रहा था। उनका कहना था कि मैं तो समझ रहा था कि मैं बम्बई में हूं और मुझे इस बात की आशंका भी न थी कि होनहार इस सीमा तक निर्मम होती है!

मेरे मन में आया कि इसी समय क्यों न साफ-ही-साफ कह दूं कि। दशा में मुझे कमला मिली थी अगर आपको मिलती तो आपकी छाती प[illegible] लेकिन उस समय ऐसा कुछ कहना मैंने उचित नहीं समझा। वरन् कह यह। कि घबराइये नहीं कल से आज उसकी हालत कहीं सुधरी हुई है।

लालाजी का मुख यद्यपि कपट जामी हुई ममिमा की तरह सिकुड़-सा गया था लेकिन अपने जामाता की ओर में जब तिरछी दृष्टि से सम और नीचे के होंठ पर उनके दांत आ जमे तब उससे एक प्रकार के नि प्रतिशोध का-सा भाव लक्षित हो उठा। संयोग से जब मैं उनसे बात करने तो राय चन्द्रनाथ मान जाते हुए हम लोगों से कुछ दूर हो गये थे। इसलिए पाकर लालाजी बोल उठे— 'इस आदमी को समझने में इतनी बड़ी भूल मुझ हो गयी है कि मुझे जीवन भर पछताना पड़ेगा!'

मैंने कहा— 'पता नहीं किस सम्बन्ध में आपको इतनी बड़ी भूल अनुभव हो रहा है!' तब हाथ में झटकाये हुए चेस्टर को कन्धे पर रखते लालाजी बोले— "यह तो फुरसत में बतलाने की चीज है राजन्। यहां इस कैसे!"

बात अधूरी रह गयी। क्योंकि इसी समय क्रमागत रूप से उन्हीं के गेट निकलने का अवसर आ गया।

इतने में उनका कुली जो हम लोगों की निरीक्षण-सीमा से आगे गया तो मैंने कह दिया— 'मैं नम्बर १२ जरा ठहरो।'

तभी गार्ड साहब जो ओवरकोट का बटन कसे हुए थे मेरी ओर और मुसकराते हुए बोल उठे— "वाह साहब आपने तो एकदम से एक-सी संख्या कम कर दी!" तब अनायास मेरे मुंह से निकल गया— 'जब आप हैं तो जरूर घट-सी हो गयी!'

किसी हास्पिटल में पड़े जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं—या वे किसी अन्य लोक की सीमा बढ़ाने लगे ! लेकिन क्या इस नारी में अपनी रक्षा के लिए शक्ति के साथ-साथ इतना प्रेम अभी बाकी है ? बाकी नहीं है तो उसने मेरे गाल पर अभी कल जो तमाचा जड़ दिया था जिसकी थोड़ी-बहुत पीड़ा मैं अब भी अनुभव कर रहा हूँ वह क्या था ? और हाथ में उसने यह जो काट खाया था यह—यह क्या था ? हाथ पर तो दांत के चिन्ह अब मिट भी गये हैं पर हृदय पर तो वे अमिट हो चुके।

कमरे में हम लोग कुछ इस तरह से बैठ गये कि मेरे बायें ओर हुए लालाजी और सामने जमना और उसके दायें ओर रामसाहब। बीच में रहा हमारा टेबिल।

मैंने देखा बहुधा लोग रूप-लावण्य को आँखों से पीते हैं। मैं पीता नहीं हूँ प्याले के स्पर्श मात्र से यह अनुभव कर लेता हूँ कि वह ठंडा है या गरम—लेमन है या काफी। रंग भी अब मैं नहीं देखता। क्योंकि उसमें भी धोखा है। शीशे के सफेद गिलास में धवल पेय को देखकर कौन कह सकता है कि वह रम है ? क्योंकि रंग में तो वह गंगाजल से भी उज्ज्वल जान पड़ती है। तब परीक्षा की तीन ही कसौटी रह जाती हैं—गुण कर्म और स्वभाव।

मैंने कहा न था कि मैं विचार-मग्न हूँ। इसलिए इस ख्याल पर पहुँचते पहुँचते जब कलेवा की सामग्री आती जान पड़ी तब लालाजी ने जमना से पूछा—"क्यों जमना हमें मालूम हुआ तुमने कल अपने राजेन्द्र भैया के हाथ में काट खाया था ! ऐसी कट्टो तो तू कभी थी नहीं।

लालाजी के इस कथन पर जमना सिर उठाकर कम्पित अधर और विस्फारित नयनों से मेरी ओर कभी झुककर, तिरछी होकर, कभी नाक-भौं सिकोड़ कर, कभी दृष्टि को नीचे से ऊपर उठाकर और कभी इकटक होकर देखती रही। फिर धीरे-धीरे मुस्कराती हुई बोली—"मैंने आपको पहचाना नहीं था। मैं—मैं आपसे क्षमा की भीख मांगती हूँ। आपने चमत्कार देखा है ? और कभी भूपी के सामने आ पड़ने पर आपकी बन्दूक धरी रह गयी है ? और बस इतना कहकर दोनों हाथों से अपना मुंह ढककर वह राय जगन्नाथ की गोद में गिर पड़ी। इस भांति अब यह स्पष्ट हो गया कि जमना इस समय कुछ चेतन अवस्था में है और उसको अपने इस प्रमाद पर दुःख है।

इसी समय दासी चाय और उसकी कम्पनी की सामग्री भी ट्रे में ले आयी और वैसाखी पीछे से आयी और एक सचित्र साप्ताहिक के पन्ने उलटती हुई कहने लगी— 'डाक्टर साहब को मैंने फोन किया था। वहीं बिल्कुल पड़ोस में आए हुए हैं। अभी आये जाते हैं। और भैया ने कहा है— पाँच बजे से पहले वापस घर आना न हो सके'।

माताजी ने उत्तर में कह दिया— 'कोई बात नहीं। डाक्टर साहब तो आ ही रहे हैं जिनसे हमें मुख्य काम है।

यकायक जमना चौंक पड़ी। बोली— "कुछ के एक काँटे ने मुझे बुलाया है। मेरे कान में एक भ्रमर बोल रहा है। मैं उस काँटे को लिपटा कर आती हूँ।

यह ~ठकर जाने लगी तो रायसाहब ने उसे अपनी ओर खींच लिया। फिर कुछ [ऐ]सा जान पड़ा जैसे जमना सिसकियाँ भर भर कर रो उठी है। रायसाहब उसकी पीठ पर हाथ रखे हुए थे और बार-बार हम लोगों की ओर देखने लगते थे। जान पड़ा जैसे वे जमना से कुछ-न-कुछ कहना चाहते हैं पर संकोच के कारण कह नहीं पाते।

उधर वैसाखी समीप में खड़ी आ खड़ी हुई और यह दृश्य देखती हुई तुरन्त बोल उठी— "ओ मुझ से एक गलती हो गयी। अब? अच्छा भाई साहब का एक काम कीजिये कि इन जमना बहिन और जीजाजी को यहां थोड़ी देर एकान्त में रहने दीजिये। और आप लोग इधर इस कमरे में आ जाइये। ठीक है न?

वैसाखी की बुद्धिमत्ता तो अपनी चीज है। मैं क्षण भर उसे देखता रहा। [उ]स समय कुछ ऐसी कल्पना मेरे मन में पनपती हुई भिखारी की तरह चुप-चुप [क]रने आ पहुँची कि मैं स्वयं अपनी दृष्टि में ही हीन क्षुद्र और पतित होकर आप [रह गया]!

हम लोग जब तुरन्त उठकर दूसरे कमरे में जाने लगे तब रायसाहब जमना से कह रहे थे— रोओ मत देखो, ये लोग क्या कहेंगे! तब कुछ ऐसा हुआ कि उस समय मैं आवेग को रोक न सका और मेरे मुँह से निकल गया— "लोग क्या कहेंगे इस बात की चिन्ता जमना के बजाय यदि थोड़ी भी आपको होती तो आज यह दिन न देखना पड़ता। इसलिये जमना अगर रोना चाहती है, तो

उसे भी मर रो लने दीजिये। क्योंकि आप को पता होना चाहिये कि जब पमसी रोती है तब मरघी के नयन भा उठते हैं मौर ।

इतने में हम आगे बढ़कर बगल से लगे दूसरे कमरे में जा पहुंचे। अब उधर के कपाट बन्द कर दिये गये और बात अधूरी रह गयी । लेकिन लालाजी तब भी न माने पूछ ही बैठे— 'मौर क्या ?

जिस कारण बात मैंने जान-बूझकर अधूरी छोड़ दी थी अब उसका भय जाता रहा था। इसलिये मैंने कह दिया— 'और मूर्ख जब उपदेश देने लगता है तब देवताओं को उपवास करना पड़ता है।

इसी समय वैशाली न्यामी के साथ चाय और उसके रिश्ते की सामग्री लिये इस कक्ष में आ पहुंची। पांचाल देश की चुन्नी उसके कंधे से खिसकी पड़ रही थी। उसे सम्हालती-सम्हालती फिर लालाजी के आगे कप रखकर उसमें चाय डालती मुसकराती हुई यह कहने लगी— 'डॉक्टर साहब भी खूब हैं। बिल्कुल पास के कमरे में खड़े-खड़े छिपकर दोनों की बातें सुन रहे हैं!

इसी क्षण लालाजी बोल उठे— 'मैं तो कुछ लेता नहीं बेटी।

वैशाली ने कन्धे से खिसकती चुन्नी को उठाकर फिर से कन्धे पर डालते हुए कहा— 'क्यों बाबा ऐसी क्या बात है ?

"इच्छा नहीं है बेटी !

'इच्छा भी तो आवश्यकता का ही दूसरा नाम है बाबा। कहती हुई वैशाली चौसी चाल रही थी।

हैं पर हमेशा नहीं। क्योंकि हो सकता है आवश्यकता होने पर भी इच्छा न हो। और मुझ ता आवश्यकता भी नहीं है।

आप शायद सोचते होंगे कि कौन जाने जमना दीदी न कुछ खाया हो न खाया हो। पर आपको मालूम होना चाहिए दादा कि आज हमारे यहाँ खाने योग्य बढ़िया-से-बढ़िया चीजें बनायी गयी थी। और दीदी को तो मायद कर-कर के खीर-पूड़ी मैंने गुड़ अपने हाथ से खिलाई थीं। सो भी तब जब वे अपने मन का भोजन कर चुकी थीं। आपने देखा नहीं कि आपके आगे समय

छिपाती सुधा थी। मुझे भी उनसे बात करने में बड़ा मजा आता है।—लीजिये यह कप तो आपको पीना ही होगा।

लालाजी ने आधा कप मुश्किल से पी पाया होगा कि इसी समय मधु आ गयी। बोली—'जमना बहन को रायसाहब अभी इसी समय लिये जा रहे हैं। उनका कहना है कि वेस्टवार कर देने से फिर ठीक हो जायगी।

इस पर अब लालाजी कुछ नहीं बोले केवल मेरे मुँह की ओर देखने लगे।

तब मैंने कह दिया—'ले जाने को हम उन्हें मना तो कर नहीं सकते लेकिन जमना की तबियत कैसे सुधरेगी मुख्य प्रश्न तो यह है।

तब लालाजी उठ बैठे और कमरे के बाहर जाते हुए जब बिल्कुल द्वार पर आ गये तब बोले—"जरा इधर आना रामेन्।

मैं जब उनके पास पहुँचा तो आग्नेय दृष्टि से उन्होंने कह डाला—'मुझे तो कुछ ऐसा जान पड़ता है जैसे यह अल्सनाथ पूरा शम्भूनाथ है। इसके सिवा यह भी हो सकता है कि यह—। और इसके बाद बिल्कुल कान के पास मुँह ले जाकर उन्होंने कह दिया—"इम्पोटेंट भी हो। नहीं तो जमना जैसी लड़की को कोई भी पति एकदम बरबाद को कभी तैयार हो नहीं सकता था।

"कुछ ऐसी ही बात सोचता मैं भी हूँ मैंने कह दिया। और हम फिर उसी कमरे में लौट आये। मधु से मैंने कह दिया—रायसाहब को यहीं बुलाना तो मधु।

लालाजी बोले—मैं कुछ न बोलूँ यही ठीक है। बोलने पर खैरियत नहीं है। मैं चाहता हूँ किसी तरह जमना की सेहत ठीक हो जाय उसके बाद तो मैं उसे हर तरह से सुखी देखने की कोशिश करूँगा। समाज का डर जानकर कोरे आदर्श वाद का खोखल अब मुझ से न पकड़ा जायगा!

रायसाहब ज्यों ही अन्दर आये त्यों ही मैंने पूछा—'क्या अभी चल जाने का विचार कर लिया?

वे आते आते पास ही शीशे की गुर्सी अलमारी में सतर्क हुए बम को निकालकर पानी सा अपनी टाटी झाड़ कलम आप फिर बोले—"हाँ साहब

साहब को जब घर पर ही जाना है तब सोचा—उनकी गाड़ी पर ही क्यों न चला जाऊँ ?

इतने में मधु पान ले आयी।

रायसाहब पान लेकर चलने लगे तो लालाजी भी पीछे हो लिये और बोले— 'आज तो मैं बहुत थका हूँ। कल आने की कोशिश करूँगा।

पोर्टिको में गाड़ी खड़ी थी। जमना और रायसाहब पीछे बैठ चुके थे। स्टियरिंग ग्रहण करते हुए डाक्टर शर्मा बोले— 'आप लोग विशेष चिन्ता न करें, हमने इस मामले को भली प्रकार समझ लिया है और जल्दी सुधार हो जाने की हमें पूरी आशा है।

पर जब उन्होंने गाड़ी स्टार्ट कर दी तब जमना मुझे बिल्कुल पास खड़ा पाकर कहने लगी —"कल मैंने आपको काट खाया था पर अब आप मुझे काट रहे हैं!

उसके नेत्र विस्फारित थे केश विथु लित और होंठ फटे हुए!

छब्बीस

जीवन में जो घटनाएँ प्राय हुआ करती हैं उनमें हमारे कार्य-कलाप का योग बिल्कुल नहीं होता ऐसी मेरी मान्यता नहीं है। इसलिये जिन घटनाओं के साथ मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं था मेरे माथ जुड़ी क्यों और उनका फल मुझे भोगना क्यों पड़ा यह प्रश्न कभी-कभी मेरे मन में उठा और उभरा है। कितने ही स्त्री-पुरुष मुझे मिले और फिर मिलते रहे। कभी-कभी उनका संग-साथ भी हो गया। अवसर पड़ने पर मैंने उनके लिये कभी-कभी कुछ किया भी। इस इच्छा से नहीं कि हमें उसका प्रतिदान मिलेगा। इस उद्देश्य से भी नहीं कि मैं उनके ऊपर कोई कृपा कर रहा हूँ। बस केवल इसलिये कि ऐसे कार्य तो मैं स्वभाववश करता ही रहता हूँ। जब कभी ऐसे कार्यों का परिणाम उलटा हुआ तब मानवी सहृदयता भी मेरे लिये एक दुःखद प्रसंग बन गयी सोचा और निरन्तर सोचता रहा—यह संसार ही मेरे अनुकूल नहीं है। और जैसा हम उसे देखना चाहते हैं वैसा तो वह बनने से रहा!

अभी का मिलना कम थे। दीक्षितजी दफ्तर से लौट नहीं पाये थे यद्यपि उनकी साइकिल आ गयी थी और यह मालूम हो गया था कि वे अपने एक मित्र की गाड़ी पर आयेंगे। थके-मांदे होने के कारण लाला जी की झपकी लग गयी थी और वे मेरे पास ही एक पलंग पर पड़े खर्राटा भर रहे थे। मधु ने सायंकाल का खाना बनाना प्रारम्भ कर दिया था और हरी मेथी का साग छौंकने का-सा भान मुझे अभी-अभी हुआ था।

इसी समय पोर्टिको में एक ऐसी गाड़ी आकर खड़ी हो गयी जिसको मैं पहचानता था। कुतूहलवश कमरे के बाहर आकर जो देखा तो यह जानकर कम आश्चर्य नहीं हुआ कि सदा पैदल या आणिक रूप से बस पर आने-जाने वाली अर्चना आज इस गाड़ी पर कैसे आयी! पर जब वह मेरे पास आ गयी तो उसकी आंखें भरी-भरी सी थीं और होठ कांप-कांप उठते थे!

मैं यकायक कुछ घबरा उठा। एक अनिष्ट की आशंका ने मेरा मस्तक थाम लिया और तीव्र चिन्ता के साथ मैंने पूछा— कहो कुशल तो है?

अर्चना बोली— 'कुशल ही तो नहीं है। भाई साहब ' और बस इसके आगे जो कुछ शेष रह गया था उसे उसकी सिसकियों ने पूरा कर दिया। मैं समझ गया कि भाई साहब जान पन्ना है इस संसार से विदा हो गये! पर कुछ ऐसी बात है कि दुःख का प्रभाव मेरे ऊपर तुरन्त बहुत तीव्रता के साथ नहीं पड़ता। उसका अनुभव तो मैं धीरे-धीरे ही करता हूं। जैसे-जैसे उसका अनुभव बढ़ता जाता है वैसे-वैसे मैं उसकी गहनता में डूबता जाता हूं।

क्षण भर तो मैं चुपचाप खड़ा रहा। अम्बर की ओर चक्त क्षण भयंकर अपना मुंह उठाकर मुझ कुछ इस तरह देखने लगा जैसे वह संकेत कर रहा हो कि जल्दी करो। उसकी कजरारी आंखें जो सदा मुझे प्यार करती थीं इस समय द्रवित-सी जान पड़ीं और अम्बर के रास्ते की भूमि जान पन्ना पिघल-सी रही है।

अर्चना मेरे पीछे-पीछे चल रही थी। बाहर ठिठुक कर मैंने जो कहा— "अभी उस दिन जब मैं उनसे मिलकर आया था उस समय तो वे बिल्कुल चंगे थे। फिर ऐसी क्या बात हुई, जो ?

मैं अपना वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि आंसू पोंछती हुई अर्चना

बोली—'उनकी मृत्यु अपने पीछे एक रहस्य छोड़ गयी है ... यद्यपि डाक्टर साहब का तो कहना है कि हार्ट फेल हो गया है।

इतने में कामू ढूंढती वैशाली बाहर आती हुई मिल गयी और पूछने लगी—"किसका ?

पर तब तक अर्चना कह चुकी थी—'पर मैं ... अब मुझ से कुछ कहा नहीं जाता भैया।"

मैं असमंजस में डूबने उतराने लगा। कुछ ऐसी अवस्था हो गयी जैसे अंधेरी रात में घर से निकल पड़ा हूं तो सड़क पर आकर देखता हूं कि लाइट कहीं से फेल हो गयी है, पानी बरसने लगा है, बादल गरज रहे हैं और बिजली गिरने ही वाली है कहीं।

अन्दर पहुंच कर मैंने मधु का जो वह सत्कार किया तो वह यकायक रो पड़ी। मां पूजन कर रही थी। जान पड़ा सुन सब रही हैं पर गीता-पाठ उन्होंने बन्द नहीं किया—न एक शब्द मुझ से कहा।

मैंने कह दिया—मैं अभी आ रहा हूं मधु, और फिर बाहर चला आया।

मैं जब गाड़ी की ओर बढ़ने लगा तो वैशाली ने पूछा—"मैं भी चलूं भाई साहब।

मैंने अनुभव किया उसका कण्ठ भर आया है और साथ चलने का अभिप्राय और कुछ नहीं केवल ऐसे संकट काल में अपेक्षित सहयोग-मात्र है। फिर भी मैंने कह दिया—नहीं वैशाली अब खाना बनाने और सब लोगों को खिलाने की व्यवस्था यहां विशेष रूप से तुम्हीं को सम्हालनी होगी। मामाजी भी तो ठहरे हुए हैं।

वैशाली बोली—'ठीक है ठीक है—लेकिन तुम अब एक बार जरा हो जरूर आना।

[illegible] से जब गाड़ी चलने लगी तो वैशाली [illegible] दरवाजे पर खड़ी थी। उसकी आंखें भर आयी थीं और वह अब से [illegible] निकाल रही थी [illegible] दूर जाता हुआ [illegible] की ओर देख रहा था और [illegible] उसकी [illegible] रही थी।

× × ×

गाड़ी के अन्दर बैठा हुआ मानव-चरित्र की विचित्रता पर जितना विचार करता था उतना ही अधिक दुःख मुझे इस बात पर हो उठता था कि मैं तो इन भाई साहब में एक भी विशेष गुण नहीं देख पाता था। फिर आज यह सब सम्भव कैसे हो सका ! तभी मैंने पूछा— भावुकता तो भावुक व्यक्ति करता है और भावुक व्यक्ति अपने प्रति अत्यधिक सच्चा होता है।

"अच्छा अर्चना उस दिन तुमने भाई साहब के सम्बन्ध में मुझ से जो शिकायत की थी ! मैं अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि वह बोल उठी— 'मुझे उसके लिये दुःख है भैया। वह कुछ ऐसा प्रसंग था कि मुझे ही भ्रम हो गया था। मैं स्वयं भी आपसे कहने वाली थी पर संकोचवश फिर कुछ कह नहीं पायी।

सड़क की बात ठहरी कहीं-न-कहीं ऊँची-नीची हो ही जाती है। और गाड़ी की सिंगिलवार सीट का धर्म ही है हमें उछाल देना सो 'माफ करना अर्चना" मुझे कहना पड़ गया और मैं कुछ और पास को खिसक गया। गाड़ी चली जा रही थी पेड़ इमारतें दूकानें तार के खम्भे गाड़ियाँ बग्घियाँ तांगा टैक्सी पैदल स्त्री-पुरुष बालक-वृद्ध व्यापारी पुरोहित अध्यापक कनफटा वकील भिखारी आदि गुजर रहे थे और अर्चना कह रही थी— 'माफी की तो कोई बात नहीं है भैया। हम लोग सहोदर भाई-बहिन जरूर नहीं हैं पर यदि कभी ऐसा अवसर आये कि तुम्हें मुझे मुखाग्नि देनी पड़ी तो तुम इनकार तो कभी कर नहीं पाओगे।

बात मुझे बहुत प्यारी लगी।

'तुम ठीक कहती हो अर्चना। बहिन की कोई बात उसकी कोई भी आशा कोई भी भाई कभी अधूरी नहीं रखता। रात के पलक झपकते और खुलते हैं—दिन के पख उड़ते और जुड़ते हैं—सड़कों में चलते बैलों की पूंछ उठती और गिरती है—भैंसा ठेला खींचता हुआ अपनी जीभ निकालता हाँफता और पीठ पर डंडे सहता है। भैंस बैठी-बैठी जुगाली करती है। सारसों की जोड़ी है। एक का सिर आसमान की शोभा की ओर ताक रहा है—दूसरा नीचे आ रहा है ! लेकिन इन सब बातों में मानवता का एक अमर रास्ता है। भाई साहब चाहे

जितने पापी रहे हों पर उन्होंने किसी के साथ—मेरा ख़याल है—कभी कोई ज़ोर ज़बरदस्ती या अत्याचार नहीं किया। उनके पास पैसा था ये पैसे का लोभ-मोह रखते थे और कम तथा कमवाली दुनिया के लिए उसे दान-धर्म के रूप में पेश भी करते रहते थे। पर ये चोरी डाका लूट, बेईमानी और हत्या से कोसों दूर थे। —अरे ड्राइवर, ये छोटे-छोटे मेमने हैं इन्हें—बकरियाँ हैं इन्हें—और ये मोटे ताजे बकरे भी तो हैं। —हाँ इनका उपयोग सभ्य भोजन का एक अंग तो हो गया है। —इन्हें जाने भी दो। चलो बढ़ाओ। —लो, यह तांगा सामने आ गया जिसमें सरदार जी सपरिवार बैठे हैं। —ठहरो यह बुढ़िया बेचारी यह अंधा भिखारी! चलो अब तो बढ़ो आगे। यह आया विजय रोड और और यह आया भाई साहब का प्रकाश गृह। —इन्हें निकलने दो। कहाँ हैं भाई साहब? सो सो रहे हैं। सोओ-सोओ लेकिन ठहरो पहले चरण छू लूँ। बस अब सोओ। माँ सब लोग चुपचाप बैठे हैं! क्या किसी के पास कुछ कहने को है ही नहीं?—अरे, इतने ज़ोर से इनका बदन मत कसो रामलाल कि सांस लेने में भी असुविधा हो! —मैं प्रभात भला क्यों कहूँगा! मैंने सब देखा है। ओ अन्तरिक्ष के देवगण तुम साक्षी हो। ओ पृथ्वी जल अग्नि वायु, आकाश—तुम्हें तो मेरे पिताजी की जीवन-कथा का पूरा ज्ञान है। —हाँ लाओ लाओ फूल चढ़ाओ मालाएं पहनाओ। —बस है? लाओ जीवन के अनन्य यात्री राजकुमार पर श्रमदान ख़तम करो। अब उठाओ इस विमान को। हृदय के टुकड़े ठहरो! भावना के निर्झर, रुको! आंसुओं के दूत तुम आज मानवी समवेदना का मूक गान गाओ! —आ गयी छोटी भाभी! जियो मेरी कल्पना! आओ तानियो उठाओ अब इस विमान को। वाह! स्वर्ग का राजपथ कितना प्रशस्त है! देवगण कहाँ छिपे हो! सत्य के पावन अर्चपथ में जितने इस हरी-भरी दुनिया से विदा ली है यह हमारा पूज्य भाई है! अर्चना अर्चना करो भाई साहब की। कन्धा लगाओ। बोलो— 'लोभ मोह-अहंकार—रूप-रस-गन्ध अपार—ईर्ष्या-द्वेष-अनाचार—आज नहीं स्वीकार —आज नहीं अस्वीकार। मैं न कहीं आज हूँ—मैं न कहीं पार हूँ—हृदय में निराश दो—इसको निकाल लो—तुम मुझे बुरा कहो—तुम मुझे भला कहो—मान लो कि निरन्तर—आज नहीं अस्वीकार—आज नहीं अस्वीकार!

सब लोग 'आज नहीं अस्वीकार' को दोहरा रहे हैं।

रामलाल कहो— 'मैं न देखता नहीं—मैं न रोकता कहीं—आज सुखी छूट है—दिन-दहाड़े लूट है—बना रहे चीत्कार—बना रहे अन्धकार—आज नहीं अस्वीकार—आज नहीं अस्वीकार !

रामलाल चुप है लेकिन स्वर बढ़ता जाता है।

'अरे गौरीशंकर तुम ! तुम यहां कहां ? अच्छा आओ-आओ कन्धा लगाओ कहो— तुम सदा जियो जमा—तुम सदा सुखी रहो—पर विवाद मत करो—मुझे मार मत करो—छूटी-बची आने दो—मुझ निकल जाने दो—मौत के तराने दो—जिन्दगी को गाने दो—दोस्त मेहरबां रहें—दूर खुशनुमा रहें—हुस्न बेवफा रहे—खुश रहे, सफा रहे—आज नहीं अस्वीकार—आज नहीं अस्वीकार !

स्वर दूर निकल गया है। धीरे-धीरे मन्द होता जान पड़ता है।

मैं अर्थी के साथ तो हूँ—पर दूर गया पीछे से भी सुनता हूँ।

सत्ताईस

प्रकृति की कुछ ऐसी विलक्षण गति है कि जिन अवसरों से हम भागते रहते हैं वे हमारा पीछा नहीं छोड़ते और कभी-कभी तो हमारे सामने आ खड़े होते हैं जिन परिस्थितियों से हम डरते और भय खाते हैं वे अकस्मात् हमारे ऊपर आ बैठती और अपने भयावने नग्न रूप में दिखाकर हमारा मुंह नोच लेती और कलेजा चीर डालती है ? किसी अन्य व्यक्ति को सुखी बनाने की कल्पना जिसके लिए प्राण-त्याग का विषय बन जाय क्या वैसा व्यक्ति भी कभी लम्पट हो सकता है ? भाई साहब की निधन-वार्ता के अनन्तर मैं निरन्तर यही सोच रहा हूँ।

बड़ी भाभी तो ऐसी स्थिति में थी नहीं कि सशरीर भाई साहब के इस अन्तिम संस्कार में सम्मिलित होतीं। वे रोना चाहती थीं पर रो नहीं पाती थीं। वे मूर्छित अवस्था में दो-एक दिन पड़ी रहना चाहती थीं पर उस अवस्था के फलाफल को सहन करने का साहस उनमें न था। वे उठकर बाहर आकर एक हृदय द्रावक चीत्कार करना चाहती थीं पर उन्हें उपस्थित लोगों के बीच आने में कुछ

तो ऐसा प्रतीत होता है मानो मृत्यु उनके कान के पास मुँह ले जाकर कुछ कहती बात निकाल कर ही-ही कर के हँस पड़ी है और तभी बिजली-सी उठी है। पांडु रंग की रेशमी साड़ी का डार्क-ब्राउन बार्डर भी इस ...
के अवसर पर काला पड़ गया है। बदन पर पूरी आस्तीन की गरम सफ़ेद कुछ ढीली पड़ गयी है और कन्धों पर पड़ी शाल सिकुड़ने को तैयार न ... जब गिर-गिर पड़ती है तब भाभी को ऐसा भान पड़ता है जैसे वे स्वयं गिरी रही हों। मानो शोक आज उनकी छाया बन गयी है और बारम्बार इसी ... की सूचना दे रही है कि अगर मुझे सम्हालोगी नहीं तो मैं इसी तरह तुम्हें ... मानूँगी। कदाचित् इसीलिये वे सामने एक ईंट देखकर उस पर बैठ गयी हैं।

तभी मैं सोचने लगा— अच्छा यह ईंट मैं हूँ ?

पर इसी क्षण मेरे उपर्युक्त कथन के उत्तर में छोटी भाभी बोलीं— तुम भी बात है कि तुम ऐसा कह रहे हो ! जब यह जानते हो कि इस ... का कर्तव्य मेरे सामने है उससे बड़ी मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं।

इतने में रामलाल की आवाज सुनायी पड़ी— चिता तैयार हो गयी।

सुनकर मुझे एक धक्का-सा लगा और मेरे मन में आया—कहीं ऐसा तो नहीं है कि इसी रामलाल ने भाई साहब के जीवन की चिता भी तैयार की हो!

तदनन्तर भाई साहब के शव को स्नान कराया गया। छोटी भाभी ने यमुना जल से उनके चरण धाये देह पोंछी उसके तौलिया से उसे पोंछा और फिर चन्दन के द्रव का लेप किया। इसमें उन्होंने किसी अन्य पुरुष को भाग नहीं लेने दिया। उस समय मैं यही सोचता रहा कि आत्मघात के सम्बन्ध में हम नित्य यही तो सुनते आये हैं कि वह मृत प्राणी की कायरता ... है। । फिर एक बार यह भी मेरे कानों में कोई ... भर दुरवस्थाओं का शिकार रहा हो, क्या वह विर्म... नहीं हो सकता कि कोई अलौकिक आघात ... जाय ? तब बचपन में किसी हुई इन बा...

जब इस जीवन से पूर्ण न हो
तब क्यों न अर्पण ...

अन्त में जब छोटी मामी ने भाई साहब को मुखाग्नि दी और उनका शरीर जल उठा तब मैं क्या देखता हूं कि रामलाल रो पड़ा !

दो मिनट चार मिनट दस मिनट—अन्त में आधा घंटा जब बीत गया और मैंने देखा कि वह अब कुछ स्वस्थ हुआ तब मैंने उससे पूछा— 'क्या सोच रहे हो रामलाल ?

रामलाल एक आह भर कर बोला— आज तक न मैंने कभी कोई बात इनसे कही—न कभी इन्होंने। इनको मुझ से कोई विशेष प्रेम भी नहीं था। लेकिन अब मैं सोचता हूं कि इनसे अधिक आत्मीय मेरे लिये इस संसार में था कौन ?

रिवाल्वर की गोली की भांति मेरे मुंह से निकल गया— 'क्या मतलब ?

"अब यह मतलब आप मुझ से मत पूछिये पांडव जी। कहकर रामलाल एक दम से उठकर खड़ा हो गया। मैंने भी दृढ़ता से उसका हाथ पकड़ कर कुछ गम्भीरता के साथ कह दिया—"ऐसा नहीं होगा रामलाल। अब तुम को यह बात बतलानी होगी।

रामलाल मेरी बात सुनकर रुका नहीं। उसने एक झटके के साथ कह ही दिया—"हम मामा के सामने कभी एक बाज़ी आ गयी थी। मैं उसमें हार गया था। और उस हार का कारण थे ये क्योंकि चाल इन्हीं की हुई थी।

रामलाल इतनी बात कहकर चला गया। मैंने भी फिर उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। क्योंकि तब मेरा ध्यान उसकी इस कथन-शैली ने खींच लिया था।

रामलाल चला तो गया पर जान पड़ा मानो वह ऐसा डंक मार गया है जिसका ज़हर जल्दी न उतरेगा। इसलिए थोड़ी देर में मुझे स्वयं उसके पास जाना पड़ा। उस समय भी वह घुटनों के बीच में अपना मुंह छिपाये सिसकियां भर रहा था। मैं उसे अलग अपने पास उठा लाया। तब मैंने उससे कहा—"आज बहुत दिनों बाद एक ऐसे रास्ते पर तुम आ मिले हो रामलाल जहां मैं तुम पर अपनी भावनाएं प्रकट करना भी चाहूं तो नहीं कर सकता। इसलिये इतना और बतला दो कि अब मां-भाई जो कुछ भी तुम बन गये हो उसमें तुमको पूरा सन्तोष है ?

न हो पूरा सन्तोष । मैं कहता हूँ अपूर्ण ही सही पर है तो वह जगह पर सन्तोष ही । क्योंकि कुछ भी हो मैं तो सम्पूर्ण जीवन को— क्षण-क्षण के उतार-चढ़ाव को—किसी-न-किसी महत्त्वाकांक्षा में विफल असफलता की प्रतिक्रिया मानता हूँ ।

जितनी दूर तक सोचता हूँ जान पड़ता है आज रामलाल का यह कुछ अर्थ रखता है ।

संस्कार पूर्ण हो जाने पर छोटी भाभी को लौटती बार हम गाड़ी आये थे । स्वयं मेरा मन इतना दुःखी था कि बात करने की इच्छा न होती और छोटी भाभी की अवस्था तो उस रुचिहीन रोगी की-सी हो गयी थी अपने मन से खाना-पीना दूर रहा कोई बात करना भी पसन्द नहीं करता । बंगले पर पहुँचते ही उन्होंने जब पूजागृह के पास वाले कमरे में अपने रहने व्यवस्था कर ली भूमि पर पयाल उसके ऊपर टाट और फिर कम्बल बिछ उस पर चद्दर डाल दी गयी तब वहीं बैठे-बैठे वे बड़ी रात तक उपस्थित कार्य सारी योजना बनाती रहीं । ग्यारह बजे के लगभग तो हम लोग आये ही थे । बाद साढ़े बारह साधारण कार्य-प्रबन्ध में बज गये । फिर जब दो बज गये बंगले भर में मूक-शून्य शान्ति स्थापित हो गयी तब मुझे ख्याल आ गया कि प्रेतात्मा का कहीं अस्तित्व है तो भाई साहब यहाँ किसी-न-किसी कमरे में रह-रहे हम लोगों के कार्य-कलाप को अवश्य देख रहे होंगे ।

इसी समय छोटी भाभी ने लेटे-लेटे कम्बल के भीतर से अपना निकालकर एक चाभी देते हुए मुझ से कहा— 'सेफ में लकड़ी का एक ऐसा रखा है जिसमें पुरानी चाल की सुन्दर खुदाई की हुई है । उसमें कुछ कागज-पत्र रखे हैं । अवकाश मिलने पर उन्हें देख लेना । उन्हीं में तुम्हारे का एक दान-पत्र भी है जिसकी रजिस्ट्री की जा चुकी है ।

दान-पत्र की बात मेरे लिए आश्चर्यजनक थी । अतः मेरे मुँह से निकल गया— 'दान-पत्र ! दान-पत्र कैसा ?

भाभी एक क्षण के लिए सोच-विचार में पड़ गयीं फिर बोलीं— अब कैसा है यही देखने के लिए तो मैंने तुमको यह ताली दी है ।

"मगर इस दान-पत्र की जरूरत क्या ? तुम सामने हो ही बड़ी भाभी मौजूद ही हैं। तब समझ में नहीं आता इस दान-पत्र की मेरे लिए उपयोगिता ही है ?" मैंने तत्काल उत्तर दे दिया।

अब छोटी भाभी उठकर बैठ गयी। मेरे सामने हीटर रक्खा हुआ था। पर दोनों हाथ सेंकती हुई वे बोलीं—"उनके विदा होते ही तुम ऐसी छोटी बातें करोगे तो मेरी डगमग डोलती यह जीवन की नाव कैसे पार होगी ? धाकाएं तुम पैदा कर रहे हो तुम समझते हो उनकी ओर उनका ध्यान न गया था ? तुम्हें शायद यह न मालूम होगा कि वे जानते थे अगर उनकी उपस्थिति यह विषय तुम्हारे सामने रक्खा गया तो तुम इसे कभी स्वीकार न करोगे ! हें यह भी मालूम नहीं है कि अवस्था में बड़े होने पर भी वे मन-ही-मन तुमको तना मानते कितना अधिक तुम्हारा आदर करते और किसी-किसी विषय तुमसे कितना डरते थे !

"भाई साहब—और मुझ से डरते थे ! यह क्या कह रही हो तुम !!

"क्यों प्रेम में भय होता नहीं क्या ? क्या मुझे तुम्हारा डर नहीं और कहीं-न-कहीं तुम भी क्या मुझ से डरते नहीं ?

मैंने विस्मय के साथ पूछा—"पर डर उत्पन्न करने योग्य मैंने उन्हें अपना कुछ परिचय तो कभी दिया नहीं। फिर क्या बात थी जो—!

वे पनडब्बा अपने पास मंगवाकर उनमें से अपने लिए स्वयं पान लगाकर खा लेने और फिर एक लवंग निकाल कर उन्हें दे देने की बात कुछ कहती और कुछ संकेत से प्रकट करती हुई बोलीं— 'परिचय दिये बिना तो तुम रहते नहीं यही बहुत है कि उनके निकट सम्पर्क में रहने का ऐसा अवसर ही तुम्हें नहीं मिला।

मुझे ऐसा जान पड़ा मानो भाभी सचमुच ठीक कह रही हैं। इसलिये मैं जो चुप हुआ तो वे कहने लगीं—"अभी उस दिन की बात है, वे कह रहे थे—'भाग्य को अगर मैं अपने हाथ का खिलौना बना सकता, तो मेरी सब से बड़ी इच्छा यही होती कि रामेन्द्र जैसा मेरे पुत्र हो ! और यह बात कहते समय उनकी आंखें सजल हो आयी थीं।

सुनकर मैं फिर अवाक रह गया। रुदन हमारी दुर्बलता अवश्य है, पर दुःख को मूर्तित और मुखरित करने का और माध्यम ही क्या है? बात की बात में मेरा कण्ठ भर आया। आत्म-स्वर आंखों का मार्ग पाकर प्रकट हो उठा!

तब वे बोलीं— 'उस दिन जब मैंने ड्राइवर से सुना कि तुम इलाहाबाद नहीं गये किसी पगली लड़की के पीछे पागल की तरह घूम रहे हो, तब मुझे अच्छा नहीं लगा था। किन्तु मैं सोचती हूं कैसे भी हुआ, यह हुआ कितना अच्छा कि यह बे विदा होने लगे, तब तुम यहां मौजूद रहे! — लेकिन अरे, तुम तो रो रहे हो! देखो अब यह रोना बन्द करो। सुनते हो कि नहीं! जानते हो देवता कभी रोया नहीं करते। क्योंकि एक हृदय ही नहीं उनकी आंखें भी पत्थर की होती हैं!

छोटी भाभी की इस मर्मवाणी का क्या अर्थ होता है, इतना मैं समझता हूं। किन्तु जीवन में उन बातों का भी कम महत्त्व मैं नहीं मानता जो केवल सुनने की वस्तु हुआ करती हैं जिनका उत्तर केवल मौन—एक स्थायी मौन मात्र होता है।

भाई साहब के वंश में उनके चाचा-भतीजे तो थे ही, नाते-रिश्ते में मामा, बुआ और बहन के यहां भी बहुत बड़ा वृन्द था। सबेरे सभी जगह उनके निधन हो जाने की सूचना भेज दी गयी। बड़ी भाभी का मत था कि हम लोगों को अब कानपुर चला जाना चाहिये, पर हमारे बिल्सी के आचार्य पंडित जी ने बतलाया कि जब मृतक का दाह-संस्कार यहां हुआ है, तब उनका शान्ति-संस्कार भी यहीं हो तो अच्छा है। क्योंकि यह भी एक मत है कि इस अवधि-पर्यन्त प्रेतात्मा अपने तत्कालीन निवास-स्थान के आस-पास ही डोलती रहती है। जिस समय पंडित प्रवर अपनी यह सम्मति दे चुके, उस समय मेरे मन में आया कि भाई साहब का प्रेतात्मा चाहे न भी डोले, पर इन पंडित जी के अन्दर लोभ-मोह-छल-प्रपंच के नाना रूपों में जिस प्रेतात्मा का वास है कम-से-कम वह तो दान-दाक्षिण्य के विविध प्रकारों पर अवश्य डोलती, चक्कर काटती और जीभ लपलपाती रहेगी!

उस दिन सबेरे ही बजत्-बजते पहर" गौरी बाबू आये फिर दीक्षित जी भी मधू बंगाली तथा लालाजी को लेकर आ गये। पिताजी के यहां मैंने सबेरे गाड़ी भेज दी थी। उस पर उनके साथ मासी भी आ गयीं। पर उसने आते ही

ऐसा घनघोर क्रन्दन किया, कि उसके आर्तनाद से बंगला भर में हाहाकार मच गया। इतने पर भी उसको जब सन्तोष न हुआ तो उसने अपना सिर एक खम्भे इतनी जोर से मारा कि वह फट गया और रक्त की धारा बह चली जिसका परिणाम यह हुआ कि भाभी अचेत होकर वहीं फैल गयी! —मैं निरन्तर सोचता रहा कि दुःख शोक और पीड़ा भी क्या इस तरह प्रदर्शन करने की वस्तु है? जो हो इस घटना ने कुछ दिनों के लिए मुझे अध्ययन का एक विषय दे दिया। इस सम्बन्ध में बड़ी भाभी से बातें हुईं तो वे बोलीं— 'यह तो अपनी अपनी भावना की बात हुई। यदि भाभी उनको मुझ से अधिक चाहती हो तो मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है!

उसी दिन बड़ी भाभी ने भाई साहब के लीला-संवरण की कथा सुनायी। उन्होंने बतलाया कि मामूली तौर से अपना कार्य-क्रम वे पहले से कभी घोषित करते नहीं थे। पर इधर कई दिन से वह कहने लगे थे "अब मैं संन्यास लेने वाला हूँ। यह सप्ताह नहीं बीत गया कि बस किसी दिन अनिश्चित दिशा की ओर चल दूंगा। मैं उनकी इन बातों को कोई महत्व नहीं देती थी क्योंकि अकसर उनकी बहुत सी बातें लोगों में कौतूहल पैदा करने के लिए हुआ करती थी। पर उस दिन कुछ ऐसा हुआ कि सायंकाल होते-होते वे बोले—"आज तबियत कुछ भारी-भारी सी लग रही है।

मेरे मुंह से निकल गया—"तो चलो आराम करो।"

इतने में रामलाल आ गया तब मैं उनके पास से उठ आयी।

इस समय मेरे मन में आया कि मैं बड़ी भाभी से पूछूं कि बीस हजार रुपये गबन कर लेने के बाद भी भाई साहब के सामने उपस्थित होने योग्य साहस उस में बना कैसे रहा! लेकिन यह बात मैंने इसलिए नहीं पूछी कि सम्भव है कोई ऐसी कुंजी मिल ही जाय जिससे इस रहस्य का भेद अपने आप खुल जाय।

इसी क्षण वे बोलीं— 'यह सोचती हुई मैं निश्चिन्त-सी थी कि साधारण रूप से ही तबियत भारी है और मैं जरा रेडियो सुनने लगी। खबरें सुन लेने के बाद साढ़े नौ बजे तक जब कोई बात नहीं मालूम हुई, तब मैं उनके पास गयी। रामलाल तब तक चला गया था और उनको ज्वर बड़े वेग से चढ़ आया था। कई बार उन्हें इस तरह का ज्वर आ चुका था। पर कौन जानता था कि वह ज्वर

नहीं ममझूत है और उन्हें साथ लेकर ही आयगा !... उसी समय मैंने डाक्टर भाटिया को बुलाया तो उत्तर मिला कि इस वक्त तो वे एक मरीज को देखने गये हैं ज्यों ही लौटे त्यों ही भेज देंगे। तब मैं यह सोचती रही कि वे आ ही रहे होंगे। पर जब वे घंटे भर तक नहीं आये तो मैंने फिर उन्हें फोन करवाया। तब मालूम हुआ कि वे अब चल ही रहे हैं। मैं फिर उनकी प्रतीक्षा करने लगी। जब वे आये तब पौने ग्यारह बजे थे। हालांकि उस समय ज्वर का वेग बहुत था पर उन्होंने डाक्टर साहब की हर बात का ठीक-ठीक जवाब दिया। इसलिए मुझे तब भी चिन्ता की कोई बात नहीं जान पड़ी। डाक्टर भाटिया ने भी कहा—'और तो सब ठीक है। पर बुखार अब बढ़ना नहीं चाहिये। क्योंकि टेम्परेचर एक-सौ-तीन पहुंच गया है। प्रिकाशन के लिए मैं एक इंजक्शन दिये देता हूं। डाक्टर भाटिया इंजक्शन देकर चले गये। साथ ही एक मिक्स्चर का प्रिस्क्रिप्शन भी लिख गये जो उन्हीं के मेडिकल स्टोर से मंगवा लिया गया। उस मिक्स्चर को दो-दो घंटे बाद पिलाने के लिए उन्होंने कहा था। वैसा ही किया भी गया। पर हालत जो बिगड़ी तो फिर बिगड़ती ही चली गयी। सबेरे हमने और भी बड़े डाक्टरों को बुलाया। डाक्टर कटियार, डाक्टर मोहिले और डाक्टर त्रिवेदी आदि दस बजे वहां मौजूद थे। सबकी सलाह से आध-आध घंटे पर इंजक्शन दिये गये पर फल कुछ न हुआ और बारह बजके उनचास मिनट पर उनका प्राण-पंछी उड़ गया !

बड़ी मामी की ये बातें पिताजी भी सुन रहे थे। दियासलाई जलाकर उसकी बकती सलाई से पाइप की तम्बाकू सुलगाते और धूम्रपान करते-करते वे बोल उठे—"यह रामलाल वही लड़का तो नहीं है जो अपने सग मामा की लड़की से प्रेम करता था ! पर जब उस लड़की की शादी —खैर, हां ठीक है। अच्छा फिर क्या हुआ रामलाल ने ब्याह किया या नहीं ?

गौरी बाबू बोले— बाबूजी ब्याह तो रामलाल ने नहीं किया।

पिताजी की इस बात से आज जिस बात का परिचय मिला उससे इस उलझी हुई कथा का सूत्र अपने आप सुलझ गया। तभी स्पष्ट हो गया कि रामलाल बड़ी मामी को इस सीमा तक प्रेम करता है ! श्मशान पर रोता रोता वह कह रहा था—"मैं हार गया था—मैं जीत गये थ !

सोचता हूं विधि का यह कैसा विधान है ! कहां कब किसके हाथ से उड़ाई हुई पतंग कटकर कितने युग के बाद आज यहां आकर गिरी है !

× × ×

कालाजी से इधर बहुत दिनों से विचार-विनिमय करने का अवसर ही नहीं मिल रहा था। उसका कारण यह था कि वे स्वयं बहुत अशांत थे। पर कुछ ऐसा जान पड़ा मानो अब वे मन की साधारण स्थिति पर आ गये हैं। बंगले पर फैले हुए काम-काज के बीच जब अत्यधिक भीड़ भाड़ हो जाती तभी वे मुझे साथ लेकर सड़क पर टहलने चल देते। आज कुछ ऐसा हुआ कि टहलते-टहलते पहले तो उन्होंने सिगरेट सुलगायी फिर वे अपने आप कहने लगे—"यह डाक्टर शर्मा बड़ा भला आदमी निकला राजेन्। जानते हो इसने क्या किया ? अरे इसने तो जमना के साथ-साथ राम जगन्नाथ का भी इलाज शुरू कर दिया। क्योंकि उसकी दृष्टि में भी हम लोगों का अनुमान बिल्कुल सही साबित हुआ। और इधर जमना भी काफी ठीक हो आयी है। जान पड़ता है दो-चार दिन में उसकी सेहत बिल्कुल सुधर जायगी !

इसी क्षण टहलते हुए देखा कि हास-परिहास में रत एक जोड़ा हाथ-में-हाथ डाले चला जा रहा है। तब मैंने साधारण रूप से कह दिया— 'चलो, यह समाचार आपने बहुत अच्छा दिया। जमना की चिन्ता दूर हुई। अब भगवान चाहेगा तो उसका जीवन सुखमय हो जायगा और फिर आपके लिए अनुताप का कोई कारण न रहेगा।

इस पर लालाजी पहले तो चुप रहे फिर कुछ सोचकर बोले—"हां यह तो तुम ठीक कहते हो। लेकिन जमना को इस धरातल पर ले आने में मुझ पर क्या-क्या बीती, इसका भेद अभी तुम्हें नहीं मालूम है।

आश्चर्य के साथ मैंने पूछा— अच्छा तो इसके अन्दर भी कोई भेद की बात है ?"

सिगरेट का धुआं उगलते हुए वे बोले—"हां जिस होटल में राजहंस नाम का वह जानवर ठहरा हुआ था उसमें उसकी चोरी हो गयी। जो कुछ नकद रुपया

उसके पास था वह सब-का-सब तो चोरी चला ही गया साथ में उसका सारा सामान भी किसी ने उड़ा दिया ! कई दिन जमना और वह दोनों बहुत परेशान रहे और साथ में मैं भी खटका-खटका फिरता रहा। हालांकि फल उसका कुछ नहीं हुआ ।

मैं सोचने लगा इस चोरी में भी जरूर कोई भेद की बात होगी !

तब लालाजी बोले— 'इस चोरी ने दोनों का सारा कामकाज चौपट कर दिया। बम्बई जाने की सारी तैयारी ठप्प हो गयी और वे नवाब-बेमुल्क राजहंस साहब रुपये के लिए इधर-उधर टापने लगे।

मैंने पूछा— 'इस अवसर पर जमना ने आपसे रुपया नहीं मांगा ?

वे बोले— 'रुपया ! मैं ऐसे वक्त उसे रुपया देकर सांप को दूध पिलाता ! तुम मुझे इतना बेवकूफ समझते हो ! मैंने जमना से कह दिया कि जो गहने तेरे रोजमर्रा पहनने के हैं उनके सिवा कोई भी कीमती चीज अगर तेरे बदन पर रहेगी तो वह राजहंस का बच्चा अपना शौक पूरा करने के लिए उसको भी बिकवा लेगा ! पर यही मुझ से गलती हो गयी। उसी दिन जमना राजहंस के साथ बम्बई रवाना हो गयी।"

लालाजी तो इतना कहकर चुप हो गये पर मैं सोचने लगा—इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि जिस परिस्थिति से बचने का मार्ग लालाजी ने जमना को सुझाया था उसमें वह उलझ कर रही। उसके रहे-सहे गहने भी साफ हो गये। जिस वक्त ये दोनों बम्बई पहुंचे होंगे उस वक्त उनके पास मुश्किल से सौ-दो-सौ रुपये बच रहे होंगे। फिर दस-पांच दिन में जब ये रुपये भी उड़ गए होंगे तब उनकी दशा कितनी शोचनीय हो गयी होगी ! तो उसका पागलपन इसी स्थिति की प्रतिक्रिया से सम्बन्धित तो नहीं है ? और यह भी तो हो सकता है कि रुपया बनाने के लिए मुरली बाबू ने किसी ऐसे हथकंडे से काम लिया हो जिसे जमना स्वीकार करने को तैयार न रही हो ! तब मुझे उस दृश्य का ध्यान हो आया जिसमें मैंने उसे प्रथम बार देखा था।

तब सिगरेट का बचा-खुचा टुकड़ा एक ओर फेंकते हुए लालाजी बोले —"और जो कुछ उसका फल हुआ सो तो अब हो ही गया। पर इस सिलसिले

में एक बात साफ हो गयी कि अगर हम दोनों के पास पैसा रहता तो न दोनों फिर उसी वातावरण में जा पहुंचते जहां से मैं उन्हें बड़ी मुश्किल से निकाल लाया था। मतलब यह कि थोड़ा पैसा बहुत पैसे की भूख पैदा करता है और एकदम से बहुत पैसा आ जाने पर साधारण आदमी का मन बस के बाहर चला जाता है।

अवसर पाकर मैंने कह दिया—"देखता हूं अब भी प्रतिक्रिया के प्रभाव से आप मुक्त नहीं हो पाये लालाजी। प्रथम और मुख्य कारण पर ध्यान न देकर आप बीच की उन परिस्थितियों से उलझ रहे हैं जो एक तो क्षणिक हैं दूसरे जीवन के सामूहिक रूप से जिनका कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं है। मुख्य कारण जहां एक ओर राम भगवान की संस्कृति और उसकी वर्तमान व्यक्तित्व-सम्पदा है वहां दूसरी ओर जमना के साथ एक ऐसे व्यक्ति की संगति भी तो है जो मिथ्याकथन छल प्रपंच चालबाजी और गैरजिम्मेदारी को बौद्धिक तत्त्व मान बैठा है।

लालाजी बोले—"यह सब भी मैं सही मान लूं राजन फिर भी एक बात बाकी रह ही जायगी। यह है हम लोगों का यह छोटा-सा दायरा जिसके भीतर-ही-भीतर उछल-कूद मचाते हुए हम संसार भर को एक ही लकड़ी से हांकना चाहते हैं। जब हम यह कहते हैं कि यह हमारी संस्कृति है इस पर हमको अभिमान है तब प्रकारान्तर से क्या हम यह नहीं कहते कि तुम हम से कोसों दूर हो और हम तुम से बिल्कुल अलग हैं। जरा आंखें खोलकर देखो और हृदय पर हाथ रखकर कहो कि आज दुनिया में कौन देश ऐसा रह गया है जिस पर संसार की गति ने प्रभाव न डाला हो। मैं पूछता हूं—आज ऐसा कौन-सा देश बाकी बचा है जो अभिमान के साथ यह कह सके कि हमारी संस्कृति पर किसी भी अन्य देशीय संस्कृति का प्रभाव नहीं पड़ा। मतलब यह कि आज सभी देशों के धर्मों और उनकी संस्कृतियों पर विश्व भर की मिली-जुली सभ्यता अपना एक ऐसा सम्पर्क स्थापित कर रही है जिससे हम बच नहीं सकते। और भय तो इस बात का भी है कि जरा बचने रहने की फिक्र में आकर उन्नति की दौड़ में कहीं हम इतने पीछे न रह जाय कि दुनिया की नजरें हमें असभ्य ठहरा दें। इसलिये मैं दूर क्षितिज की ओर दृष्टि डालता हुआ यह स्पष्ट देख रहा हूं कि वह दिन दूर नहीं जब

अपने धर्म और अपनी सभ्यता तक ही सीमित न रहकर हमको विश्व-धर्म और विश्व-संस्कृति की ओर देखकर चलना पड़ेगा।

लालाजी की इस बात के समर्थन में कुछ कह देना उचित समझ कर भी मैं थोड़ी देर के लिए चुप हो गया। इसका एक कारण यह भी था कि हम लोग अब उन क्वार्टर्स के सामने आ पहुँचे थे जहाँ अर्चना रहती थी और जो इस समय उदास बैठी हुई सूने आकाश की ओर देख रही थी।

इसके बाद लालाजी बोले—"पर असली बात तो अभी तक मैंने तुम को बतलायी ही नहीं।

मैंने पूछा—"क्या ?

वे बोले—'राजहंस की वह चोरी मैंने करवायी थी।

मैं लालाजी की ओर एकटक देखता खड़ा रह गया।

इतने में पुनः किसी के रोने का स्वर सुन पड़ा तब अर्चना के पास जाकर मैंने पूछा—'क्या बात है अर्चना ?

उसने कह दिया—'आज इटारसी रेलवे-हास्पिटल से पत्र आया है कि तारीख बारह दिसम्बर को उनकी मृत्यु हो गयी। वे चलती हुई ट्रेन से गिरे थे और एक पैर रेल से कटकर बिल्कुल अलग हो गया था!

सवाल सुनकर मेरे मुँह से निकल गया—"मगर यह मेरी समझ में नहीं आता कि उसके निधन से तुम रो क्यों उठी अर्चना! जीवन-काल में जिससे सुख का कभी परिचय न मिला मृत्यु काल में उससे दुःख का परिचय क्यों मिले ?"

अर्चना ने आँसू पोंछते हुए कहा—'मुझे उनकी सिर्फ एक बात कभी नहीं भूलती। वे कहा करते थे—'अगर मरना निश्चित है तो मैं चाहे जैसा जीवन व्यतीत करूँ किसी को इसमें आपत्ति करने का क्या अधिकार है ? जब एक-न-एक दिन सभी लोगों की भाँति मुझे भी विनाश के मुख में समा जाना है तब मनुष्य की बनायी हुई गलत बातें मैं हमेशा मानता ही रहूँ इससे तो कहीं अच्छा यह है कि या तो मैं उनका विरोध करूँ या मर जाऊँ।

तब एकदम से शून्य स्वप्न पैसेंजीन केन्से प्रयास से प्रभावित चुपचाप मैं यह सोचता हुआ अन्दर चला आया कि विधाता की इस अनोखी सृष्टि में एक-

एक तिनके का भी अपना मूल्य है। व मुरली बाबू मेरे लिए सदा तुच्छ बने रहे। लेकिन चलते-चलते अपने धुआंधार आवारा जीवन से खींचकर जो एक कथन—एक विचार—वे दे गये ऐसा जान पड़ता है जैसे वह भी किसी मोती से कम मूल्य नहीं रखता। तभी मैं मस्तक पर दोनों हाथ धरकर सोचता रहता हूं उन्होंने अपना 'राजहंस' नाम क्या इसी क्षण के लिए रक्खा था!

× × ×

आज ही रात को सफ का वह डब्बा खोलकर बैठा हूं।

डायरी का एक पृष्ठ मेरे सामने है। तीन–चार–पचास की उसमें तारीख पड़ी है और भाई साहब उसमें लिखते हैं—

"मैंने जीवन भर भगवान की सत्ता पर असीम विश्वास किया लेकिन अब मेरा विश्वास डिग गया तब मैं सोचने लगा कि अब यदि मैं इस संसार से विदा न हो तो उसका कोई लाभ टस से मस न होगा।

"ऐसा निश्चय कर लेने के कई कारण हैं। मैं उनके विषय में सर्वथा मौन रह सकता तो अच्छा होता। पर संसार कहीं यह न समझ ले कि मैं अकर्मण्य और कायर था इसीलिए समर-भूमि से चुपचाप भाग खड़ा हुआ। इसी डर से कुछ बातें यहां लिख देना मैंने उचित समझा।

"जिस समय मैं यह पंक्तियां लिख रहा हूं उस समय मेरी लेखनी कांप रही है हृदय मुट्ठी की तरह बंध रहा है। लपटें मेरे शरीर की त्वचा से लिपट कर फफोले पैदा कर रही हैं उन्हें फोड़ रही हैं। उनसे पानी और रक्त छूट रहा है! अंगारे भी-भी चौंथ रहे हैं! मांस भुन कर और भस्म हो-होकर हड्डियां तक बघार डाल रहा है। लेकिन मैं क्या कहूं मुझे कुछ छिपाना नहीं है।

"यह विमला जो मेरी पतिव्रता परम सती-साध्वी प्रथम पत्नी बनती है, कुछ ऐसा जान पड़ता है मुझे वर्षों से धोखा दे रही है। आज और अमा निशा की काली अंधेरी रातों में उसके कमरे से एक पुरुष-छाया को जाते हुए मैंने देखा है। कभी मैंने उससे पूछा नहीं कि तुम्हारे यहां इतनी रात को कौन गया था। मैंने

जान-बूझकर नहीं पूछा क्योंकि मैं जानता हूं उस प्रकार की छाया किस व्यक्ति की हो सकती है।

यही वह नारी है जिसने दूसरा विवाह मुझ से इसलिए करवाया कि उससे सन्तान पैदा होगी और मेरा वंश चलेगा। पर उसके अन्दर छिपा हुआ उसका मुख्य मन्तव्य यह था कि मेरा ध्यान द्वितीय पत्नी रानी की ओर चला जाय तो उसको खुलकर रामप्रसाद के साथ विहार करने का अवसर तो मिले। दूसरी ओर देखता हूं रूप-सम्पदा में श्रेष्ठ होने के कारण वही अब उसके प्रति इस सीमा तक द्वेष रखने लगी है कि उसका मेरे साथ रहना भी उसे सहन नहीं! स्वार्थ-लिप्त मानव का यह कैसा हिंसक पशु-रूप है!

"मैंने देखा है अपने निकट का व्यक्ति अपने जीवन में लीन रहने वाली भार्या अपना मित्र और परम स्नेही विश्वासघात करने में कितना कुशल होता है!—मैंने अनुभव किया है कि जिसके साथ मैंने सदा भलाई की है, सदा मैंने जिसका साथ दिया है अन्य लोगों की अपेक्षा वही मेरी अधिक बुराई करता है!

"सदा मेरे मन में आया है कि क्यों न मैं ऐसे व्यक्ति को चुपचाप जाकर शूट कर दूं! पर यही सोचकर हाथ मसलकर रह गया हूं कि ऐसा करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। क्यों मैं किसी की स्वतन्त्रता में बाधा डालूं? किन्तु मेरी यह क्षमा मुझी को आज खा जाना चाहती है! यह ऐसी विषधर नागिन है जिसने मुझे क्षण-क्षण पल-पल करके वर्षों तक लगातार डसा है! और अब तो उसका पूरा विष मेरी नस-नस में व्याप्त हो गया है! इच्छा तो नहीं थी कि मैं ऐसी स्थिति में जिन्दा रहूं किन्तु किसी भी भांति तबियत मान नहीं रही है। केवल इसीलिए कि सम्भव है मेरे न रहने पर उन व्यक्तियों का जीवन और अधिक सुखी हो जाय!

"धीरे-धीरे मृत्यु की काली अनुकम्पा ने मेरे सिर पर हाथ फेरना शुरू कर दिया है। मैं अनुभव कर रहा हूं वह मेरी मां है और मैं उसके अंक में जा रहा हूं।—तुम्हारे मार्ग में कंटक बनकर मैं नहीं रहूंगा जिसका जिसमें तुम को सुख मिले मैं अब वही करूंगा। तुम्हारा कहना है कि रामप्रसाद ऐसा आदमी है जो मुझे धोखा दे ही नहीं सकता जबकि मैं जानता हूं उसने मेरी आंखों में धूल झोंक

कर पतन किया है। मैं उसकी शक्ल से नफरत करता हूं। पर वही मेरे घर में आता है घंटों तुम से अठखेलियां करता और फिर अपनी इच्छानुसार चला जाता है। मैं पूछता हूं वह मेरी अनुपस्थिति में यहां आता ही क्यों है? क्या स्वतंत्रता का यही अर्थ होता है? कैसी तमाशे की बात है कि जो मुझे अप्रिय है वही तुम्हारे लिए प्रिय जब कि तुम सती हो पतिव्रता हो!

विधि की यह कैसी विडम्बना है कि सच्चा और आडम्बरहीन व्यक्ति इस दुनिया के लिए बेवकूफ है! क्षमाशील निष्कपट और विनम्र व्यक्ति अयोग्य और असफल है—और आचारहीन व्यक्ति राजनीतिज्ञ!

दान-पत्र मेरे नाम है। उसमें लिखा है—"मेरे पिता मेरे लिए इतना ही छोड़ मरे थे जिससे मैं एक सप्ताह तक खाना खा सकता था। उसके बाद जो कुछ किया वह मैंने किया। इसलिए इस सारी सम्पत्ति में हिस्सा बटाने का अधिकार किसी को नहीं है। अगर मेरे विश्वास का कोई कानूनी मूल्य है तो विमला के गर्भ से उत्पन्न कोई भी बच्चा मेरी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता।

यह सारी सम्पत्ति मैं एक राजेन्द्र के न्यायशील हाथों में सौंपता हूं। वह उसका जैसा चाहे वैसा उपयोग करे। हां विमला मेरी पहली पत्नी है। वह चाहे जैसी हो। पर गुजारे भर के लिए उसे पांच सौ रुपये मिलते रहें, यह मेरी इच्छा है।

मैंने जीवन भर अपनी तबियत की जिन्दगी बिताई है। मैं जानता हूं द्वितीय पत्नी रानी को लाकर मैंने उसके साथ अन्याय किया है। पर अब मैं उसको राजेन्द्र को सौंप जा रहा हूं। मेरा सदा से यह विश्वास रहा है कि मेरे जीवन काल में दोनों केवल आत्म-मिलन तक सीमित रहे हैं। पर अब मैं उन्हें देह-धर्म के नाते से भी सुखी और सन्तुष्ट देखना चाहता हूं। सोचता हूं जो काम मेरे देह धारण से सम्भव नहीं हो सकती जन-कल्याण के लिए मृत्यु का आलिंगन करके क्यों न अब मैं उसे भी सम्भव कर जाऊं!

यह दिव्य स्वरूप उस व्यक्ति का है जिसको मैं सदा एक कपट समझता रहा।

किन्तु इस समय यह आ कौन रहा है ! यह छाया किस की है ?— ओ तुम हो काली। कहो तुम्हारे सिर की चोट का क्या हाल है ?—अरे ! तुम रो रही हो ! देखो सुनो। मैं अब किसी की आंखों में आंसू नहीं देखना चाहता।

काली बोली— 'भैया मैं तुमसे सिर्फ एक बात कहने आयी हूं। क्योंकि अब दो-चार दिन में तुम फिर इलाहाबाद चले जाओगे। इधर कभी तुम से बात करने का अवसर मिला न मिला। एक दिन तुमने मेरे विवाह के लिए कहा था—मैं भी सोचती थी देह-धर्म तो निभाना ही पड़ता है। लेकिन अब मैं सोचती हूं आत्मा का धर्म ही श्रेष्ठ है। देह कुछ नहीं है—कुछ नहीं है ! सो भैया तुम जहां कहीं रहना यहीं मुझे भी ले चलना। मां के साथ मेरा रहना ? नहीं-नहीं मैं वैसी नहीं बनूंगी।

मैंने कहा— 'बस इतनी-सी बात भी तुम मुझ से कहती !

उसकी देह दुर्बल हो गयी थी। मुख पर भी दुःख की म्लान छाया स्पष्ट देख पड़ती थी। लेकिन मेरी इस बात पर वह कुछ प्रसन्न हो उठी। बोली—"मुझे सब मालूम हो गया है।"

मैंने पूछा— 'क्या ?

तो वह हंसने लगी। उस दुर्बल काया की हंसी भी मुझे प्यारी लगी।

वह बोली— 'मामी कहती थी—हम सब एक साथ रहेंगे कानपुर में।

मैंने पूछा— 'और क्या कहती थी ?

वह बोली— 'कुछ उत्साह के साथ कहती थी—आगे की बात मैं जानती। प्रभु की इच्छा को कौन टाल सकता है ?

× × ×

दिल्ली से हम लोग सकुशल कानपुर लौट रहे थे। मेरे मन में नाना प्रकार के संकल्प विकल्प आ जा रहे थे। —मेरे हाथ में कुछ अधिक आ गयी है। यह तो मैं नहीं कह सकता कि उसका मोह मुझ में जागृत नहीं हो है। पर मुझ पग-पग पर वे दीन-हीन बच्चे दिखलाई पड़ रहे हैं जो संरक्षण से हीन बनकर कीट-पतंग का जीवन बिता रहे हैं। वे नर-नारियां

विधवाएं याद आती हैं जिनका इस संसार में कोई नहीं रह गया है। हां आस पास ऐसा समाज अवश्य है जो उनके स्वास्थ्य रूप और सौन्दर्य पर भूखे भेड़िये की तरह टूट पड़ने को आतुर है। सोचता हूं इस सम्पत्ति को इस समाज के उद्धार और पुनर्निर्माण में क्यों न लगा दूं? —कर तो सकता हूं अब मैं ऐसा कुछ।

इलाहाबाद स्टेशन पर मोदी साहब मिल गये। साथ में हीरा भी थी। गर्म चश्मे में उसका रूप और अधिक निखर आया था। अपने आप बोली— "हम लोग शिमला जा रहे हैं। साथ चलेंगे आप?

मेरे मुंह से निकल गया—"किसके-किसके साथ चलूं पहले यह तय कर लो तो कुछ सोचा भी जाय।

हीरा हंसने लगी। बोली—"आप भी खूब हैं।

घर पहुंचने पर मैंने एक स्वप्न देखा। पिता जी पुनः घर पर आ गये और मां ने फिर हाथों में लाल-लाल लाख की चूड़ियां पहन लीं। लेकिन यह सब तब हुआ जब उन्होंने विधिवत् छोटी मामी को मेरे लिए रानी बना दिया। —छोटी मां दिल्ली से नहीं लौटी—न उपेन्द्र। लेकिन उन्हें आना तो पड़ेगा ही।

× × ×

पुनः कानपुर पहुंचने पर एक दिन लाली मेरे पास फिर आ बैठी। मैं पुनः निर्माण की योजना में लीन था। सिर उठाकर मैंने लाली की ओर देखा। देखा आंखों में आंसू हैं। जान पड़ा फिर यह कोई दर्द-दुख लेकर आयी है। पूछा—"क्या बात है लाली?

लाली बोली— 'भैया मुझ से कुछ भूल हो गयी थी एक दिन। और यह बात कहते कहते उसने अपना मुंह ढक लिया।

मेरे मुंह से निकल गया—"मुझ से 'भैया' कहने वाली से ऐसी कोई भूल होनी तो नहीं चाहिये जिसके लिए बाद में सोचना पड़े।

अब लाली रो पड़ी।

कमरे के अन्दर रानी बैठी टाइप कर रही थी। लाली को लेकर पास आयी और उसे अपनी छाती से लगा लिया। लाली सिसकने लगी और रोती रही।

तब रानी बोली—"इसमें रोने की अब कोई बात नहीं रह गयी। हम सब नित्य इस तरह की भूलें करते हैं कोई तन से कोई मन से।

अब मैं समझा उस दिन इसी भाभी ने जो कहा था—'मैंने सोचा था—देह-धर्म तो निभाना ही पड़ता है।' इसका सम्बन्ध शायद इसी भूल से था।

भाभी जब चली गयी तब मैंने उस दिन का दिया हुआ वह पचास हजार रुपया रानी को सौंप दिया।

उसने पूछा—'अभी तक इसको जमा नहीं करवाया?'

मेरे मुंह से निकल गया—'चाहे जमा करवाओ चाहे अभी से लगा दो उस बच्चे के नाम पर, जिसको भाभी अभी अपनी भूल बतला गयी है और भाभी के उस भविष्य के नाम पर, जो उनके गर्भ में है।'

रानी मुसकराती हुई बोली—'हां यह ठीक रहेगा। —यह तो नना ही पड़ेगा तुम सोचते खूब हो।

लेकिन यह रुपया क्या तुमने भाई साहब से छिपाकर मुझे दिया था?" मैंने पूछा।

तब वह उदास हो उठी। एक निश्वास छोड़कर बोली—"हां इस बात ने भी उन्हें प्रभावित किया था।' और दो मिनट बाद मैंने देखा टाइपराइटर फिर बोलने लगा है।

× × ×

कुछ मास बाद—

'हां अब मैं उस बच्चे का नहला चुकी और साफ तौलिया से उसका बदन पोंछने लगी तभी मुझे ऐसा कुछ भान पड़ा जैसे बिल्कुल इसी शक्ल का एक आदमी मैंने यहां देखा है।

इतना कहकर रानी फिर अपने इधर-उधर देखने लगी इस भय से कि कहीं कोई खड़ा हुआ सुन तो नहीं रहा है। और बोली—बस फिर बाबू जी मैंने अपने कान पकड़े कि ऐसी बात सोचने में भी पाप लगता है!"

तब रानी बोली— 'इसमें रोने की अब कोई बात नहीं रह गयी। हम सब नित्य इस तरह की भूल करते हैं कोई तन से कोई मन से।

अब मैं समझा उस दिन इसी भाभी ने जो कहा था—"मन सोचा था—देह-धर्म तो निभाना ही पड़ता है। इसका सम्बन्ध शायद इसी भूल से था।

भाभी घर चली गयी तब मैंने उस दिन का दिया हुआ वह पचास हजार रुपया रानी को लौटा दिया।

उसने पूछा— 'अभी तक इसको जमा नहीं करवाया ?

मेरे मुंह से निकल गया— 'चाहे जमा करवाओ चाहे अभी से लगा दो उस बच्चे के नाम पर, जिसको भाभी अभी अपनी भूल बतला गयी है और भाभी के उस भविष्य के नाम पर, जो उनके गर्भ में है।

रानी मुसकराती हुई बोली— 'हां यह ठीक रहेगा। —यह तो ही पड़ेगा तुम सोचते खूब हो।

'लेकिन यह रुपया क्या तुमने भाई साहब से छिपाकर मुझे दिया था ? मैंने पूछा।

तब वह उदास हो उठी। एक निःश्वास लेकर बोली— 'हां इस बात ने भी उन्हें प्रभावित किया था।' और दो मिनट बाद मैंने देखा टाइपराइटर फिर बोलने लगा है।

× × ×

कुछ मास बाद—

'हां जब मैं उस मन्दे को नहला चुकी और साफ तौलिया से उसका बदन पोछने लगी तभी मुझे ऐसा कुछ जान पड़ा जैसे बिल्कुल इसी शक्ल का एक आदमी मैंने यहां देखा है।

इतना कहकर दायी फिर अपने इधर-उधर देखने लगी इस भय से कि कहीं कोई खड़ा हुआ सुन तो नहीं रहा है। और बोली— 'बस फिर बाबू जी मैंने अपने कान पकड़े कि ऐसी बात सोचने में भी पाप लगता है।'

और इसके बाद दासी को मैंने एक रुपया इनाम देकर विदा कर दिया।

सामने कागजों का ढेर लगा है। बैंकों का हिसाब-किताब सब देख लिया मगर रुपया उनमें अब भी तीन लाख सत्तर हजार पड़ा हुआ है।—बीमा-कम्पनियों की पालिसियों के तीस हजार रुपये तो असली होते हैं। बोनस और सूद मिलाकर लगभग आठ हजार और मिलेंगे। इसके सिवा कई कम्पनियों के शेयर भी हैं। उनका मूल्य इस काल में लगभग होता है। दुकान जिस हालत में चल रही है उसका माल भी दो लाख का होगा। इसके बाद यह कोठी और यह मकान तथा काफी सम्पत्ति है।

मैंने खजाने वाले कमरे को बन्द कर उसमें ताला लगा दिया और चुपचाप बड़ी भाभी के पास चला आया। उस समय वे पूजा-गृह से लौट रही थीं। सफेद साड़ी की साड़ी उनकी देह पर थी। हाथ-पैर बिल्कुल सूने। बदन पर तन्जेब का ब्लाउज और माथे पर चन्दन। हाथों में आरती और ठाकुर जी का निर्माल्य।

मुझे समक्ष देखकर वे बोलीं—"हिसाब-किताब सब देख लिया? कहीं कोई गड़बड़ी तो नहीं मिली?

मेरे मुंह से निकल गया—"सब ठीक है। एक रामलाल वाली रकम अटकी हुई थी सो वह भी जमा हो गयी है। लेकिन मुझे ताज्जुब है तुम तो उस दिन कह रही थीं—उसका कोई पता नहीं चलता!

मेरा इतना कहना था कि आरती और निर्माल्य उनके हाथ से छूट पड़ा। मुख इतना श्रीहीन विवर्ण हो गया जैसे उस पर कालिमा पुत गयी हो! बड़ी मुश्किल से उन्होंने अपने आपको सम्हाला। फिर भी आंखों में आंसू आ ही गये और हाथ-पैर कांपने-से लगे। पन्नारानी स्फाटि-सी अत्यन्त मर्मवाणी में वे बोलीं—

रामलाल का नाम मत लिया करो लल्ला! वह मेरे इस जीवन का एक ऐसा नासूर है जो मरण के बाद ही अच्छा होगा!

मैं विचार में पड़ गया—मृत्यु केवल एक व्यक्ति की सांस बन्द करती है पूरा होता है उससे सारे समाज की सांस। बड़ी भाभी की जिस तपस्विनी मूर्ति को हम आज देख रहे हैं सारे शहर के जीवन-काल में भी वह कभी सम्भव थी नहीं।